द्वाविंश परिच्छेद

जैन रामायण

कर्मभूमि के प्रारम्भ मे ससार के आदि महापुरुष, आदि ब्रह्मा, आदि तीर्थंकर, आदिनाथ, आद्य भगवान ऋषभदेव हुए। उनके पिता का नाम नाभिराय था, जो चौदहवे कुलकर या मनु थे। माता का नाम मरुदेवी था।

इक्ष्वाकु वंश, सूर्यवश, चन्द्रवश

उनके सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ थी। वडे पुत्र का नाम भरत था, जो भरत क्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् थे। इन्ही के नाम पर इस देश का नाम भारत पडा। दूसरे पुत्र वाहुवली थे, जो प्रथम कामदेव थे। पुत्रियो के नाम ब्राह्मी और सुन्दरी थे। ब्राह्मी को भगवान ऋषभदेव ने लिपि विद्या सिखाई थी। उसके नाम पर ही आगे लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि पड गया। भगवान ने अपनी दूसरी पुत्री सुन्दरी को अक विद्या सिखाई थी।

भगवान जब गृहस्थाश्रम छोडकर प्रव्रजित हो गये तो उन्होने छह माह तक घोर तपस्या की। उसके पश्चात् वे नगर मे आहार के लिये निकले। किन्तु उस समय लोग मुनिजनोचित आहार की विधि नही जानते थे। अत· भगवान अपने नियमानुसार आहार को निकलते और विधि के अनुकूल आहार न पाकर वन मे लौट जाते। इस प्रकार छह माह वीत गये। तव विहार करते हुए भगवान हस्तिनापुर नगर मे पधारे। वहाँ के राजा सोमप्रभ के लघु भ्राता श्रेयान्स को भगवान का दर्शन करते ही पूर्वजन्म मे मुनि को दिये हुए आहार का स्मरण हो आया। उस समय महल मे शुद्ध इक्षु रस (गन्ने का रस) रक्खा हुआ था। राजकुमार श्रेयान्स ने भगवान को आहार मे वही इक्षु-रस दिया। राजा श्रेयान्स दान-तीर्थ के कर्ता और आद्य प्रवर्तक कहलाये।

यह घटना भगवान के मुनि-जीवन से सम्बन्धित प्रथम महत्त्वपूर्ण घटना थी। अत भगवान का कुल इक्ष्वाकु वश कहलाया। इसी वश को इतिहासकारो ने ककुत्स्थ वश भी कहा है क्योकि भगवान ऋषभदेव का ध्वज-चिन्ह ककुत्स्थ (बैल) था।

इसी वश से सूर्यवश निकला। चक्रवर्ती भरत के ज्येष्ठ पुत्र अर्ककीर्ति थे। वे अत्यन्त तेजस्वी और प्रभावशाली थे। उनके नाम पर ही सूर्यवश की उत्पत्ति हुई और उनके वशजो को सूर्यवशी कहा जाने लगा। इस वश मे अनेक प्रतापी सम्राट् हुए। राजकुमार श्रेयान्स के वडे भ्राता सोमप्रभ से सोमवश अथवा चन्द्रवश चला।

रघुवश

इक्ष्वाकु वश मे अनेक राजा हुए। भगवान मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थकाल मे विजय नाम का एक राजा हुआ। उसके वश मे सुन्दर, कीर्तिधर, सुकौशल, हिरण्य, रुचिनघुष, सौदास सिंहरथ आदि राजा हुए। इसी वश मे हिरण्य कश्यप हुआ। उसके पुजस्थल, फिर ककुत्स्थ, और उससे रघु हुआ। रघु अत्यन्त प्रतापी सम्राट् था। उससे ही रघुवश चला।

राजा दशरथ और उनकी रानियाँ

राजा रघु के अनरण्य नाम का पुत्र हुआ। अनरण्य की पटरानी पृथ्वीमती थी। उनके दो पुत्र हुए—एक का नाम था अनन्तरथ और दूसरे का नाम था दशरथ। अनन्तरथ तो अपने पिता के साथ यथासमय सन्यास लेकर मुनि हो गया। अत राज्याधिकार दशरथ को प्राप्त हुआ।

दशरथ अत्यन्त तेजस्वी और नीति परायण नरेश थे। उन्होने तीन राजकुमारियो के साथ विवाह किये—

एक तो अपराजिता, जिसका दूसरा नाम कौशल्या था। यह दर्भपुर के राजा सुकोशल और उनकी रानी अमृतप्रभा की पुत्री थी। दूसरी सुमित्रा, जिसके माता-पिता पद्मपत्र नगर के राजा तिलकबन्धु और रानी मित्रा थी। तीसरी राजकुमारी का नाम सुप्रभा था जो रत्नपुर के राजा की पुत्री थी। इसी काल में राजा जनक मिथिलापुर मे शासन कर रहे थे। वे हरिवंशी थे। उनके पूर्वजो मे विजय, दक्ष, इलावर्धन, श्रीवर्धन, श्रीवृक्ष, सजयन्त, कुणिम, महारथ, पुलोमा आदि अनेक प्रतापी राजा हो चुके थे।

एक बार राजा दशरथ राजदरबार मे बैठे हुए थे। तभी आकाशमार्ग से नारद आये। राजा ने उनकी यथोचित अभ्यर्थना की और कुशल-मगल पूछने के बाद उनके आने का कारण पूछा। तब नारद ने बताया कि मैं लका गया हुआ था। वहाँ का राजा महाबलवान राक्षसवशी रावण है। उसकी सभा मे एक बडा दुखदायक समाचार सुना। किसी ज्योतिषी ने रावण से यह कहा कि सीता के निमित्त से दशरथ के पुत्रो द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी। यह सुनकर विभीषण ने रावण से कहा कि दशरथ और जनक के जबतक सन्तान होगी, उससे पहले ही मैं उन दोनो राजाओ को मार डालूंगा। उसने अपने चर छद्मवेश मे तुम्हे देखने भेजे थे। वे तुम्हे देख कर वापिस चले गये हैं और तुम्हारे बारे मे सारे समाचार विभीषण को दिये है। अतः विभीषण तुम दोनो को मारने के लिए शीघ्र ही आने वाला है। अत तुम्हे अपनी रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

नारद से यह समाचार सुनकर दशरथ अत्यन्त भयभीत हो गये। नारद वहाँ से राजा जनक के पास गये और उन्हे भी ये समाचार सुनाये। दोनो ने अपने मन्त्रियो से परामर्श किया। मन्त्रियो ने कहा कि जब तक यह विघ्न टल नही जाता, आप प्रच्छन्न रूप से किसी दूसरे नगर मे रहे। यह सुनकर दोनो राजा देशान्तर को चले गये और उनके स्थान पर दो नकली शरीर बनाये गये। उनमे लाख आदि का रस भरकर सिहासन पर बैठा दिया। विभीषण ने आकर उन नकली राजाओं को मार डाला। विभीषण प्रसन्न होकर लका वापिस चला गया।

उधर दशरथ जनक के साथ अनेक देशो मे भ्रमण करते हुए कौतुकमगल नगर मे पहुँचे। उस नगर का राजा शुभमति था। उसकी रानी का नाम पृथ्वीमही था। उसके दो पुत्र-कैकय और द्रोण थे और एक रूपगुणवती कन्या थी, जिसका नाम केकामती (कैकेयी) था। वह कन्या सगीत, शस्त्र और शास्त्र मे अत्यन्त निपुण थी। राजा ने उसके विवाह के लिए स्वयवर रचा, जिसमे अनेक राजा भाग लेने आये। वहाँ दशरथ और जनक भी बैठ गये। राजकुमारी कैकेयी वरमाला लेकर स्वयवर मण्डप मे आई। द्वारपाली सब राजाओ का परिचय देती गई। जब कैकेई दशरथ के सम्मुख पहुची तो उसने दशरथ के गले मे वरमाला डाल दी।

नारद की उत्पत्ति

नारद, जो बडा कलहप्रिय कहलाता है, उसका जन्म किन विचित्र परिस्थितियो मे हुआ, यह जानना बडा रुचिकर है।

ब्रह्मरुचि नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी कूर्मी थी। दोनो सन्यासी थे। जगल मे एक मठ मे रहते थे। एक बार कूर्मी को गर्भ रह गया। वहाँ एक बार एक दिगम्बर मुनि पधारे। दोनो सन्यासी आकर बैठ गये। वे मुनि ने पूछा—यह गर्भिणी स्त्री कौन है? ब्राह्मण बोला—यह मेरी पत्नी है। मुनि बड़े आश्चर्य से बोले-तू तो सन्यासी है। तुझे स्त्री रखना उचित नही है।

ब्राह्मण मुनिराज के उपदेश से मुनि बन गया। ब्राह्मणी को बड़ा दुःख हुआ कि इस अवस्था मे वह दीक्षा नही ले सकती। किन्तु जब बालक उत्पन्न हुआ और १६ दिन का हो गया तो ब्राह्मणी उसे एक सुरक्षित स्थान पर रखकर चली गई और तपस्विनी हो गई। बालक चुपचाप पड़ा था। संयोग की बात कि आकाश में जाते हुए जृम्भक नामक एक देव ने बालक को देखा और दयावश उसे उठाकर ले गया। उसका लालन-पालन किया और शास्त्रों का अध्ययन कराया।

जब बालक यौवन सम्पन्न हुआ तो उसने आकाशगामिनी विद्या सिद्ध कर ली, क्षुल्लक के व्रत भी ले लिए। साथ ही जटायें रखली, मुकुट भी पहनने लगा। इस तरह वह न गृहस्थ ही रहा, न मुनि ही। वह हास-विलास का प्रेमी था, अत्यन्त वाचाल था, कलह देखने का इच्छुक और सगीत का शौकीन था, वह ब्रह्मचारी था, राजघरानों मे उसका बड़ा सम्मान था। देवों ने उसका पालन किया था और देवों के साथ उसकी क्रीडायें थी। इसलिए वह देवर्षि कहलाता था।

राजा लोग एक अज्ञातकुलशील व्यक्ति के गले मे वरमाला पडी देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और लडनें के लिए तैयार हो गये। तब राजा शुभमति उनसे लडने के लिए तैयार हुआ, किन्तु दशरथ ने उसे रोक दिया और सेना लेकर स्वय रणक्षेत्र मे जा पहुँचा। राजा दशरथ के सारथी का दायित्व कैकेयी ने लिया। कैकेयी रथसचालन मे अत्यन्त निपुण थी। दोनो ओर से भयानक युद्ध हुआ। किन्तु दशरथ की रणचातुरी और कैकेई की रथ-सचालन की चातुरी के कारण विजयश्री दशरथ को मिली। राजा पराजित हो गये। दशरथ का कैकेयी के साथ समारोह-पूर्वक विवाह हो गया और वह अयोध्या लौट आये तथा जनक मिथिला चले गये।

एक दिन दशरथ रानियो के बीच बैठे हुए कैकेयी की प्रशसा करते हुए बोले—प्रिये! तुमने जिस कौशल से रथ का सचालन किया था, उसी के कारण मेरी विजय सभव हो सकी थी। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर मागलो। कैकेयी पहले तो अपनी लघुता बताती हुई टालती रही। किन्तु जब राजा ने बार-बार आग्रह किया तो बोली—'नाथ! मेरा वर आप धरोहर के रूप मे सुरक्षित रखले। जब मुझे आवश्यकता होगी, तब मैं माग लूँगी।' राजा ने भी कह दिया—तथास्तु।

राक्षस वश और बानर वश

भरत क्षेत्र के मध्य मे विजयार्ध नामक एक विशाल पर्वत था, जिसकी दो श्रेणियाँ थी—उत्तर श्रेणी और दक्षिण श्रेणी। इन दोनो श्रेणियो की राजधानी क्रमश अलकावती और रथनूपुर थी। इन श्रेणियो मे विद्याधरो का निवास था। वे यद्यपि मनुष्य थे किन्तु वे विद्याओ की सिद्धि किया करते थे, (जिसे आधुनिक भाषा मे कह सकते हैं कि वे वैज्ञानिक प्रयोग किया करते थे। इसलिए उनके पास विमान थे तथा अद्भुत शस्त्रास्त्र थे।) इन विद्याधरो मे अनेक जातियाँ थी—राक्षस, वानर, ऋक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि। इन्हे जातीय अभिमान था और ये भूमि पर रहने वालो को भूमिगोचरी कहते थे तथा उन्हे हीनदृष्टि से देखते थे। यहाँ तक कि भूमिगोचारयो को अपनी कन्या देना अपना अपमान समझते थे। यद्यपि भूमिगोचरी राजाओ ने अपने बाहुबल के द्वारा विद्याधरो की कन्याओ के साथ विवाह किया था, किन्तु फिर भी विद्याधरो मे जातीय अभिमान बहुत काल तक बना रहा।

राक्षस वंश

द्वितीय तीर्थंकर भगवान अजितनाथ के समय मेघवाहन नामक राजा को प्रसन्न होकर राक्षस जाति के देवो के इन्द्र भीम और सुभीम ने समुद्र के मध्य मे बसे हुए राक्षस द्वीप की राजधानी लका तथा पाताल लका का राज्य दिया था तथा अद्भुत कान्ति वाला रत्नहार दिया था। फलत राजा मेघवाहन अपने परिवार सहित राक्षस द्वीप मे जा बसा और वहाँ आनन्दपूर्वक राज्य करने लगा।

उसके वश मे आगे चलकर एक महाप्रतापी राजा हुआ, जिसका नाम राक्षस था। उसके नाम पर उस वश का नाम राक्षस वश पड गया।

बानर वंश

विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी के मेघपुर नगर के अधिपति श्रीकण्ठ को लका नरेश कीर्तिशुभ ने, जो श्रीकठ का बहनोई था, शत्रुओ के उत्पात से बचाने के लिए बानर द्वीप दिया था। श्रीकठ ने वहाँ जाकर नगर बसाया और सुखपूर्वक रहने लगा। इस द्वीप मे वानर बहुत थे। श्रीकण्ठ तथा उसके नगरवासी उन वानरो से अपना खूब मनोरजन किया करते थे तथा उनको पालते भी थे। उसी के वश में आगे चलकर अमरप्रभ राजा हुआ। उसने अपनी ध्वजा, मुकुट, छत्र, तोरण और द्वारों पर वानरो के चिन्ह खुदवा दिये। तबसे सारे नगरवासी बन्दरों को आदर की दृष्टि से देखने लगे। इसीलिए उनके वश का नाम बानर वश पड़ गया।

राक्षस कुल में रावण का जन्म

राक्षस और वानर वशियों में परस्पर बड़ा प्रमभाव था। एक बार रथनूपुर के राजा अशनिवेग से बानर नरेश और राक्षस नरेश सुकेश का युद्ध हुआ। उस युद्ध में दोनों वंश के राजा हार गये और युद्ध छोड़कर भागे तथा पाताल लंका में जाकर रहने लगे। अशनिवेग ने लंका की गद्दी पर निर्घात नामक राजा को बैठा दिया। कुछ काल पश्चात् बानर वंशी किष्कन्ध ने समुद्र के किनारे किष्कन्ध नामक नगर बसाया और वहीं रहने लगा।

राक्षस वंशी सुकेश के तीन पुत्र हुए—माली, सुमाली और माल्यवान। जब माली को अपने माता-पिता

—

से लका की पराजय का समाचार मालूम हुआ तो उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सेना लेकर लका पर आक्रमण कर दिया और निघति को मारकर पुन लका का राज्य प्राप्त कर लिया तथा राक्षसवशी पुन आनन्द से लका मे रहने लगे।

उस समय रथनूपुर नगर का राजा सहस्रार था। उसकी रानी मानससुन्दरी को गर्भ के समय इन्द्र जैसी क्रीडा करने की इच्छा होती थी। अत राजा रानी खूब क्रीडा किया करते थे। जब पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसका नाम इन्द्र रक्खा। इन्द्र वडा वलवान था। युवा होने पर उसने अपने वैभव आदि इन्द्र जैसे ही वनाने शुरू किये। अपने महल का नाम वैजयन्त रक्खा। अपने हाथी का नाम ऐरावत, सभा का नाम सुधर्मा, नर्तकियो का नाम उर्वशी, तिलोत्तमा रक्खा। नागरिको को देव सज्ञा दी। मत्री का नाम वृहस्पति, सेनापति का नाम हिरण्यकेश रक्खा। लोकपालो की चारो दिशाओ मे नियुक्ति की, जिनके नाम उसने सोम, वरुण, कुवेर और यम रक्खे। अपनी रानी का नाम शची रक्खा। इसने विजयार्ध की दोनो श्रेणियाँ जीत ली।

एक वार लकापति माली विजयार्ध की दोनो श्रेणियो को जीतने के लिए विशाल सेना लेकर चला। उसके साथ मे वानरवशी राजा सूर्यरज और यक्षरज भी थे। इन्द्र से उनका भयानक युद्ध हुआ। इस युद्ध मे माली मारा गया और राक्षस सेना युद्ध से भाग गई। तब इन्द्र के लोकपाल सोम ने लका और किष्किन्धा पर अधिकार कर लिया। राक्षस और वानरवशी पाताल लका मे जाकर रहने लगे।

सुमाली के रत्नश्रव नामक पुत्र हुआ। उसका विवाह केकसी से हो गया। केकसी ने एक रात को तीन स्वप्न देखे—एक तो क्रोध से उद्धत सिह देखा, दूसरा उगता हुआ सूर्य देखा और तीसरा परिपूर्ण चन्द्रमा देखा। रानी ने अपने स्वप्नो का हाल पति से कहा। राजा ने विचार कर कहा—प्रिये! तुम्हारे तीन पुत्र होगे—एक तो महान योद्धा और पाप कर्म मे समर्थ होगा तथा दो कुटुम्व को सुख देने वाले पुण्य पुरुष होगे।

जव रावण गर्भ मे आया तो रानी अहकार मे भर उठी। वह वात-वात मे सिहनी की तरह दहाड उठती थी। यथासमय रावण का जन्म हुआ। एक दिन वालक इन्द्र द्वारा प्रदत्त उस रत्नहार के पास पहुँच गया, जिसकी रक्षा हजार नागकुमार देव करते थे। उसने वह हार उठा लिया। सव लोग वालक की महान शक्ति पर आश्चर्य करने लगे। उस हार मे नौ रत्न लगे थे। उनमे रावण के नौ मुख और दिखाई देने लगे। तव सब लोगो ने प्यार मे वालक का नाम दशानन रख दिया।

कुछ समय के पश्चात् केकसी के कुम्भकर्ण नामक दूसरा पुत्र हुआ। बाद मे पूर्ण चन्द्रमा के समान चन्द्रनखा नामक पुत्री हुई और फिर विभीषण नाम का पुत्र हुआ।

एक दिन माता केकसी अपने पुत्रो के साथ महल की छत पर बैठी हुई थी। तभी आकाश मे पुष्पक विमान जाता दिखाई दिया। उसे देखकर रावण ने माता से पूछा-मा! यह महा विभूति वाला कौन जा रहा है। तव माता वोली-पुत्र! यह तेरी मौसी कौशिकी का पुत्र वैश्रवण (कुवेर) है। यह विजयार्ध के राजा इन्द्र का लोकपाल है। इन्द्र ने तेरे वावा माली को मारकर लका छीन ली थी और इस कुवेर को वहाँ का लोकपाल वना दिया है। जव से लका गई है, तव से तेरे पिता और मुझे रात मे नीद नही आती है। माता के वचन सुनकर रावण ने माता को धैर्य बधाया और कहा—मा! मैं जल्दी ही विजयार्ध के विद्याधरो को हराकर लका पर अधिकार करूँगा। तू शोक और चिन्ता छोड दे।

इसके पश्चात् तीनो भाई वहाँ से भीम नामक वन मे जाकर घोर तपस्या करने लगे। कुछ ही समय मे रावण को एक हजार विद्यायें सिद्ध हो गईं, कुम्भकर्ण को पाच और विभीषण को चार विद्यायें सिद्ध हो गईं। इसके वाद रावण ने पुन तपस्या की और चन्द्रहास नामक तलवार प्राप्त हुई। विद्या-सिद्धि के समाचार जानकर सारे कुटुम्वी वहाँ आ गये और वडा हर्ष मनाने लगे।

एक दिन असुरसगीतनगर का दैत्य नरेश मय अपनी पुत्री मन्दोदरी को लेकर वहाँ आया। उसके साथ में मारीच आदि उसके मत्री भी थे। मन्दोदरी अत्यन्त सुन्दरी गुणवती कन्या थी। राजा मय ने अपनी उस कन्या का विवाह रावण के साथ धूमधाम से कर दिया।

इसके वाद रावण ने पद्म श्री, अशोकलता, विद्युत्प्रभा आदि अनेक राजकन्याओ के साथ विवाह किये

मन्दोदरी उन सब रानियो मे मुख्य पटरानी रही। कुम्भकर्ण जिसका दूसरा नाम भानुकर्ण था-का विवाह तडिन्माला के साथ और विभीषण का विवाह राजीव सरसी नामक राजकन्या के साथ हो गया। यथासमय मन्दोदरी के दो पुत्र हुए—इन्द्रजीत और मेघवाहन।

रावण का इन्द्र के साथ युद्ध

अब रावण की कुवेर से छेडखानी शुरू हो गई। कुम्भकर्ण ने कुवेर की प्रजा लूट ली। कुवेर ने सुमाली के पास दूत भेज कर कहलवाया कि पहले तुम्हारा भाई मारा गया था। यदि तुमने अपने नातियो की उद्दण्डता को नही रोका तो तुम सवका वध निश्चित है। यह सुनकर रावण ने दूत को फटकार कर और अपमानित कर निकाल दिया। दूत ने जाकर कुवेर को सारे समाचार वताये। अत क्रुद्ध होकर कुवेर ने अपनी सेना सजाकर रणभेरी वजा दी। रावण भी राक्षसवशी और वानरवशी सेनाओ को लेकर जा डटा। गुज नामक पर्वत पर दोनो सेनाओ का घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध मे रावण ने कुवेर पर वज्रदण्ड का प्रहार किया, जिसमे वह मूर्छित हो गया और उसकी सेना भाग खडी हुई। रावण ने कुवेर के पुष्पक विमान पर अधिकार कर लिया।

अब रावण ने दक्षिण के राज्यो को जीतना प्रारम्भ किया। वह रुका नही, वढता ही गया। तभी समाचार मिला कि वानरवशी यक्षराज और सूर्यरज ने अपनी किष्कु नगरी लेने के उद्देश्य से वानर द्वीप लूट लिया। यह समाचार सुनकर इन्द्र का भयकर लोकपाल यम उनसे युद्ध करने आया। उसने युद्ध मे यक्षरज को वन्दी वना लिया और सूर्यरज को मूर्छित कर दिया है। सारी वानर सेना का यम ने निर्दयतापूर्वक विध्वस करना प्रारम्भ कर दिया। वहुत से वानरवशी मारे गये और वहुत से वानर वन्दी वना लिये गये।

'यम ने अपने यहाँ नरक जैसी व्यवस्था कर रक्खी है। वहाँ वह वन्दी वानरो को निर्मम पीडा दे रहा है। अव आप की ही शरण है।' यह सुनकर रावण सेना सहित किष्कुपुर पहुँचा। वहाँ उसका यम के साथ भयकर युद्ध हुआ। यम पराजित होकर भाग गया और इन्द्र के पास रथनूपुर जा पहुँचा। रावण ने वन्दी वानरो को मुक्त किया और यक्षरज को किष्कुपुर का राज्य दिया तथा सूर्यरज को किष्किन्धापुर का राज्य दिया। अपना गया हुआ राज्य पाकर वानरवशी वहुत प्रसन्न हुए और सुखपूर्वक रहने लगे। रावण तव राक्षसवशियो को लेकर समुद्र तट पर पहुँचा और वडे उल्लास और समारोह के साथ लका मे प्रवेश किया।

इसी वीच एक घटना और हो गई। रावण लका से वाहर गया हुआ था। तभी अलकारपुर के राजा खरदूषण ने—जो मेघप्रभ का पुत्र था, लका मे आकर रावण की वहन सुन्दरी चन्द्रनखा को हर लिया। कुम्भकर्ण और विभीषण ने उसका प्रतिरोध भी किया, किन्तु वे उसे छुडा नही सके। खरदूषण वडा वलवान था। जव रावण लौटा और उसने यह समाचार सुना तो वह वडा क्रोधित हुआ और खरदूषण से युद्ध करने को तैयार हो गया। तव उसकी पटरानी मन्दोदरी ने उसे समझाया—'कन्या तो पराये घर की होती है। खरदूषण ने चन्द्रनखा का अपहरण कर लिया तो क्या वात हो गई। अपहृत कन्या को एक तो कोई लेगा नही। दूसरे खरदूषण योग्य पात्र है। वह चौदह हजार विद्याधरो का राजा है। अनेक विद्याये उसे सिद्ध है। वह समय पडने पर आपकी सहायता भी कर सकता है। फिर पता नही, युद्ध मे किसकी जीत हो।" इस प्रकार समझाने से रावण भी युद्ध से विरत हो गया।

अब उसने इन्द्र को जीतने के लिये कूच किया। चक्ररत्न उसके पास था, जिसकी रक्षा एक हजार देव करते थे। अनेक राजा और विशाल फौज उसके साथ थी। चलते चलते विन्ध्याचल पर नर्मदा के तट पर सेना ने पडाव डाला। प्रात काल नदी की वालू इकट्ठी करके उस पर जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा विराजमान करके रावण भक्ति से पूजा करने लगा। जहाँ रावण पूजा कर रहा था, उससे ऊपर की ओर नदी का जल वाधकर माहिष्मती का राजा सहस्ररश्मि अपनी स्त्रियो के साथ जलक्रीडा कर रहा था। जव क्रीडा कर चुका तो उसने बाँध का पानी छोड दिया। पानी के पूर से रावण की पूजा मे वडा विघ्न पडा। वह क्रोधित होकर बोला कि यह क्या गडवड है। कुछ लोगो ने आगे जाकर पता लगाया और आकर रावण से निवेदन किया—'महाराज ! माहिष्मती नरेश सहस्ररश्मि अपनी रानियो के साथ जल-क्रीडा कर रहा था। उसने यह पानी छोडा है। यह सुनकर

रावण ने क्रोध मे भर कर उस पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। सहस्ररश्मि भी युद्ध के लिए तैयार हो गया। दोनो ओर से युद्ध हुआ। अन्त मे रावण ने उसे कौशल से नागपाश से बांध लिया। जब यह बात सहस्ररश्मि के पिता बाहुरथ को—जो चारण ऋद्धिधारी तपस्वी मुनि थे—ज्ञात हुई तो उन्होने रावण को समझाया। फलत. रावण ने सहस्ररश्मि को सम्मानपूर्वक छोड दिया और उसके साथ बन्धुत्व भाव प्रगट किया। किन्तु सहस्ररश्मि अपमान से दुखित होकर दिगम्बर मुनि बन गया।

तत्पश्चात् रावण आगे बढा। मार्ग मे उसने अनेक मन्दिरो का निर्माण कराया, पुराने मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराया। मार्ग मे जो राजा पडे, उन्हे जीतता हुआ उत्तर दिशा की ओर बढा।

रावण अब इन्द्र के नगर की ओर बढने लगा। किन्तु मार्ग में दुर्लंघ्यपुर नगर ने उसका अवरोध किया। इन्द्र ने विजयार्ध के मार्ग मे रक्षा के लिए उस नगर में नलकुबेर को नियुक्त कर रखा था। नलकुबेर ने नगर के चारो ओर अभेद्य कोट बना रक्खा था तथा उसके द्वारो का पता नही चलता था। गुप्त द्वार बनाये हुए थे। कोट पर किसी शस्त्र का प्रभाव नही पडता था। रावण यह देखकर अत्यन्त चिन्तित हो गया। किन्तु नलकुबेर की स्त्री रम्भा ने ही कामासक्त होकर कोट को विजय करने की विद्या रावण को बता दी और रावण ने उसे सहज ही जीत लिया।

जब इन्द्र को ज्ञात हुआ कि रावण अत्यन्त निकट आ गया तो वह देव सेना लेकर मोर्चे पर आ डटा। दोनो ओर से भयानक युद्ध हुआ। वीर प्राणो का मोह छोडकर युद्ध करने लगे। इस युद्ध मे इन्द्र के पुत्र जयन्त ने राक्षसवशी माल्यवान के पुत्र श्रीमाली को मार डाला। इन्द्र के लोकपालो को कुम्भकर्णादि वीरो ने नागपाश से बांध लिया। तब इन्द्र और रावण मे शस्त्रास्त्रो और विद्याओ से भयानक युद्ध हुआ। दोनो ही वीर थे। दोनो ने एक दूसरे के शस्त्रास्त्र और विद्याये बेकार कर दिये। एक दिन युद्ध करते हुए रावण बडी फुर्ती से अपने त्रैलोक्य-मण्डन हाथी से उछलकर इन्द्र के ऐरावत हाथी पर पहुँच गया और इन्द्र जब तक सम्हले, तब तक रावण ने उसे नागपाश मे बाध लिया। देव सेना पराजित होकर भाग गई। रावण की जय-जयकार होने लगी। रावण ने माली और श्रीमाली की मृत्यु का बदला चुका दिया।

रावण विजयार्ध की दोनो श्रेणियो को जीत कर मार्ग के सारे राजाओ को जीतता हुआ लका लौटा। वहाँ आकर उसने इन्द्र, सोम, यम आदि को कारागार मे डाल दिया। तब इन्द्र का पिता राजा सहस्रार प्रजा के अनुरोध को मानकर रावण के पास आया और इन्द्र को छोड देने का आग्रह किया। रावण ने सहस्रार का यथोचित सम्मान किया और हाथ जोडकर बोला—आप जो आज्ञा देंगे वही होगा। और लोकपालो से विनोद मे हँसते हुए बोला—इन्द्र जब मेरा दास बनकर गाँव के गधो की रखवाली करेगा, तब मैं उसे छोड दूँगा। इसके अतिरिक्त वायु मेरे यहाँ झाडू दे, यम पानी भरे, कुबेर मेरे हार की रक्षा करे, अग्नि रसोई बनावे तथा देवगण घडो में पानी भरकर लका के बाजारो में छिडकाव करें तो मैं सबको छोड दूँगा, अन्यथा नही।

यह विनोद बडा मर्मभेदी था। लोकपाल सुनकर लज्जा से अवनत मुख हो गये। तब रावण ने सबको मुक्त कर दिया और स्नान भोजन कराके इन्द्र से बोला—आज से तुम मेरे चौथे भाई हो। तुम यहाँ लका में रहकर राज्य करो और मैं रथनूपुर चला जाऊँगा। फिर सहस्रार से बोले—आप हमारे पिता तुल्य हैं। इन्द्र मेरा चौथा भाई है। इसका इन्द्र पद और लोकपालों का पद यथापूर्व रहेगा। दोनो श्रेणियो पर इसका ही अधिकार रहेगा। यदि यह और भी राज्य चाहे तो ले ले। आप चाहे यहाँ विराजें या रथनूपुर, दोनों आपकी ही हैं।

इन वचनों से सहस्रार अत्यन्त सन्तुष्ट हो इन्द्र आदि सहित वहाँ से चलकर रथनूपुर आये। किन्तु मान भंग के कारण इन्द्र और लोकपालों का मन व्यथा से भर गया था। उनका मन किसी काम में न लगता था। इन्द्र निरन्तर संसार के स्वरूप और संपत्ति की क्षणभंगुरता के चिन्तन में डूबा रहता। अन्त में एक दिन वह पुत्र को राज्य-भार देकर लोकपालों और अनेक राजाओं के साथ दिगम्बर मुनि बन गया और घोर तपस्या करके संसार से मुक्त हो गया।

रावण को चक्ररत्न तो पहले ही प्राप्त हो चुका था। अब उसने दिग्विजय करना प्रारम्भ किया। वह प्रभजन के वेग से चला। राजा लोग उपहार देकर उसका स्वागत करते और उसकी आधीनता स्वीकार कर लेते थे। किन्तु जो उसकी आधीनता स्वीकार नही करते थे, उनको वह पराजित करके कठोर दण्ड देता था। इस प्रकार अठारह वर्ष मे उसने भरत-क्षेत्र के तीनो खण्डो को जीत लिया और अर्धचक्री बनकर वह लका मे रहकर शासन करने लगा।

रावण के चरित्र का एक उज्ज्वल पहलू

रावण चरित्रनिष्ठ धार्मिक व्यक्ति था। वह परस्त्री की मन मे भी कभी वाँछा नही करता था। जब वह इन्द्र को जीतने चला और इन्द्र द्वारा नियुक्त राजा नलकुवेर के नगर दुर्लघ्यपुर पहुँचा तो वहाँ मायामय कोट को नही जीत पाया। उसने अनेक प्रयत्न किये, नाना उपाय किये। किन्तु नाम के अनुरूप दुर्लघ्यपुर दुर्लघ्य ही रहा। इस प्रकार उसे वहाँ पडे पडे छ माह हो गये। वह वडा चिन्तातुर हो गया –यो कव तक यहाँ पडा रहा जा सकता है और विना इसे जीते आगे भी कैसे वढा जा सकता है। पीछे लौटना रावण के स्वभाव के विरुद्ध था।

रावण की कीर्ति का सौरभ नलकुवेर की पटरानी रम्भा के कानो मे भी पडा। वह अपने स्वयवर के समय से ही रावण मे अनुरक्त थी, किन्तु स्वयवर के समय रावण पहुँच नही पाया था, अत मजबूरन रम्भा ने नलकुवेर के गले मे वरमाला डाल दी थी। किन्तु अब रावण को अपने निकट आया जानकर उसका सुप्त प्रेम पुन जाग उठा। उसने अपने मन की वात अपनी सखी और दासी चित्रला से कही और उससे यह भी कह दिया कि अगर तू मुझे जीवित देखना चाहती है तो कोई उपाय कर, जिससे मैं रावण से मिल सकूँ। चित्रला उसे आश्वासन देकर गुप्त मार्ग से रावण के कटक मे पहुँची और रावण से मिलकर उसने अपनी स्वामिनी का अभिप्राय निवेदन किया। रावण ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया—'भद्रे ! मैं परस्त्री से कभी समागम नही करता। यह वडा निंद्य कर्म है।' चित्रला निराश होकर वापिस जाने लगी तो रावण के लघु भ्राता विभीषण ने जो उसका मन्त्री भी था, रावण को समझाया—'आर्य ! आपको थोडा असत्य वोलकर भी इस समय दासी की वात स्वीकार कर लेनी चाहिये। इससे रम्भा आपको कोट की चावी दे देगी। रावण ने वडे अनमने भाव से दासी को वुलाकर कह दिया—तू अपनी स्वामिनी से जाकर कह देना कि मैं उनसे अवश्य मिलूंगा, किन्तु चोरो की तरह नही। जब मैं नगर मे पहुँचूंगा, तव मिलूंगा।

दासी प्रसन्न होकर लौट गई और जाकर रम्भा को सव वातें वता दी। रम्भा अत्यन्त कामासक्त हो उठी और उसने शालिका नाम की विद्या रावण के पास भेज दी, जिसके द्वारा रावण नगर के भीतर पहुँच गया और नलकुवेर को वन्दी वना लिया।

जव नलकुवेर को राजसभा मे रावण के समक्ष उपस्थित किया गया तो रावण ने रम्भा को भी बुलाया। रम्भा पुलकित होकर आशा सजोये रावण के निकट पहुँची तो रावण ने कहा—'माता !' उस अप्रत्याशित सबोधन पर रम्भा चौंकी तो रावण वोला— तुमने मुझे विद्या दी है, अत तुम मेरी गुरुआणी हो। और गुरुआणी माता के समान होती है। पर पुरुष की वामना करना महापाप है। तुम अपने पति नलकुवेर मे अनुरक्त रहो। तुमने मुझे विद्या दी है, अत मैं तुम्हारे लिये तुम्हारे पति को मुक्त करता हूँ।' यो कहकर उसने नलकुवेर को मुक्त कर दिया। रम्भा वडी लज्जित हुई।

यह रावण के महान् चरित्र का एक उज्वल पक्ष है, जिसको लोगो ने समझा नही या उपेक्षा की है।

बाली द्वारा रावण का पराभव

किष्किधा नगर के वानरवशी राजा सूर्यरज और उसकी रानी चन्द्रमालिनी के बाली नामक पुत्र हुआ। वह महा वलवान, धार्मिक था। उसके कुछ समय पश्चात् सुग्रीव नामक पुत्र और श्रीप्रभा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। इसी प्रकार किष्कुपुर नगर के राजा यक्षरज और उसकी रानी हरिकान्ता के नल और नील नामक दो पुत्र हुए। सूर्यरज के पश्चात् वाली अपनी स्त्री ध्रुवा के साथ राज्य शासन करने लगा।

वाली सम्यग्दृष्टि था। उसकी प्रतिज्ञा थी कि देव, गुरु और शास्त्र के अतिरिक्त किसी को नमस्कार नही

करूँगा। यह अभिमान की बात नही थी, बल्कि यह तो उसके धर्म का एक अनिवार्य अग था। अत वह रावण के राज्य दरबार मे नही जाता था। क्योंकि वहाँ जाने पर रावण को नमस्कार करना पडता, न करता तो व्यर्थ मे युद्ध होता। रावण ने समझा कि बाली मुझसे विमुख हो गया है। अत: उसने बाली के पास दूत भेजा। दूत ने आकर बाली से कहा—मेरे स्वामी रावण ने आपसे कहलवाया है कि हमने तुम्हारे पिता सूर्यरज को यम से छुडाकर किष्किधा का राज्य दिया था। तबसे हम दोनो मे प्रेम चला आ रहा है। किन्तु तुम मुझसे विमुख हो गये हो। अत तुम आकर मुझे नमस्कार करो और अपनी बहन श्रीप्रभा का विवाह मेरे साथ कर दो, जिससे हमारा प्रेम बना रहे, अन्यथा तुम युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

बाली ने दूत की बात स्वीकार नही की और युद्ध के लिए तैयार हो गया। किन्तु मन्त्रियो ने उसे समझाया—'महाराज! व्यर्थ युद्ध करके क्यो हिंसा का पाप मोल लेते हो और फिर रावण बडा बलवान् है। वह अर्धचक्री है। उससे जीत पाना कठिन है।' किन्तु बाली बोला—'मै रावण को चूर-चूर कर सकता हूँ।' फिर उसने सोचा—वास्तव मे इस क्षणभगुर राज्य के लिए युद्ध करना बुद्धिमानी नही है। और यो सोचकर वह राजपाट छोडकर दिगम्बर मुनि हो गया और वनो मे जाकर तपस्या करने लगा।

रावण को जब दूत ने आकर सब समाचार बताये तो वह क्रुद्ध हो उठा और चतुरगिणी सेना सजाकर बाली का मानमर्दन करने किष्किधापुर आ पहुँचा। सुग्रीव ने—जो बाली के पश्चात् राजा हो गया था—रावण की अगवानी की और अपनी बहन श्रीप्रभा का विवाह रावण के साथ कर दिया तथा उसकी अनुमति से राज्य करने लगा।

एक बार रावण पुष्पक विमान मे नित्यालोकपुर से लौटता हुआ लका जा रहा था कि उसका विमान एकाएक रुक गया। तब उसने मारीच से कहा—देखो तो, मेरा विमान किसने रोक लिया है। मारीच ने नीचे जाकर देखा कि एक तपस्वी मुनिराज कैलाश पर्वत पर तपस्या कर रहे है। उन्ही के प्रभाव मे विमान रुक गया है। उसने यह बात रावण से जाकर कही। रावण मुनिराज के दर्शन करने नीचे उतरा किन्तु वहाँ बाली मुनि को तपस्या करते हुए देखकर उसका पुराना क्रोध उमड पडा और बोला—'अरे मुनि! तूने अब भी वैर नही छोडा जो मेरा विमान रोक लिया है। मैं तुझे अभी इसका दण्ड देता हूँ।' यो कहकर वह विद्या के बल से पर्वत के नीचे घुस गया और पर्वत को उठाने लगा। पर्वत पर रहने वाले पशु भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। वृक्ष टूट-टूट कर गिरने लगे। देवपूजित जिन मन्दिर हिल उठे। तब मुनिराज ने अवधिज्ञान से जाना कि यह कुकृत्य दशानन का है। उसके इस कृत्य से भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित विशाल मन्दिर भी नष्ट हो जायेंगे। मैं पुण्योपार्जन के कारणभूत इन मन्दिरो की रक्षा करूँगा।

यो सोचकर बाली मुनिराज ने पैर के अगूठे से पर्वत को दबाया। उसके भार से दशानन पिचने लगा। उसके सारे अग पीडा से सिकुड गये। वह भयानक पीडा के कारण इतना जोर से रोने लगा कि जगत मे तबसे उसका नाम रावण विख्यात हो गया। उसके रोने का शब्द सुनकर उसकी रानियाँ आई और मुनिराज के चरणो मे गिरकर पति की प्राण-भिक्षा मागने लगी। तब मुनिराज ने दया करके अपना अगूठा ढीला कर दिया। देवो ने पचाश्चर्य की वर्षा की। रावण को भी बुद्धि आ गई और वह बाली के चरणो मे गिर कर स्तुति करने लगा और क्षमा मागने लगा।

इस काण्ड से लज्जित होकर रावण निकट के चैत्यालय मे गया और भगवान की पूजा करने लगा। वह भगवान की भक्ति मे इतना बेसुध हो गया कि अपनी भुजाओ से उसने आते निकाली और उन्हे वीणा की तरह बजाकर भगवान की स्तुति पढने लगा। रानियाँ नृत्य करने लगी।

उसकी भक्ति से प्रभावित होकर नागकुमार देवो का इन्द्र धरणेन्द्र वहाँ आया और बोला—'मैं तेरी भक्ति से बडा प्रसन्न हूँ। तू कोई वर माग।' रावण बोला—'नागेन्द्र! भगवान की भक्ति से बढकर और क्या चीज तुम्हारे पास है जो मैं मागूँ।' किन्तु धरणेन्द्र ने कहा—'मेरे दर्शन निष्फल न हो अत मै तुम्हे यह शक्ति देता हूँ। इससे देव और दानव तक पराजित हो जाते है।' यो कहकर उसने रावण को शक्ति प्रदान की। रावण एक महीने तक कैलाश पर्वत पर रहा। उसने अपने कृत्य का वहाँ रहकर प्रायश्चित्त किया और फिर लका को लौट गया।

बाली मुनि ने कर्मों का नाश कर मुक्ति प्राप्त की।

ज्योतिपुर नरेश वह्निशिख की पुत्री सुतारा थी। वह बडी रूपवती थी। उसकी याचना चक्रपुर के राजकुमार साहसगति और सुग्रीव दोनो ने की थी। किन्तु वह्निशिख ने साहसगति को अल्पायु जानकर अपनी पुत्री का विवाह सुग्रीव के साथ कर दिया। उससे दो पुत्र उत्पन्न हुए—अग और अगद। किन्तु साहसगति के मन से सुतारा निकल नही सकी। वह उसे प्राप्त करने की निरन्तर चेष्टा करता रहा। इसके लिए वह रूप-परिवर्तिनी शेमुषी विद्या का साधन करने लगा।

एक वार रावण अपने परिवार के साथ सुमेरु पर्वत पर जिन मन्दिरो के दर्शनो के लिए गया हुआ था। वहाँ से लौटते हुए विभक्त पर्वत पर उसने अपार भीड देखी। पूछने पर मारीच से ज्ञात हुआ कि पर्वत पर अनन्तवीर्य मुनि को आज ही केवलज्ञान हुआ है। यह सुनकर रावण वडे भक्ति भाव से विमान से उतरा और केवली भगवान के दर्शन किये। भगवान का उपदेश सुनकर अनेक लोगो ने नियम व्रत लिए। उस समय किसी ने रावण से भी कहा कि आप भी इस समय कुछ व्रत लीजिये। रावण बोला—'मेरा मन सदा पापी रहता है अत मैं कोई व्रत नही ले सकता। फिर भी मैं एक व्रत लेना चाहता हूँ कि जो स्त्री मुझे नही चाहेगी, मैं उसके साथ बलात्कार नही करूँगा।' यह कह कर उसने गुरु से यह व्रत ले लिया। कुम्भकर्ण और विभीषण ने गृहस्थ के व्रत लिए।

रावण द्वारा व्रत-ग्रहण

विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी मे आदित्यपुर नाम का एक नगर था। वहाँ के राजा प्रह्लाद और रानी केतुमती थी। उनके पवनकुमार नाम का एक पुत्र था। एक वार राजा प्रह्लाद अपने परिवार सहित कैलाश पर्वत पर तीर्थ-वन्दना को गये। उसी समय महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र अपनी रानी मनोवेगा के साथ तीर्थयात्रा को आये। दोनो राजाओ मे परस्पर परिचय और मित्रता हो गई। राजा महेन्द्र ने प्रह्लाद से निवेदन किया कि मेरे अजना नाम की एक कन्या है। मेरा विचार आपके पुत्र पवनकुमार के साथ उसका सम्बन्ध करने का है। राजा प्रह्लाद ने भी प्रसन्नतापूर्वक इस सम्बन्ध की स्वीकृति दे दी और सम्वन्ध पक्का कर दिया। दोनो ओर से विवाह की तैयारियाँ होने लगी।

हनुमान का जन्म

इसी वीच पवनकुमार ने भी अजना के रूप सौन्दर्य की प्रशसा सुनी। वह उसे देखने को व्याकुल हो गया और अपने मित्र प्रहस्त से वोला—मित्र! यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मुझे अ जना को एक वार दिखा दो। प्रहस्त ने वाद-विवाद के वाद अ जना को उसी रात को दिखाना स्वीकार कर लिया।

रात्रि को विमान मे वैठकर दोनों मित्र महेन्द्रपुर नगर मे अ जना के महल पर उतरे और सातवी मजिल पर झरोखे मे से उन्होने अ जना को देखा। उसके अनिद्य सौंदर्य को देखकर पवनकुमार प्रसन्न हो गया। उस समय अ जना सखियो से घिरी वैठी थी और सखियाँ उससे विनोद कर रही थी। कोई पवनकुमार के रूप-गुणो की प्रशसा कर रही थी, तभी मिश्रकेशी नाम की सखी ने पवनकुमार की निन्दा की। अ जना लज्जावश मौन बैठी रही। पवन कुमार ने अपनी निन्दा सुनी तो वह वडा क्रोधित होकर अजना को मारने उठा—क्यो उसने मेरी निन्दा सुन ली। वह अवश्य पर पुरुष मे आसक्त है। किन्तु प्रहस्त ने उसे समझा बुझाकर शान्त किया। किन्तु अ जना के प्रति दुर्भाव लेकर पवनकुमार प्रहस्त के साथ लौट आया। उसका क्रोध शान्त नही हुआ। उसने दूसरे दिन महेन्द्रपुर पर चढाई करने के उद्देश्य से रणभेरी बजा दी और महेन्द्रपुर की ओर सेना लेकर चल दिया। महेन्द्र ने आकर कुमार के पैर पकड लिए। उसके पिता ने भी समझा-बुझाकर शान्त किया। पवनकुमार ने मन मे सोचा कि इस समय तो इनकी वात मान लेनी चाहिए। विवाह के बाद उस दुष्टा को जन्म भर के लिए मैं छोड दूंगा। इस तरह सोचकर वह युद्ध से निवृत्त हो गया। यथासमय दोनो का विवाह हो गया और विदा होकर आदित्यपुर आ गये।

नगर मे वापिस आने पर कुमार ने अ जना को महल के एक एकान्त कक्ष मे रख दिया। वह उससे न वात करता, न उसकी ओर देखता ही था। अ जना पति के इस अकारण क्रोध से वडी दुखी रहती थी और दिन-रात विलाप किया करती थी। घर के सभी लोग भी अ जना के दु ख से दुखी रहते थे।

इसी वीच राजा वरुण से रावण का युद्ध छिड गया। इस युद्ध मे वरुण के पुत्रो ने खरदूषण को पकड

लिया। तब रावण ने सब आधीन राजाओ को सेना लेकर आने का निमन्त्रण भेजा। प्रह्लाद के पास भी निमन्त्रण-पत्र आया। वह जब सेना लेकर जाने लगा तो पवनकुमार अपने पिता को रोककर बोला—युवक पुत्र के होते हुए वृद्ध पिता का युद्ध के लिए जाना उचित नही है। और सेना लेकर चल दिया। चलते समय अ जना द्वार पर खभे के सहारे खडी थी। किन्तु पवनकुमार ने उसकी ओर देखा तक नही और वहाँ से चल दिया।

वहाँ से चल कर वह मानसरोवर पहुँचा और उसके तट पर ही पडाव डाल दिया। सन्ध्या के समय वह अपने मित्र के साथ तट पर बैठा हुआ था। उसने देखा कि एक चकवी अत्यन्त दुखी हो रही है। उसने मित्र से इसका कारण पूछा। मित्र बोला—यह रात्रि मे पति-वियोग के कारण दुखी है। यह सुनते ही पवनकुमार सोचने लगा—एक पक्षी केवल रात्रि भर के लिए अपने पति के वियोग मे इतनी दुखी है, तो अ जना मेरे वियोग मे कितनी दुखी होगी जिसे मैंने बाईस वर्ष से त्याग दिया है।

यह विचार आते ही मित्र से बोला—मित्र! मैं अ जना के वियोग को अब एक पल भर के लिए भी सह नही सकता। यदि तुम मेरा जीवन चाहते हो तो मुझे अ जना से मिला दो। मित्र ने उसे बहुत समझाया कि इस समय जाने से लोक में बडी हँसी होगी। किन्तु वह अपने आतुर स्वभाव के कारण जिद पर अड गया। आखिर प्रहस्त रात्रि होने पर गुप्त रूप से उसे विमान पर लेचला और वे शीघ्र ही अ जना के महल पर जा उतरे। प्रहस्त ने अन्दर जाकर अ जना को पवनकुमार के आने की सूचना दी। अ जना और पवनकुमार वडे प्रेम से मिले। और पवनकुमार रातभर उसके पास रहे। प्रात जब पवनकुमार जाने लगे तो अ जना हाथ जोड कर बोली—नाथ! मैं अभी ऋतुमती होकर चुकी हूँ। सभव है, मुझे गर्भ रह जाय। अब तक आप मुझसे बोलते नही थे। ऐसी दशा मे लोग मेरा अपवाद करेंगे। पवनकुमार बोला—'देवि! चिन्ता मत करो। तुम्हारे गर्भ प्रकट होने से पहले ही मैं यहाँ लौट आऊँगा। फिर भी मैं अपने नाम की यह मुद्रिका दिये जाता हूँ। उससे अपवाद का अवसर नही आयेगा।' यो कहकर और मुद्रिका देकर वह अपने मित्र के साथ वहाँ से जैसे गुप्त रूप से आया था, वैसे ही गुप्त रूप से चला गया।

कुछ दिनो मे अजना के गर्भ प्रकट होने लगा। उधर युद्ध लम्बा खिच जाने से पवनकुमार जल्दी नही लौट सका। अजना के यह गर्भ देखकर उसकी सास केतुमती को सदेह हुआ। उसने अजना से पूछा तो अजना ने रात मे पवनकुमार के आने की सारी घटना बतादी और उसके प्रमाण मे उसने अपने पति द्वारा दी हुई मुद्रिका भी दिखाई। किन्तु केतुमती को विश्वास नही हुआ कि उसका पुत्र जिससे बाईस वर्षो तक बोला तक नही, उससे मिलने वह चोरी से रात मे छिपकर क्यो आवेगा। अवश्य यह इस दुश्चरित्र स्त्री का पापाचार है। अजना ने अपनी दासी वसन्तमाला की भी साक्षी दिलाई। किन्तु केतुमती का सदेह बढता ही गया। उसने क्रोध मे भर कर गर्भवती अ जना को कमर

बाईस घड़ी की भूल
बाईस वर्ष का दुःख

राजा सुकठ के दो रानियाँ थी—हेमोदरी और लक्ष्मी। लक्ष्मी भगवान की पूजा-उपासना मे लगी रहती। एक दिन सौतिया डाह से हेमोदरी ने भगवान की प्रतिमा छुपा दी। लक्ष्मी दूसरे दिन प्रतिमा को न देखकर बडी दुखी हुई। उसने आहार-जल का त्याग कर दिया। सयोगवश सयमश्री नामक एक आर्यिका महल मे पधारी और लक्ष्मी के मुख से भगवान की प्रतिमा की चोरी की बात सुनकर वे सीधी हेमोदरी के पास पहुँची। हेमोदरी ने आर्यिका को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और उत्तम आसन पर बैठाया। तब आर्यिका बोली—पूर्व पुण्य से तुझे राजसपदा और वैभव मिला। तू इस जन्म मे भी धर्म कर। तूने द्वेषवश भगवान की प्रतिमा छुपा दी है, वह दे दे। प्रतिमा चुराने जैसा पाप ससार मे दूसरा नही है। इससे नरक गति मे जाना पडता है। हेमोदरी यह सुनकर भयभीत हो गई और उसने प्रतिमा लाकर दे दी, बडा प्रायश्चित्त किया, पूजा और प्रभावना की।

हेमोदरी ने केवल बाईस घडी तक भगवान की प्रतिमा को छिपाये रखा था। उसका यह फल भोगना पडा कि उसे अजना के जन्म मे बाईस वर्ष तक पति का वियोग सहना पडा।

मे जोर से लात मारी और क्रोध मे भर कर उसे आदेश दिया कि तू इसी वक्त मेरे घर से निकल जा और अपना मुह कहाँ जाकर काला कर। राजा प्रह्लाद ने अपनी स्त्री की इस राय से सहमति दिखाई। केतुमती ने अ जना के साथ वसन्तमाला को भी घर से निकाल दिया।

वहां से निकल कर दोनो निरपराधिनी अबलाये अपने कर्मों को दोप देती हुई और लोकनिन्दा और लोक-उपहास का भार ढोती हुई चल दी। चलते-चलते उनकी दशा बुरी हो गई। वे अन्त मे अपने पिता महेन्द्र के महलो पर पहुँची। द्वारपाल ने उनसे सारा समाचार ज्ञात कर महाराज को समाचार दिया। किन्तु जब राजा को यह ज्ञात हुआ कि कुकर्म के कारण अ जना को उसके घर से निकाल दिया है तो उन्होने भी अपने घर मे स्थान देने से इनकार कर दिया। वहां से निराश होकर अ जना अपने परिवारी और सम्बन्धियो के द्वार पर भी गई। किन्तु उसे किसी ने आश्रय नही दिया।

सब ओर से निराश होकर अ जना अपनी सखी के साथ वन को चलदी। राह मे उसे अपार कष्ट हुए। वह दु ख मे बार बार विलाप करने लगती, किन्तु सखी उसे धीरज बधाती। यो चलते चलते वे एक पर्वत की गुफा के निकट पहुँची। वहां उन्होने एक मुनि को ध्यान लगाये बैठे देखा। मुनि को देख कर दोनो को सन्तोप हुआ। उन्होने मुनि को नमस्कार किया। मुनि महाराज ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा 'पुत्री! तू दु ख मत कर। तेरा पुत्र लोकपूज्य होगा और पति से भी शीघ्र ही तेरा मिलन होगा।'

मुनि वहां से अन्यत्र चले गये और दोनो सखी उस गुफा मे रहने लगी तथा जगल के फलो और झरने के जल से अपना निर्वाह करने लगी। एक दिन एक भयानक सिह आया और गुफा के द्वार पर भयकर गर्जना करने लगा। अजना उसे सुनकर अत्यन्त भयभीत हो गई। तब उसके शील और पुण्य के प्रभाव से एक देव ने अष्टापद का रूप धारण कर सिह को भगा दिया।

नौ मास पूर्ण होने पर अजना के पुत्र हुआ। पुत्र महनीय पुण्य का अधिकारी था। उसके तेज से गुफा मे प्रकाश हो गया। अजना पुत्र का मुख देख कर एक बार तो अपने सारे दु खो को भूल गई। दोनो सखियाँ बड़े दुलार से उसका पालन करने लगी। धीरे-धीरे वह लोकोत्तर पुत्र चन्द्रमा की तरह बढने लगा।

एक दिन वसन्तमाला ने आकाश मे एक विमान देखा। उसे देखकर अजना भयभीत हो गई- कही कोई शत्रु मेरे पुत्र को मारने तो नही आया। इस आशका से वह विलाप करने लगी। उसके विलाप का स्वर सुन कर विद्याधर ने विमान नीचे उतारा और अपनी स्त्रियो सहित वह दोनो सखियो के पास गया। वहाँ जाकर उसने उनका परिचय पूछा। वसन्तमाला ने सारी घटना सुनाकर परिचय दिया। परिचय सुनकर वह विद्याधर बोला—अरे यह अजना तो मेरी भानजी है। बहुत दिन से इसे नही देखा था। अत मैं इसे पहचान नही सका। मेरा नाम प्रतिसूर्य है। मैं हनुरुह द्वीप का रहने वाला हूँ। फिर अजना को उसने उसके बचपन की अनेक घटनाएँ सुनाकर सान्त्वना दी। और बालक के लग्न देखकर बोला—बालक का जन्म चैत्र कृष्णा अष्टमी को रात्रि के पिछले प्रहर मे श्रवण नक्षत्र मे हुआ है। अत यह सुखी और पराक्रमी होगा।' फिर वह विमान मे बैठा कर सबको ले चला।

विमान मे मोतियो की झालर टगी हुई थी। मामा-भानजी बातो मे निमग्न थे। बालक माता की गोद मे बैठा हुआ हिलती हुई मालाओ को पकडने को बार-बार हाथ मारता था। एक बार उसने ज्यो ही माला पकडने को जोर मारा तो माता की गोद से खिसक कर विमान मे से नीचे जा गिरा। बालक के गिरते ही अजना जोरो से चीख उठी। सभी लोग इस आकस्मिक मर्मान्तक विपत्ति से त्रस्त हो उठे। विमान को दु शका के साथ नीचे उतारा किन्तु वहाँ सबने आश्चर्य के साथ देखा कि बालक जिस शिला पर गिरा था, वह शिला तो छार छार हो गई है। किन्तु बालक के कोई चोट नही आई है और वह मजे मे पडा पडा अगूठा चूस रहा है। अजना ने बडी पुलक से पुत्र को उठा लिया और छाती से चिपटा कर चूमने लगी। सब लोगो को विश्वास हो गया कि जब बचपन मे इसमे ऐसी दैवी शक्ति है तो यह निश्चय ही चरम शरीरी है।

सब लोग पुन विमान मे बैठे और आनन्द के साथ हनुरुह द्वीप मे पहुँचे। वहाँ अजना और उसके पुत्र का गाजे बाजे के साथ स्वागत हुआ और पुत्र-जन्मोत्सव बडे धूमधाम और समारोह के साथ मनाया गया। उसका

नाम हनुमान रक्खा गया। बालक वहां रहकर धीरे धीरे बडा होने लगा।

उधर रावण के पास पवनकुमार अपनी सेना के साथ पहुंचा और वरुण से भयानक युद्ध हुआ। युद्ध मे पवनकुमार ने बडी वीरता दिखाई। उसने वरुण को बन्दी कर लिया। वरुण को अन्त मे खरदूषण को छोडकर रावण के साथ सन्धि करनी पडी।

युद्ध समाप्त होने पर यश और सम्मान पाकर पवनकुमार अपने नगर की ओर लौटा। अब उसे अपनी प्राणप्रिया की याद सताने लगी। नगर में पहुँचने पर अपने विजयी राजकुमार का नगरवासियो ने हार्दिक स्वागत किया। उसे तो अजना से मिलने की शीघ्रता थी, वह स्वागत-सत्कार से निवट कर सीधा अजना के महल मे पहुँचा। किन्तु महल को सूना पाकर वह व्याकुल हो गया। वह सारे कक्षो मे अजना का नाम लेता हुआ फिरने लगा। उसने दास दासियो से अजना के बारे मे पूछा, किन्तु सब नीचा सिर किये चुप हो गये। उसके मित्र प्रहस्त ने अजना के बारे मे सब बाते पता लगाकर पवन से कही। तत्काल दोनो मित्र विमान मे महेन्द्रपुर आये। वहां भी अजना को न पाकर वह वहां से उसे ढूंढने चल दिया। प्रहस्त को उसने समाचार देने के लिए आदित्यपुर भेज दिया और स्वय वनो मे ढूंढने लगा। वह अजना के वियोग मे बिलकुल विक्षिप्त हो गया, न उसे खाने की सुध रही, न जल की चिन्ता। वह अजना-अजना चिल्लाता फिरता था।

उसके पिता प्रल्हाद पुत्र के समाचार सुनकर अत्यन्त चिन्तित हो गये। उन्होने चारो ओर अजना और पवनकुमार को ढूँढने अपने आदमी भेज दिये और स्वय भी महेन्द्रपुर जाकर और महेन्द्र को लेकर ढूंढने चल दिये। जब प्रतिसूर्य के पास पवनकुमार के बारे मे समाचार पहुँचे तो अजना अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लगी। प्रतिसूर्य ने उसे धैर्य बधाकर कहा—बेटी! चिन्ता मत कर, मैं पवनकुमार को ढूंढकर आज ही यहाँ ले आऊँगा। यो कहकर वह कुमार को ढूंढने चल दिया। वह और राजा प्रह्लाद आदि ढूंढते-ढूंढते उसी वन मे पहुँचे और पवन-कुमार को पाकर बडे प्रसन्न हुए। किन्तु पवनकुमार ने किसी से कोई बात नही की। वह चुपचाप बैठा रहा। तब प्रतिसूर्य ने उसे अजना के सब समाचार सुनाये। फलत पवनकुमार अत्यन्त आह्लादित होकर प्रतिसूर्य से गले मिला। सब लोग प्रसन्नतापूर्वक हनुरुह द्वीप आये और अजना को पाकर सब लोग बडे हर्षित हुए। कुछ समय पश्चात् सब लोग लौट गये किन्तु पवनकुमार वही रह गये।

धीरे-धीरे हनुमान यौवनसम्पन्न हुए और उन्होने अनेक विद्याओ का साधन किया। एक बार पुनः रावण का वरुण के साथ युद्ध हुआ। रावण का निमन्त्रण पाकर सभी राजा अपनी सेनाये लेकर रावण के पास पहुंचे। पवनकुमार और हनुमान भी गये। हनुमान के रूप और यौवन को देखकर रावण बड़ा प्रसन्न हुआ और बडे प्रेम से हनुमान से मिला।

दोनो पक्षो मे भयानक युद्ध हुआ। इस युद्ध मे हनुमान ने असाधारण वीरता दिखाई। उन्होनें वरुण के सौ पुत्रो को अपनी लागूल विद्या से बाध लिया और रावण ने वरुण को नागपाश से बाध लिया। इस प्रकार हनुमान के असाधारण शौर्य के कारण रावण की विजय हुई।

रावण ने प्रसन्न होकर अपनी बहन चन्द्रनखा की पुत्री अनगकुसुमा का विवाह हनुमान के साथ कर दिया और कुण्डलपुर का राज्य देकर सब विद्याधरो का प्रमुख बना दिया। बाद मे सुग्रीव और किन्नरपुर के राजा नें भी अपनी कन्याओ का विवाह हनुमान के साथ कर दिया।

श्री रामचन्द्र आदि का जन्म

एक दिन राजा दशरथ की रानी अपराजिता (कौशल्या) रात्रि मे सुखपूर्वक सो रही थी। उसने रात्रि के पिछले पहर मे चार स्वप्न देखे। वह उठी और अपने पति के पास जाकर और उनके चरणो मे नमस्कार करके बोली—नाथ! मैंने आज रात्रि के अन्तिम प्रहर मे स्वप्न मे हाथी, सिंह, सूर्य और चन्द्रमा देखे हैं।' राजा सुनकर बोले—'देवि! तुम्हारे अत्यन्त प्रभाव-शाली, सुखी और शत्रुओ का दमन करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा। उसी रात्रि को ब्रह्म स्वर्ग से चलकर एक जीव रानी के गर्भ मे आया। तबसे रानी का मन भगवान की पूजा मे अधिक लगने लगा।

कुछ दिनो के बाद सुमित्रा ने भी रात्रि के पिछले प्रहर मे पाँच स्वप्न देखे—सिंह, पर्वत पर रक्खा हुआ सिंहासन, गम्भीर समुद्र, उगता हुआ सूर्य और मागलिक चक्ररत्न। रानी ने उठकर पति से स्वप्नो का फल पूछा तो राजा ने बताया—देवि ! तुम्हारे गर्भ मे चक्ररत्न से त्रिखण्ड को विजय करने वाला यशस्वी पुत्र उत्पन्न होगा। रानी स्वप्न का फल सुनकर बडी प्रसन्न हुई।

नौ माह पूर्ण होने पर अपराजिता के फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को सूर्य के समान कान्ति वाला शुभलक्षण पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के वक्षस्थल पर पद्म चिन्ह था। अत बालक का नाम पद्मनाभ (रामचन्द्र) रक्खा गया। सुमित्रा ने भी शुभ लक्षणो वाले लक्ष्मण पुत्र को जन्म दिया। उस समय शत्रुओ के घर मे भयकारी अपशकुन हुए। सूर्य-चन्द्रमा के समान दोनो बालक क्रीडा करने लगे।

केकामती ने भरत नाम के पुत्र को जन्म दिया तथा सुप्रभा ने शत्रुघ्न को। चारो पुत्र इतने शोभित होते थे, मानो ससार को सहारा देने वाले चार स्तम्भ हो।

राजा ने ऐहिरूढ नामक एक विद्वान् ब्राह्मण को जो सब शस्त्र-शास्त्रो का ज्ञाता था, चारो राजकुमारो की शिक्षा-दीक्षा के लिये नियुक्त किया और अल्प समय मे ही चारो पुत्र शस्त्र-शास्त्रो मे निष्णात हो गये।

राजा जनक के भामण्डल और सीता का जन्म—मिथिला के राजा जनक की स्त्री विदेहा गर्भवती हुई। यथासमय विदेहा के युगल सन्तान उत्पन्न हुई-एक पुत्र और दूसरी पुत्री। पुत्र के उत्पन्न होते ही पूर्व जन्म के वैर के कारण एक देव उसे उठाकर ले गया और उसे आभूषण पहना कर तथा कानो मे देदीप्यमान कुण्डल पहनाकर पृथ्वी पर लिटा गया।

चन्द्रगति नामक एक विद्याधर अपने विमान मे आकाश मार्ग से जा रहा था। उसक दृष्टि देदीप्यमान आभूषण पहने बालक पर पड़ी। वह नीचे उतरा और तेजस्वी बालक को देखकर वह उसे उठाकर अपने महलो मे वापिस गया। वहाँ उसकी रानी पुष्पवती अपनी शय्या पर सो रही थी। राजा ने उस बालक को रानी की जघाओ के बीच मे रखकर रानी को जगाया और रानी से बोला-रानी ! उठो, तुम्हारे बालक उत्पन्न हुआ है। रानी ने उठकर उस बालक को देखा तो वह विस्मय मे भरकर पूछने लगी-'यह सुन्दर बालक किसका है। मैं तो बाझ हूँ। आप क्यो मुझसे इस प्रकार हास्य करते हैं।' राजा बोला—'रानी! स्त्रियो के प्रच्छन्न गर्भ भी होता है। तुम्हारे भी ऐसा ही गर्भ था।' रानी को फिर भी पति के वाक्य पर विश्वास नही हुआ। वह पुन पूछने लगी—'यदि यह बालक मेरे ही गर्भ से हुआ है तो इसके मनोहर कुण्डल कहाँ से आये।' अब राजा सत्य बात को छुपा नही सके और उन्होने रानी को पुत्र मिलने की सारी घटना सुना दी और कहा—तुम अब इसे अपना ही पुत्र मानकर पालन करो और लोगो को भी यही बताना है कि तुम्हारे गूढ गर्भ था। तुमने ही इसको जन्म दिया है।

राजा की आज्ञा से रानी प्रसूतिगृह मे गई। राजा ने सारे रथनूपुर नगर मे पुत्र-जन्म के समाचार प्रचारित कर दिये और धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया। देदीप्यमान कुण्डल धारण करने के कारण बालक का नाम भामण्डल रक्खा गया। बालक धाय को सौप दिया गया और अपने पुत्र की तरह ही उसका लालन-पालन होने लगा।

उधर मिथिलापुरी मे राजकुमार के अपहरण का समाचार जानकर सारी प्रजा मे शोक छा गया। रानी विदेहा पुत्र-शोक से विलाप करने लगी। राजा जनक ने रानी को धैर्य बधाया—तुम चिन्ता क्यो करती हो। तुम्हारा पुत्र किसी ने हर लिया है। वह अवश्य जीवित है और एक न एक दिन तुम्हे अवश्य मिलेगा।' इसके पश्चात् राजा जनक ने अपने मित्र राजा दशरथ को यह समाचार भेज दिया। दोनो ने ढूढने का बडा प्रयत्न किया किन्तु पुत्र नहीं मिला।

इधर जानकी धीरे धीरे बढने लगी। उसकी बाल सुलभ लीलाओ को देखकर कुटुम्बी जन पुत्र-शोक को धीरे-धीरे भूलने लगे। जानकी के नेत्र कमल सदृश थे। वह अनिंद्य सौन्दर्य को लेकर अवतरित हुई थी। ऐसा लगता था, मानो कोई देवी ही पृथ्वी पर आ गई हो। आयु के साथ उसके गुण और सौन्दर्य भी बढ़ने लगा। वह अपने बचपन से ही पृथ्वी के समान क्षमाधारिणी थी। अत लोग प्यार मे उसे सीता (पृथ्वी) कहने लगे और बाद

मे प्यार का यह नाम ही जगविख्यात हो गया। उसके अग-प्रत्यग इतने सुन्दर थे, मानो विधाता ने उसे साचे मे ही ढाला हो-चन्द्रमा के समान मुख, पल्लव के समान कोमल आरक्त हस्ततल, हसिनी की सी चाल, मौलश्री के समान भीनी-भीनी मुख की सुगन्धि, कोमल पुष्पमाल सी भुजाये, केहरी के समान कटि, केले के स्तम्भ जैसो जघाये, शची, रति और चक्रवर्ती की पटरानी का सौन्दर्य भी उसके समक्ष नगण्य लगता था। धीरे-धीरे वह सभी कलाओ और विद्याओं मे पारगत हो गई।

एक बार वर्वर देश के एक म्लेच्छ राजा ने राजा जनक के राज्य पर चढाई कर दी। अपने राज्य को नष्ट-भ्रष्ट होते देखकर जनक ने दशरथ के पास एक दूत भेजकर सहायता मागी। दशरथ ने राम और लक्ष्मण को चतुरगिणी के साथ मिथिला भेज दिया। म्लेच्छो ने जनक और कनक दोनो भाइयो को वन्दी वनाया ही था कि दोनों राजकुमार मिथिला मे पहुच गये और म्लेच्छो से युद्ध करके दोनो भाइयो को मुक्त किया तथा म्लेच्छो को मार भगाया। तथा जनक को राज्य सौंप कर दोनो भाई वापिस अयोध्या आगये। राजा जनक राम की वीरता, सुन्दरता और गुणो से बड़े प्रभावित हुए। साथ ही उनके द्वारा किये गए उपकार को चुकाने की भावना भी उनके मन मे बनी रहती थी। अत उन्होंने निश्चय किया कि मै अपनी पुत्री सीता का विवाह राम के साथ कर दूंगा।

धनु परीक्षा और राम-सीता का विवाह

राम को सीता प्रदान करने का जनक का सकल्प नारद ने भी सुना। वे उत्सुकतावश सीता को देखने मिथिलापुरी आये और जनक की आज्ञा लेकर अन्त पुर मे पहुचे। उस समय सीता दर्पण मे अपना मुख देख रही थी। दर्पण मे नारद की दाढी जटाओ वाली भयानक आकृति के पडते ही सीता डरकर भीतर भाग गई। नारद भी उसके पीछे-पीछे जाने लगे। द्वारपाल नारद को जानते नही थे। उन्होने नारद को रोका। दोनो ओर से कलह होने लगी। एक अपरिचित व्यक्ति को अन्त पुर मे प्रवेश करने से रोकने के लिये शोर सुनकर और सिपाही एकत्रित हो गये और नारद को मारने दौडे। नारद शस्त्रधारी सिपाहियो को देखकर भयभीत हो गये और आकाश मार्ग से उडकर कैलाशपर्वत पर ही दम ली। जरा आश्वस्त हुए तो उनके मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं सीता को देखने गया था। वहाँ मेरी यह दुर्गति हुई है। सीता ने ही मुझे पिटवाया है। इसके वदले मे अगर सीता को दु ख न दिया तो मैं नारद ही काहेका।

मन मे इस प्रकार सोचकर उन्होने सीता का एक चित्रपट वनाया और रथनूपुर नगर मे जाकर कुमार भामण्डल को वह चित्र दिखाया। चित्र देखते ही भामण्डल कामवाण से विद्ध हो गया। उसकी दशा खराव हो गई। यह वात उसके पिता को ज्ञात हुई। पिता ने नारद से पूछा तो नारद ने कहा—'मिथिला के राजा जनक की सीता नाम की पुत्री है। वह अत्यन्त गुणवती, रूपवती और अनेक कलाओ मे पारगत है। वह तुम्हारे पुत्र के सर्वथा उपयुक्त है' राजा ने रानी से परामर्श किया और निश्चय किया कि यदि कन्या के पिता से कन्या की याचना करेंगे तो सम्भव है, वे न माने। अत किसी उपाय से जनक को यहाँ ले आना चाहिये। फलत चन्द्रगति की आज्ञानुसार एक विद्याधर मिथिला गया और विद्या के वल से घोडे का रूप धारण कर नगर मे उपद्रव मचाने लगा। जव वह किसी प्रकार वश मे नही आया तो राजा जनक स्वय पहुँचे और घोडे को वश मे करके उस पर सवार हो गये घोडा जनक को लेउडा और रथनूपुर मे आकर भूमि पर उतारा। वहाँ घोडे से उतरकर जनक एक मन्दिर मे जाकर वैठ गये।

विद्याधर ने राजा चन्द्रगति को समाचार दिया। चन्द्रगति वहाँ से सीधा मन्दिर मे पहुँचा और जाकर जनक से परिचय किया और आदर सहित अपने महलो मे ले आया। वहाँ आकर दोनो मे बातचीत होने लगी। चन्द्रगति बोला—सुना है, आपके कोई कन्या है। मै चाहता हूँ, आप उसका विवाह मेरे पुत्र के साथ कर दे। जनक बोले—मैंने अपनी कन्या तो अयोध्यापति दशरथ के पुत्र राम को देने का सकल्प कर लिया है। यो कह कर वे राम के गुणो और उनकी योग्यता की प्रशसा करने लगे। इस पर चन्द्रगति जनक का हाथ पकड कर आयुधशाला मे ले गया और बोला—आप राम की वीरता की बडी प्रशसा कर रहे है। तो सुनिये। मेरे पूर्वज नमि विद्याधर को किसी समय धरणेन्द्र ने दो धनुष दिये थे—एक का नाम वज्रावर्त है और दूसरे का नाम सागरावर्त है। यदि राम

वज्रावर्त धनुष को ही चढा दे तो आप प्रसन्नतापूर्वक राम को अपनी कन्या दे दे। मुझे कोई आपत्ति नही होगी। यदि न चढा सके तो मै आपकी कन्या को वलात् लाकर उसका अपने पुत्र के साथ विवाह कर दूंगा। जनक ने उसकी यह शर्त स्वीकार कर ली। विद्याधर योद्धा धनुप और जनक को लेकर मिथिलापुरी आये। विद्याधर धनुप की रक्षा करते हुए वाहर ठहर गये।

जनक के आने से नगर मे हर्ष छा गया। तव जनक ने मन्त्रियो से परामर्श किया और बताया कि चन्द्रगति ने स्वयवर के लिये केवल वीस दिन का समय दिया है। मन्त्रियो ने कहा-महाराज! राम लक्ष्मण की शक्ति का परिचय धनुष के चढाने से ही हो जायगा। मन्त्रियो के परामर्श से जनक ने सब राजाओ को निमन्त्रण भेज दिये। अयोध्या को भी दूत भेजा। वे स्वयवर की तैयारी करने लगे। यथासमय सब आये। राम,लक्ष्मण भी अपने माता-पिता के साथ-साथ आये। सीता ने स्वयवर मण्डप मे माला लिये हुए प्रवेश किया। कचुकी ने सव राजाओ का यथाक्रम परिचय दिया और राजा एव राजकुमार वारी-वारी से धनुप के पास आने लगे। किन्तु वे देखते कि धनुप से विजली के समान लाल-लाल आग निकल रही है। वडे-वडे भयानक सर्प फुंकार रहे है। उन्हे देखते ही भय के मारे वे आखे वन्द कर लेते थे। कोई भय के मारे कही गिर पडा, किसी को मूर्छा आ गई। सवका वुरा हाल था। अन्त मे रामचन्द्र जी उठे। उन्होने सूर्य की ज्योति के समान उस धनुष को उठाया। उस पर प्रत्यचा चढाई और टकार करने लगे। उसकी टकार से पृथ्वी गूज उठी। उस समय देवो ने पचाश्चर्य किये। सव लोग जय-जयकार करने लगे। सीता ने आगे बढकर लज्जामिश्रित हर्ष के साथ रामचन्द्र जी के गले मे वरमाला डाल दी और रामचन्द्र जी के पास वैठ गई। वह रामचन्द्र जी के पास वैठी हुई इन्द्र के पास वैठी इन्द्राणी जैसी सुशोभित हो रही थी।

इसके वाद लक्ष्मण उठे और उन्होने सागरावर्त धनुष को उठाकर उसकी प्रत्यचा चढा दी और उसपर सन्धान के लिए वाण की ओर देखने लगे। तव विद्याधरो ने वडी विनय से कहा—वस रहने दीजिये। लक्ष्मण अत्यन्त विनय से रामचन्द्र जी के समीप आकर वैठ गये।

विद्याधर धनुष छोडकर अपने नगर को लौट गये और जाकर राम-लक्ष्मण के पराक्रम का वर्णन करने लगे। चन्द्रगति यह सुनकर अत्यन्त चिन्तित हो गया। उधर राम और सीता का विवाह वडी धूमधाम के साथ हुआ। जनक ने विपुल परिमाण मे दहेज दिया। उसी समय जनक के भाई कनक ने अपनी कन्या लोकसुन्दरी का विवाह भरत के साथ कर दिया। राजा दशरथ अपने पुत्रो के साथ अयोध्या वापिस लौट आये।

भामण्डल को सीता के विना कुछ भी न सुहाता था। यहाँ तक कि उसने खाना-पीना तक बन्द कर दिया। यह वात उसके पिता को पता चली तो उन्होने उसे समझाया-वेटा! अव सीता की तू आशा छोड दे। अयोध्या के राजकुमार राम के साथ सीता का तो विवाह हो गया। यह सुनकर भामण्डल को वडा क्रोध आया और वोला—विद्यावल से रहित भूमिगोचरियो मे कितना वल है, मैं उन्हे देखता हूँ। और वह सेना लेकर अयोध्या की ओर चल दिया। चलते-चलते वह विदग्धपुर पहुँचा। उस नगर को देखते ही उसे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो गया और शोक करते हुए मूर्छित हो गया कि मैंने क्या अनर्थ किया। मैंने अपनी वहन के साथ सम्वन्ध करना चाहा। तब लोग उसे उठाकर पुनः अपने नगर वापिस ले गये। मूर्छा दूर होने पर उसके पिता ने पूछा—क्या वात है, कौन तुम्हारी वहन है। तव भामण्डल ने अपने पूर्व-जन्म का सारा वृत्तान्त सुनाकर बताया कि मैं राजा जनक का पुत्र हूँ, सीता मेरी सगी वहन है।

भामण्डल और सीता का मिलन

चन्द्रगति यह सुनकर सपरिवार अयोध्या आया। एक मुनि से उपदेश सुनकर चन्द्रगति को वैराग्य हो गया और भामण्डल को राज्य देकर स्वय मुनि बन गया। दूसरे दिन राजा दशरथ आदि मुनि वन्दना को आये। वहाँ भामण्डल का परिचय पाकर वे उससे वडे प्रेम से मिले। सीता भी भाई से मिलकर वडी प्रसन्न हुई। यह समाचार राजा जनक को भेजा गया। वे सपरिवार अयोध्या आये और अपने पुत्र से मिलकर माता-पिता के हर्ष का ठिकाना नही रहा।

ससार की दशा और विभिन्न घटनाओ के कारण दशरथ के मन मे ससार से वैराग्य हो गया। वे सोचने

लगे कि राज्य-भार पुत्र को सौंपकर अब मुझे मुनि बन जाना चाहिये। एक दिन मंत्रियो को बुलाकर दशरथ ने कहा—मैं राम का राज्याभिषेक करके मुनि-दीक्षा लेना चाहता हूँ। अत तुम लोग राज्याभिषेक की तैयारियाँ करो।' रानियो ने बहुत समझाया किन्तु दशरथ अपने निश्चय पर अडिग रहे। राज्याभिषेक की तैयारियाँ होने लगी।

राम का वनवास

भरत का मन भी भोगो मे नही लगता था। वह विरक्त रहता था। कभी-कभी वह मुनि-दीक्षा लेने की बात भी करता था। उसकी यह प्रवृत्ति देखकर उसकी माता कैकेयी को चिन्ता रहती कि पति तो मुनि बन ही रहे है, पुत्र भी यदि मुनि बन गया तो मै कैसे जीवित रहूँगी। किस प्रकार भरत को दीक्षा लेने मे रोकूं। तभी उसे अपने वर का स्मरण हो आया। वह शीघ्र ही राजा के पास पहुँची और बोली—'महाराज! आपने रानियो के समक्ष प्रसन्न होकर मुझे वर देने को कहा था, अब आप मेरा वर मुझे दे दीजिये।' दशरथ बोले—'देवि! बोलो, क्या मागती हो। जो मागोगी, वही दूंगा।' रानी अपना वर पहले ही निश्चित कर चुकी थी। वह बोली—'नाथ! आप दीक्षा लेने से पहले मेरे पुत्र को अयोध्या का राज्य दे दीजिये।' दशरथ चिन्ता मे पड गये। फिर कुछ देर सोचकर बोले—ठीक है, यही होगा। तुमने अपना वर मांगकर मुझे उऋण कर दिया।

इसके पश्चात् दशरथ ने राम को बुलाकर उनसे कहा—'बेटा! पहले एक युद्ध मे तुम्हारी माता कैकेई ने बडी कुशलतापूर्वक मेरा रथ चलाया था। उसके कारण मुझे युद्ध मे विजय मिली थी। उसके उपलक्ष्य में प्रसन्न होकर मैने अन्य रानियो के समक्ष इन्हे इच्छित वर मांगने को कहा था। उस समय तो वह वर इन्होने मेरे पास धरोहर रख दिया। अब ये अपना वर मागकर अपने पुत्र भरत के लिए अयोध्या का राज्य माग रही हैं। प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे उनकी माग पूरी करनी चाहिये। अन्यथा भरत दीक्षा ले लेगा और उसके वियोग मे यह पुत्र-वियोग मे प्राण दे देगी।

रामचन्द्र सुनकर बडे विनय से बोले—देव! अपने वचनो का पालन करें। अन्यथा आपका लोक मे अपयश होगा। आपके अपयश के साथ तो मुझे इन्द्र की सम्पदा भी नही चाहिये।

दशरथ ने भरत को समझाया और राज्य स्वीकार करने का आग्रह किया—'पुत्र! तुमने मेरी आज्ञा का कभी उलंघन नही किया। अब तुम्हे दीक्षा का विचार छोडकर राज्य स्वीकार करना चाहिये।' किन्तु भरत बोले—पिता जी! यदि ससार मे ही सुख होता तो आप ही राज्य त्याग कर क्यो दीक्षा लेने का विचार करते। दशरथ इस उत्तर से निरुत्तर हो गये।

तब राम ने बडे स्नेह से हाथ पकडकर कहा—भाई! तुमने जो बात कही है, वह तुम्हारे ही अनुरूप है। समुद्र मे उत्पन्न होने वाला रत्न तालाब मे नही होता। किन्तु अभी तुम्हारी वय तप करने की नही है। अत. पिता की निर्मल कीर्ति फैलाने के लिये तुम्हे राज्य स्वीकार कर लेना चाहिये।

इस प्रकार भरत को समझाकर राम अपनी माता के पास आज्ञा लेने पहुँचे। उनके जाते ही दशरथ वियोग विह्वल होकर मूर्च्छित हो गये। जब माता कौशल्या ने सुना तो वे भी मूर्च्छित हो गई। जब मूर्च्छा भग हो गई तो वे शोक करने लगी। तब राम ने पिता द्वारा दिये हुए वचन की बात बताकर कहा कि माता के वरदान के कारण पिता ने भरत को राज्य दे दिया है। अत मुझे यहाँ से जाना ही होगा। मेरे यहाँ रहने से भरत की आज्ञा का विस्तार नही होगा। इस तरह माता को सान्त्वना देकर पुन पिता के पास आज्ञा लेने पहुँचे और आज्ञा लेकर अन्य माताओ के पास गये और उन्हे समझा बुझाकर नमस्कार कर उनसे आज्ञा मागी।

फिर वे सीता के पास गये और बोले—'प्रिये! मैं पिता की आज्ञा से अन्यत्र जा रहा हूँ। तुम यही रहना। सीता बोली—'नाथ! स्त्री पति की छाया होती है। जहाँ आप जायेंगे, मैं भी वहीं रहूँगी। राम ने उसे वन के कष्टों का भयानक वर्णन करके विरक्त करना चाहा, किन्तु सीता ने कहा—पति चरणो में ही सारे सुख हैं। वन के शूल भी आपके साथ रहकर मेरे लिये फूल हो जायेंगे।

जब सबसे विदा लेकर राम और सीता लक्ष्मण के पास पहुँचे तो उसे चलने को तैयार पाया। राम को बडा आश्चर्य हुआ और बोले—'भाई! तुम यहाँ रहकर माता-पिता की सेवा करते रहना।' किन्तु लक्ष्मण बोले—

'तात ! यहाँ तो मेरे दो भाई है सेवा करने को, किन्तु आपकी और माता सीता की सेवा करने को कौन है। इसलिए आपकी सेवा करने को मैं आपके साथ चलूंगा।' राम ने निरुपाय होकर लक्ष्मण को भी साथ चलने की अनुमति दे दी। जब माताओ और पिता से आज्ञा लेकर लक्ष्मण सुमित्रा माता के पास पहुँचे और आज्ञा मागी तो सुमित्रा ने आशीर्वाद देते हुए कहा—'पुत्र! तुम अवश्य जाओ। तुम राम को अपना पिता दशरथ मानना और सीता को अपनी सुमित्रा माता मानना, और उन दोनो की हमारी ही तरह सेवा करना।'

जब राम-सीता और लक्ष्मण चले तो परिजन-पुरजनो की आँखो से सावन-भादो की तरह आसुओ की वर्षा हो रही थी। राम के मना करने पर भी पुरवासी उनके पीछे-पीछे चले। जब सरयू का तट आ गया तो राम ने सबको समझाया—'पिता ने भरत को राज्य दिया है। आप लोग उनकी आज्ञा मानकर सुखपूर्वक रहें और अब आप लोग वापिस लौट जाँय।

सबको विदाकर वे तीनो चल दिये। आगे राम थे, बीच मे सीता और उनके पीछे लक्ष्मण। उन्होने सरयू नदी पार कर गहन वन मे प्रवेश किया।

इधर भरत का राज्याभिषेक करके दशरथ ने मुनि-दीक्षा लेली। उनके वियोग मे कौशल्या और सुमित्रा शोकसतप्त रहने लगी। उनके शोक को देखकर भरत का राज्य विष जसा प्रतीत होता था। कैकेयी ने जब दोनो को निरन्तर विलाप करते दुखी देखा तो एक दिन वह भरत से बोला—'बेटा! मुझ राज्य तो मिल गया, किन्तु राम और लक्ष्मण के बिना यह राज्य सूना लगता है। वे और जनकनान्दना राजवभव मे पले है। वे पाव प्यादे पथरोलो जमीन पर कैसे चलते होगे। अत. तू शीघ्र जाकर उन्हे लौटा ला। मैं भी तेरे पीछे-पीछे आ रही हूँ।

यह सुनकर शीघ्रगामी घोडे पर सवार होकर साथ मे एक हजार घोडे लेकर भरत वहाँ से रवाना हुआ। वह नदी नालो को पार करता हुआ लोगो से पूछता हुआ एक भयानक वन मे पहुँचा। वहाँ एक सरोवर के किनारे राम लक्ष्मण और सीता को बैठे हुए देखा। वह दूर से ही घोडे से उतर पडा और पैदल जाकर राम के चरणो मे जाकर मूर्च्छित हो गिर पडा। राम ने उसे सचेत किया और परस्पर कुशल क्षेम पूछी। तब भरत हाथ जोडकर मस्तक नवाकर बोला—'नाथ! आप विद्वान् हैं। राज्य के कारण मेरी यह विडम्बना हो रही है। आपके बिना वह राज्य तो दूर रहा, मुझे अपना जीवन भी अभीष्ट नही है। आप अयोध्या चलें और राज्य सभाले। मैं आपके सिर पर छत्र लगाये खडा रहूँगा, शत्रुघ्न चमर ढोरेगा और लक्ष्मण आप का मन्त्रीपद सभालेगा। मेरी मा पश्चाताप की अग्नि से जल रही है और आपकी और लक्ष्मण की माताय भी शोक से विह्वल है।'

भरत इस प्रकार कह ही रहा था कि इतने मे कैकेयी रथ पर सवार होकर सौ सामन्तो के साथ वहाँ आ पहुंची। पुत्रो को देख कर शोक से वह हाहाकार करने लगी। दोनो को उसने कठ मे लगाया और बोली-बेटा! उठो, अपनी राजधानी चलें और वहाँ चलकर राज्य करना। तुम्हारे बिना सब सुनसान मालूम देता है। स्त्री होने के कारण मुझ नष्टबुद्धि से जो अनुचित कार्य बन पडा है, उसके लिए तुम मुझे क्षमा करो।' यह सुन कर रामचन्द्रजी बोले-मा! क्या तुम नही जानती, क्षत्रियो के बचन अन्यथा नही होते। पिताजो ने जो कहा है, उसका मुझे और तुम्हे भी पालन करना चाहिए, जिससे भरत की ससार मे अपकीर्ति न हो।' फिर भरत को भी समझाया और सबके सामने उन्होने भरत का राजतिलक किया और कैकेयी को प्रणाम करके तथा भरत को पुन छाती से लगाकर दोनो को कठिनता से विदा किया।

भरत जाकर न्यायपूर्वक राज्य-शासन करने लगा। उसका मन राज्य मे नही लगता था। उसने प्रतिज्ञा की कि राम के जब दर्शन होगे, तभी मैं मुनि-व्रत धारण कर लूंगा। और वह घर मे हो योगी की तरह रहने लगा।

भ्रमण करते-करते रामचन्द्र चित्रकूट पर्वत पर पहुंचे। वहाँ कुछ दिन रहे। सुन्दर मिष्ट फल, झरनो का शीतल जल, सुरागाय का दूध और जगलो चावल, कोई कष्ट नही था। फिर वहाँ से मालव देश मे दशपुर के निकट आये। वहाँ देखा कि ईख के खेत खडे है, धान्य के ढेर लगे है। गगन-चुम्बी जिनालय बने हैं, किन्तु मनुष्य एक भी नही दीख पडता। एक दरिद्र मनुष्य आता हुआ दिखाई दिया। उससे पूछा—यहाँ के सब मनुष्य कहाँ चले गये ? वह बोला—दशपुर नगर मे वज्रकर्ण

वज्रकर्ण का कष्ट निवारण

नामक एक पापी राजा रहता था। उसे एक दिन एक मुनिराज मिले। उनके उपदेश को सुनकर राजा ने उनसे श्रावक के व्रत ग्रहण किये और प्रतिज्ञा की कि मैं देव, गुरु और शास्त्र के सिवाय किसी को नमस्कार नही करूंगा।

प्रतिज्ञा करके वह अपने नगर को लौट गया। उसने अपनी अगूठी मे जिन-प्रतिविम्ब जडवा रक्खा है। उसकी वह प्रतिदिन पूजा करता है। एक दिन वह उज्जयिनी गया। वहाँ के राजा सिंहोदर को नमस्कार करने के बहाने मुद्रिका स्थित जिन-बिम्ब को ही नमस्कार किया। यह बात किसी दुष्ट पुरुष ने भापली और बाद मे सिंहोदर से शिकायत कर दी। सिंहोदर को बडा क्रोध आया और उसने दशपुर से वज्रकर्ण को बुलवाया। जब वह उज्जयिनी जाने को तैयार हुआ तो एक व्यक्ति ने उसे सिंहोदर का दुरभिप्राय समझाया, जो उसने सिंहोदर के महलो मे चोरी के लिये जाने पर सिंहोदर के मुख से ही सुना था। वज्रकर्ण उसकी बात पर विश्वास करके किले मे लौट गया। कुछ समय पश्चात् सिंहोदर अपनी सेना लेकर उसे मारने आया। किन्तु किले को दुर्भेद्य और अजेय जानकर उसने वज्रकर्ण के पास दूत भेजा। दूत ने जाकर कहा—'महाराज! सिंहोदर ने कहा है कि मेरे दिये हुए राज्य का तू उपभोग करता है और मुझे नमस्कार न करके अपने भगवान को नमस्कार करता है। अत तू आकर मुझे प्रणाम कर अन्यथा तुझे मार डाला जाएगा।' वज्रकर्ण ने दूत से स्पष्ट कह दिया—'मैं धर्म नही छोड सकता हूँ, राज्य छोड सकता हूँ। यदि चाहे तो सिंहोदर अपना राज्य वापिस ले ले। दूत ने यह बात सिंहोदर से जाकर कह दी। इससे वह और भी जल भुन गया और क्रोध मे आकर उसने सारा नगर उजाड दिया, घरो मे आग लगवादी, मनुष्यो को मार दिया। इस नगर के सुनसान होने का यह कारण है। रामचन्द्रजी ने उस दरिद्र को अपना रत्नहार दे दिया, जिसे लेकर वह प्रसन्नतापूर्वक वहाँ से चला गया।

रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा—लक्ष्मण! वज्रकर्ण धर्मात्मा है। उसकी रक्षा करनी चाहिये। रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर लक्ष्मण धनुष-बाण लेकर सिंहोदर के दरबार मे पहुँचे। सिंहोदर ने पूछा—'तू कौन है? लक्ष्मण बोले—'मैं भरत का दूत हूँ। तुझे समझाने आया हूँ। तूने धर्मात्मा वज्रकर्ण को क्यो कष्ट दे रक्खा है। सिंहोदर क्रोध मे बोला—कौन भरत, कहाँ का भरत! वज्रकर्ण मेरा शत्रु है। वह मुझे नमस्कार नही करता, अपने भगवान को नमस्कार करता है। इसे मैं बिना मारे छोडूँगा नही। अगर भरत या तूने बीच मे टाग अडाई तो तुम्हे भी मारूँगा।' लक्ष्मण को यह सुनकर क्रोध आ गया। दोनो ओर से युद्ध होने लगा। लक्ष्मण ने आनन-फानन मे सिंहोदर को जीत लिया और मुश्के बाधकर रामचन्द्र जी के पास ले आये। सिंहोदर रामचन्द्र जी के पैरो मे गिर पडा। उसकी रानियाँ भी पति के प्राणो की भिक्षा मागने लगी। तब रामचन्द्र जी ने कहा—'तुम वज्रकर्ण की आज्ञा मे रहो।' सिंहोदर ने यह बात स्वीकार कर ली। तब रामचन्द्र जी ने वज्रकर्ण को बुलाने एक आदमी भेजा। वज्रकर्ण भगवान के मन्दिर मे जाकर और उनको नमस्कार करके रामचन्द्र जी के पास आया। दोनो मे कुशल-क्षेम हुई। फिर रामचन्द्र जी और लक्ष्मणजी ने वज्रकर्ण की खूब प्रशसा की और उससे कुछ इच्छा प्रगट करने के लिये कहा। वज्रकर्ण ने कहा—आप सिंहोदर को मुक्त कर दीजिये। लक्ष्मण ने तुरन्त उसे मुक्त कर दिया। तब वज्रकर्ण और सिंहोदर दोनो गले से मिले और सिंहोदर ने उज्जयिनी का आधा राज्य वज्रकर्ण को दे दिया और दोनो सुखपूर्वक रहने लगे।

इसके कुछ दिन पश्चात् राम वहाँ से नलकच्छपुर मे पहुँचे। वहाँ की राजकुमारी कल्याणमाला जो सदा पुरुषवेष मे रहती थी, वह जगल मे लक्ष्मण को देखकर मोहित हो गई। वह राम के निकट आई। उसने बताया कि

लक्ष्मण को वनमाला का लाभ

उसके पिता बालखिल्य को म्लेच्छ राजा ने बन्दी बना लिया है। लक्ष्मण भी उसे देखकर कामासक्त हो गये। उन्होने उसके पिता को म्लेच्छो से छुडाने का वचन दिया। कुछ दिन बाद वे लोग चलकर विन्ध्याटवी पहुँचे और म्लेच्छो से युद्ध कर लक्ष्मण ने म्लेच्छराज रौद्रभूति के कारागार से बालखिल्य को मुक्त किया और रौद्रभूति को उसका मत्री बनाया।

फिर वे खानदेश मे पहुँचे। वहाँ जगल मे वे लोग ठहरे हुए थे। उन्हे देखकर यक्षाधिपति ने उनके लिए सभी सुविधाओ से युक्त रामपुर नामक नगर बनाया। वे वहाँ रहने लगे। एक दिन दरिद्र कपिल ब्राह्मण वहाँ आया। उसने एक बार सीता का अपमान किया था, जब वे लोग उसकी यज्ञशाला मे ठहरे थे। किन्तु रामचन्द्र जी ने उसे विपुल द्रव्य देकर विदा किया।

चातुर्मास के पश्चात जव वे लोग रामपुर से चलने लगे तो यक्ष ने क्षमा-याचना करते हुए राम को स्वयप्रभ नामक एक सुन्दर हार दिया। लक्ष्मण को कानो के देदीप्यमान कुण्डल दिये और सीता को सुकल्याण नाम का एक चूडामणि रत्न दिया और एक सुन्दर वीणा दी। वहाँ से विदा होकर वे भयानक वनो मे से होते हुए विजय-पुर नगर के बाहर उद्यान मे ठहरे।

उस नगर के राजा पृथ्वीधर की सुन्दरी कन्या वनमाला वचपन मे लक्ष्मण की प्रशसा सुनकर उनके प्रति अनुरक्त हो गई थी और उन्हे मन मे पति मान लिया था। जव राजा पृथ्वीधर ने सुना कि राजा दशरथ के दीक्षा लेने पर राम-लक्ष्मण और सीता कही वन मे चले गये है तो उसने वनमाला का विवाह इन्द्रनगर के राजकुमार बालमित्र के साथ कर देना चाहा। जव वनमाला को यह ज्ञात हुआ तो उसने किसी परपुरुष के साथ विवाह न करने और पेड से लटककर गले में फासी लगाकर मर जाने का निश्चय कर लिया। सूर्यास्त होने पर वह माता पिता से आज्ञा लेकर सखियो के साथ रथ मे बैठकर वनदेवी का पूजा करने के लिये वन मे चल दी। दैवयोग से जिस वन मे जिस रात को राम-लक्ष्मण ने विश्राम किया था, उसी रात को उसी वन मे वह पहुँची। उसने वनदेवी की पूजा की और सखियो से आख बचाकर चुपचाप वहाँ से चल दी। आहट पाते ही लक्ष्मण उठ बैठे और किसी अनिष्ट की आशका से वे उसका अनुसरण करने लगे कि देखे, यह क्या करती है। वे एक वृक्ष की ओट मे खड हो गये। वनमाला चलती-चलती उसी वृक्ष के पास पहुँची और एक कपडा वृक्ष से बाँध कर बोली—इस वृक्ष पर रहने वाले हे देवताओ! यदि कभी इस वन मे घूमते हुए कुमार लक्ष्मण आवे तो तुम उनसे कह देना कि वनमाला तुम्हारे विरह मे मरगई। इस जन्म मे तो तुम नही मिल पाये किन्तु अगले जन्म मे तुम्ही मेरे पति होना।' यो कहकर वह अपने गले मे फन्दा बाँधने को तैयार हुई त्योही लक्ष्मण ने उसे रोककर कहा—'सुन्दरि! जिस गले मे मेरी बाहे पडनी चाहिये, उसमे तुम फाँसी क्यो डाल रही हो। मै ही वह लक्ष्मण हूँ।' यह कहकर लक्ष्मण ने उसके हाथ से फाँसी छीन ली और उसे आलिंगन मे भर लिया।

प्रभात होने पर जव रामचन्द्र जी उठे और लक्ष्मण को वहाँ नही देखा तो वे अधीर हो उठे और लक्ष्मण को आवाज देने लगे। लक्ष्मण फौरन वनमाला के साथ वहाँ आया। उन्हे नमस्कार किया और रात को सारी घटना कह सुनाई।

उधर जव सखियो ने वनमाला को न देखा तो वहाँ कोहराम मच गया। राजा के पास समाचार पहुँचा। राजा और रानी वहाँ आये जहाँ श्रीराम बैठे हुए थे। उन्हे नमस्कार कर वह बैठ गया। राजा ने उनसे राजमहलो मे पधारने की प्रार्थना की। सब लोग हाथी पर आरूढ होकर राजप्रासाद पहुँचे। वहाँ धूमधाम के साथ वनमाला का विवाह लक्ष्मण के साथ कर दिया।

एक दिन राजा पृथ्वीधर राम-लक्ष्मण के साथ राजदरबार मे बैठा हुआ था, तभी एक दूत वहाँ आया और राजा से निवेदन किया—'महाराज! नन्द्यावर्त के राजा अतिवीर्य ने सेना सहित आपको बुलाया है।' राजा ने उससे बुलाने का कारण पूछा तो दूत बोला—'महाराज अतिवीर्य ने अयोध्या के राजा भरत को सन्देश भेजा था कि या तो तुम मेरी आधीनता स्वीकार करो अन्यथा युद्ध के लिये तैयार रहो। शत्रुघ्न ने दूत को अपमानित करके निकाल दिया। जव राजा अतिवीर्य ने यह सुना तो वे अग, वग, तिलग देश के म्लेच्छ राजाओ को लेकर अयोध्या पर आक्रमण करने चल दिये। राजा भरत भी अवन्ती और मिथिला के राजाओ के साथ चलकर नर्मदा के तट पर आ डटा। रात मे शत्रुघ्न ने हमारे चौंसठ हजार घोडे चुपचाप खोल दिये। इस पर अतिवीर्य महाराज ने विभिन्न देशो के राजाओ को बुलाने के लिये दूत भेजे हैं। अत आप भी वहाँ शीघ्र पहुचे।

रामचन्द्र जी को यह सुनकर बडी चिन्ता हुई। वे लक्ष्मण से बोले—'वत्स! अतिवीर्य बडा बलवान और असख्य सेना का अधिपति है। भरत के पास सेना कम है। अत भरत हार जायगा। हमे भरत की सहायता करनी है किन्तु छद्मवेश मे रहकर जिससे किसी को हमारा पता न चले।' उन्होने राजा पृथ्वीधर से भी अपना अभिप्राय प्रगट किया। पृथ्वीधर राम-लक्ष्मण और सीता सहित अपनी सेना लेकर चल दिया और जाकर अतिवीर्य से मिले। सीता को तो राम ने एक जिन मन्दिर मे श्वेत वस्त्र पहनाकर आर्यिका के निकट ठहरा दिया और भगवान के दर्शन कर अतिवीर्य के पास पहुँचे। वहाँ कौशल से लक्ष्मण ने अतिवीर्य को बन्दी बना लिया। सब राजा भयभीत हो गये।

यह देखकर राम और सीता को बडा आश्चर्य हुआ। उन्होने मुनि महाराज से इसका कारण पूछा तो अवधिज्ञानी मुनि बोले—पहले इस वन के स्थान पर एक सुन्दर नगर था। उसका नाम था कार्यकुण्डल। वहाँ का राजा दण्डक था, उसकी रानी मस्करी थी। दोनो विषयलम्पटी और सद्धर्म के बिरुद्ध थे। एक दिन राजा ने बन मे एक मुनि को ध्यान करते हुए देखा। उसने उनके गले मे एक मरा हुआ सर्प डाल दिया। कुछ दिनो के बाद एक मनुष्य उधर से निकला। उसने मुनि के गले से वह सर्प हटा दिया। सर्प के विष के कारण मुनि का शरीर काला और चिपचिपा हो गया था। तभी वहाँ वह राजा आ निकला। उसने देखा कि मैंने मुनि के गले मे जो सर्प डाला था, उसको मुनि ने स्वय नही हटाया है। यह देखकर वह मुनिभक्त बन गया और उसने जैन धर्म अगीकार कर लिया। इससे रानी को बडा बुरा लगा। वह राजा को जैन धर्म से हटाने का उपाय सोचने लगी। एक दिन एक मुनि आहार के निमित्त राजद्वार पर आये। रानी ने उनके ऊपर झूठा अपवाद लगाकर राजा से शिकायत कर दी। राजा को बडा क्रोध आया। उसने सारे दिगम्बर मुनियो को घानी मे पेरने की आज्ञा दे दी। राजाज्ञा से सारे दिगम्बर मुनि जो वहाँ थे, घानी मे पेर दिये गये। एक मुनि बाहर गये हुए थे। जब वे नगर की ओर आ रहे थे तो मार्ग मे एक व्यक्ति ने उनसे मुनियो के घानी मे पेरने का समाचार सुनाया। सुनकर उन मुनि को बडा दु ख हुआ और अत्यन्त क्रोध भी आया। भयकर क्रोध के कारण उनकी बाईं भुजा से कालाग्नि के समान एक अशुभ तजस पुतला निकला। उसने सारे नगर को भस्म कर दिया। उससे कोई मनुष्य-पशु-पक्षी तक नही बचा। राजा भी उसी मे भस्म हो गया। राजा नरक मे गया, मुनि भी चिरकाल से उपार्जित धर्म को नष्ट करने के कारण नरक मे गये। राजा अनेक योनियो मे भ्रमण करते-करते अन्त मे यह गृद्ध पक्षी बना है। इसे हमे देख कर अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया है और वह अपने किये हुए पापो का प्रायश्चित कर रहा है। धीरे-धीरे नगर के भस्म के स्थान पर यह वन लग गया। उस दण्डक राजा के नाम पर ही इस वन का नाम दण्डक-वन या दण्डकारण्य पड़ गया है।

इसके पश्चात् मुनिराज ने उस गृद्ध पक्षी को उपदेश दिया। फलत उस पक्षी ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये, जीव हिंसा का त्याग कर दिया। तब मुनियो ने उस पक्षी को सीता के हाथ मे पालन-पोषण के लिये सौंप दिया और वे विहार कर गये।

तभी हाथी पर सवार होकर लक्ष्मण आये। उन्होंने पक्षी को देख कर उसके बारे मे पूछा। राम ने मुनि के आहार-दान और पक्षी के बारे मे सारी बातें बताईं। सबने बैठकर फिर भोजन किया और तीनो ने मिलकर उस पक्षी का नाम 'जटायु' रक्खा। वे लोग उस वन की शोभा देखकर वही कुटिया बनाकर रहने लगे।

सीता का अपहरण

अब रामचन्द्र जी विचार करने लगे कि यहाँ एक सुन्दर नगर बसा कर यही पर निवास किया जाय तथा माताओ को भी यही बुला लिया जाए। एक दिन वे लक्ष्मण से बोले—'वत्स! देखो तो यहाँ नगर बसाने के लिये कौन-सा स्थान उपयुक्त रहेगा। लक्ष्मण धनुष-बाण लेकर स्थान की खोज मे चल दिये। कुछ दूर जाने पर उन्हें सुगन्ध आई। आगे बढे तो बासो के झुरमुट मे एक लटकती हुई तलवार दिखाई दी। उन्होने बडे उत्साह से वह तलवार हाथ मे ले ली और उसकी तीक्ष्णता की परीक्षा करने के लिये उन्होने वह तलवार उसी बासो के झुरमुट पर फिराकर मारी। बासो के झुरमुट के साथ वहाँ किसी का सिर भी कट गया। उसे देखकर लक्ष्मण को बडा दु ख हुआ। वे तलवार हाथ मे लेकर रामचद्र जी के पास गये और बडे दु:ख भरे शब्दो मे उनसे सारा वृत्तान्त निवेदन कर दिया। राम विचार कर बोले—यह किसी विद्याधर का सिर तूने काट दिया है। अत यहाँ कुछ अनर्थ होने की सभावना है। अब सावधान रहना चाहिये।

अलकारपुर के राजा खरदूषण और (रावण की बहन) चन्द्रनखा के दो पुत्र थे—सबूक और सुन्दर। एक दिन सबूक ने पिता के मना करने पर भी सूर्यहास तलवार सिद्ध करने के लिये दण्डक-वन मे प्रवेश किया और बासो के झुरमुट मे बैठ कर ब्रह्मचर्य व्रत लेकर दिन मे केवल एक बार भोजन और एक वस्त्र पहनकर धूप-दीप आदि से अर्चना करता हुआ सूर्यहास तलवार की सिद्धि के लिये बैठ गया। उसकी माता चन्द्रनखा प्रति दिन दोपहर को पुत्र

को भात दे जाती और उसे देख जाती। बारह वर्ष बाद एक दिन उसने खड्ग को देखा। वह बडी प्रसन्न हुई। उसने अपने पति से जाकर यह बात बताई कि आज से तीसरे दिन हमारा पुत्र खड्ग सिद्ध करके यहाँ आ जायगा। अत उसके स्वागत की तैयारी करनी चाहिये।

जब अगले दिन चन्द्रनखा अपने पुत्र को देखने आई तो पुत्र का मस्तक कटा हुआ देखकर दु ख से रोने लगी। वह बार-बार मूर्च्छित हो जाती और होश मे आने पर विलाप करने लगती। वह सोचने लगी कि जिसने मेरे पुत्र का वध करके खड्ग को चुराया है, उस पापी को अपने पति और भाई द्वारा मरवा डालूँगी। यो सोचकर वह अपने पुत्र के हत्यारे को खोजने लगी। उसे कुछ दूर आगे जाने पर कामदेव जैसे दो देवकुमार दिखाई दिये। उन्हे देखते ही वह पुत्र-शोक भूल गई और काम से पीडित हो गई। वह विद्या से वनलक्ष्मी के समान सुन्दर कन्या का रूप बनाकर एक वृक्ष के नीचे बैठ कर रोने लगी। उसका करुण रुदन सुनकर सीता उसके पास आई और उसे सान्त्वना देती हुई रामचन्द्रजी के पास ले आई। राम ने उससे रुदन का कारण पूछा तो वह बोली—'नाथ! बचपन मे ही मेरे माता-पिता मर गये। मैं अनाथ होकर इस जगल मे मारी-मारी फिर रही हूँ। यदि आप दोनो मे से मुझे कोई अपना ले तो मैं उन्ही की शरण मे पड़ी रहूँगी, अन्यथा मेरा मरण निश्चित है।' उसकी बात सुनकर समयज्ञ रामचन्द्रजी बोले—बाले! हम दोनो मे से तो तुम्हे कोई नही चाहता। अन्यत्र तुम चली जाओ। यो कहकर उसे वहाँ से निकाल दिया। वह क्रुद्ध होकर अपने नगर मे लौट आई और बाल बखेर कर शरीर मे खरोचकर बुरी तरह रोने लगी। उसका रुदन सुनकर खरदूषण आया और उससे रोने का कारण पूछने लगा। उसने रो रो कर बताया—'नाथ! हमारा पुत्र सबूक सूर्यहास तलवार को दण्डक-वन मे साधन कर रहा था। कही से स्त्री सहित दो पुरुषो ने आकर हमारे पुत्र का बध कर दिया और तलवार छीन ली। मैं पुत्र को देखने गई तो वे दुष्ट मेरे साथ कुचेष्टा करने लगे। यही अच्छा हुआ कि मेरा शील खण्डित नही हुआ। मैं बड़ी कठिनाई से उनसे बच कर यहाँ आ सकी हूँ। आप उन पुत्रघातियो से अवश्य बदला लें।'

पुत्र-मरण का समाचार सुनकर खरदूषण मूर्च्छित-हो गया और विलाप करने लगा। फिर उसे क्रोध आया-मैं अभी जाकर उन दुष्टो का सिर काट कर लाता हूँ।' जब वह चलने लगा तो मन्त्रियो ने समझाया—'जिन्होने सूर्य-हास खड्ग छीन लिया और सबूक कुमार का बध किया है, वे अवश्य ही कोई वीर पुरुष होगे। अत. महाराज रावण को समाचार भेजना ठीक होगा। मन्त्रियो की बात सुनकर उसने एक दूत रावण के पास भेजा। दूत ने जाकर रावण को सब समाचार बताये। सुनकर रावण को बडा क्रोध आया और युद्ध की तैयारी करने लगा।

इधर खरदूषण पुत्र-शोक और क्रोध से अधीर हो रहा था। वह अपनी सेना लेकर दण्डक वन पहुंचा। जब सेना रामचन्द्र जी के निकट आगई, तब लक्ष्मण बोले—'देव! यह तो उस मरे हुए मनुष्य के पक्ष के लोग मालूम पड़ते हैं। उस कुलटा स्त्री ने ही ये भेजे मालूम पडते है।' रामचन्द्र जी बोले—'लक्ष्मण! तू सीता की रक्षा कर, मैं इन्हें मारता हूँ।' किन्तु लक्ष्मण ने आग्रह किया—'देव! मेरे रहते आपको युद्ध करना उचित नही है। आप राजपुत्री की रक्षा करें। मैं युद्ध के लिये जाता हूँ। यदि मुझ पर कोई विपत्ति आई तो मैं सिंहनाद कर आपको सूचना दूँगा।

यह कहकर सागरावर्त धनुष और सूर्यहास तलवार लेकर लक्ष्मण युद्ध के लिए शत्रु के सम्मुख आ डटे। दोनो ओर से युद्ध होने लगा। अकेले लक्ष्मण ने बाणो की वर्षा कर शत्रु-पक्ष को व्याकुल कर दिया। इसी बीच रावण भी सेना सहित दण्डक बन मे आगया। वह 'सबूक को मारने वाला वह नराधम कहाँ है' इस प्रकार कहता हुआ सम्मुख आया और रूपलावण्यवती सीता को देख कर काम से पीडित हो गया। वह सोचने लगा—'मैं इस रूप सुन्दरी को कैसे प्राप्त करूँ। बलपूर्वक इसका अपहरण करूँ तो व्यर्थ युद्ध होगा और अपयश भी होगा। अत. इसके हरने का कोई ऐसा उपाय करूँ कि कोई जान न पाये।

इस प्रकार सोचकर उसने कर्ण पिशाचिनी विद्या को बुलाकर उस स्त्री का परिचय पूछा और उपाय भी पूछा। उसने सीता का परिचय देकर कहा कि लक्ष्मण जब सिंहनाद का शब्द करेगा तो राम भी युद्ध के लिए जायेगा।' विद्या के वचन सुनकर उस परस्त्री लम्पट ने सिंहनी विद्या को बुलाया और उसे सिखा-पढा कर युद्ध मे भेजा। उसने जाकर दोनो ओर की सेना मे घोर अंधकार कर दिया और लक्ष्मण की आवाज मे 'राम-राम' इस

प्रकार सिंहनाद किया। रामचन्द्र जी इस सिंहनाद को लक्ष्मण का समझ कर सीता को समझा-बुझा कर और जटायु से उसकी रक्षा करने को कहकर युद्ध के लिये चल दिये। रावण तो इस अवसर की ताक मे ही था। उसने आकर सीता को उठाकर पुष्पक विमान मे बैठा लिया। यह देखकर जटायु बडी जोर से रावण पर झपटा। उसने अपनी चोच और नखो से रावण को क्षत-विक्षत कर दिया। रावण ने विघ्न आया देख कर जटायु पर प्रहार किया। बेचारा पक्षी उस प्रहार से मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडा। रावण पुष्पक विमान को लेकर अपने स्थान को चला गया।

सीता अपना अपहरण जानकर जोर-जोर से राम-राम चिल्लाती हुई विलाप करने लगी। रावण मन मे विचार करता जा रहा था—'अभी यह अपने पति के लिये विलाप कर रही है। जब मेरे ठाठ- बाट देखेगी तो यह अपने पति को भूल जायगी और मुझसे प्रेम करने लगेगी। किन्तु मैंने तो गुरु से व्रत लिया है कि किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के बिना मैं बलात्कार नही करूँगा। अत इसे एकान्त उद्यान मे रखकर युक्ति से वश मे करना ठीक होगा।' इस प्रकार सोचता हुआ वह लका जा पहुँचा।

उधर रण-भूमि मे राम को आया देखकर लक्ष्मण बोला 'देव! आप भयानक वन मे सीता को अकेली छोड कर क्यो चले आये?' राम बोले—'तुम्हारा सिंहनाद सुनकर ही मै यहाँ चला आया।' लक्ष्मण बडे आश्चर्य मे भरकर बोले—'मैंने तो कोई सिंहनाद नही किया था। आप शीघ्र चले जाइये।' राम लक्ष्मण को आशीर्वाद देकर शीघ्र वहाँ से अपने स्थान पर वापिस आये। वहाँ सीता को न पाकर 'सीता, सीता' पुकारने लगे और मूर्च्छित होकर गिर पडे। जब सचेत हुए तो वे फिर विलाप करने लगे —'देवि! तुम क्यो हँसी कर रही हो। तुम जरूर वृक्षो के पीछे कही छिपी हुई हो, जल्द निकल आओ। क्या तुम मुझे अपने वियोग से मरा हुआ देखना चाहती हो।' इस तरह विलाप करते हुए वे इधर-उधर घूमकर सीता को देखने लगे। तब उन्हे मरणासन्न जटायु धीरे-धीरे कराहता हुआ दिखाई दिया। रामचन्द्र एक क्षण को सीता का वियोग भूल गये और जटायु के कान मे धीरे-धीरे णमोकार मन्त्र सुनाने लगे। मरते समय जटायु के भाव शुभ हो गये और वह मर कर देवयोनि में उत्पन्न हुआ। जटायु के मर जाने से उनका शोक और प्रबल हो गया। वे फिर मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पडे। चेत आने पर वे फिर विलाप करने लगे—हे वन्य पशुओ! यदि तुमने कही मेरी सीता को देखा हो तो तुम मुझे बता दो। हे वृक्षो! यदि तुम्हे सीता का कुछ पता हो तो तुम्ही बता दो।' जब कही से कोई उत्तर नही मिला तो वे निरुद्देश्य ही वज्रावर्त धनुष को टकारने लगे। वे बार बार मूर्च्छित होते और पुन चेत आने पर निरर्थक प्रलाप करने लगते।

इधर रामचन्द्र जी की यह दशा थी, उधर लक्ष्मण खरदूषण के सैनिको से अकेले युद्ध कर रहे थे। इतने मे चन्द्रोदर का पुत्र विराधित वहाँ आया और लक्ष्मण से कहने लगा—'देव! हमारा अलकारपुर नगर हमसे खरदूषण ने छीन लिया है। आपकी कृपा से अब वह हमें मिल जायगा। आप खरदूषण से युद्ध करें और मैं उसके दुष्ट सैनिको से लडता हूँ। यो कह कर विराधित तो सैनिको से युद्ध करने लगा और लक्ष्मण खरदूषण से युद्ध करने लगे। लक्ष्मण ने उसे सात बार रथविहीन कर दिया। वह हाथी पर चढ कर युद्ध करने लगा तो लक्ष्मण के बाण से उसका हाथी भी मारा गया। तब दोनो मे आमने सामने पैदल ही युद्ध होने लगा। लक्ष्मण ने सूर्यहास तलवार से उसका सिर काट दिया। उधर खरदूषण का सेनापति सुभग दूषण विराधित से जूझ रहा था। लक्ष्मण ने उसके वक्षस्थल पर भिन्दमाल का करारा प्रहार किया और वह भी निष्प्राण होकर भूमि पर गिर पडा। सेनापति के मरते ही सेना भाग खडी हुई। लक्ष्मण ने सबको अभयदान दिया और शत्रु सेना की सामग्री विराधित को सौप कर लक्ष्मण शीघ्रता से राम के पास पहुँचे। वहाँ सीता के बिना राम को मूर्च्छित देखकर लक्ष्मण ने उन्हे सचेत किया और पूछा—'देव! सीता कहाँ है?' राम ने लक्ष्मण को बिना घाव के देखा तो वे प्रसन्न हुए। किन्तु फिर शोक की घटा उमड पडी और विह्वल होकर बोले—पता नही, सीता को कोई दुष्ट हर ले गया या पाताल खा गया या उसे आकाश निगल गया।' लक्ष्मण ने उन्हे बडी सान्त्वना दी—'देव! इस प्रकार शोक करने से क्या मिलेगा।' और उनके हाथ-मुँह धोए।

कुछ देर पश्चात् विराधित अपनी सेना सहित आकाश-मार्ग से वहाँ आया। लक्ष्मण ने राम से कहा—

यह राजा चन्द्रोदर का पुत्र विराधित है। इसने युद्ध मे मेरी वडी सहायता की है।' विराधित ने राम को नमस्कार किया और कहने लगा—'महाराज ! आप जैसे पुरुषोत्तम को पाकर मैं कृतार्थ हुआ। मुझे कुछ आज्ञा दीजिये।' यह सुनकर लक्ष्मण बोले—'मित्र ! किसी ने मेरे भाई की पत्नी हर ली है। यदि वह न मिली तो भाई उसके वियोग में प्राण दे देंगे और इनके विना मैं भी जीवित नही रहूँगा। इनके प्राणो के आधार पर ही मेरे प्राण हैं। अतः तुम कुछ प्रयत्न करो।' विराधित सान्त्वना भरे शब्दो में बोला—'देव ! आप कुछ चिन्ता न करें। मै आपकी पत्नी को अवश्य खोज लाऊँगा।'

उसने तत्काल अपने योद्धाओं को सीता की खोजके लिए दसो दिशाओ में भेज दिया। उन्होने सब कही छान मारा किन्तु सीता का कुछ पता न चला। वे कुछ काल के वाद लौट आये। तव राम निराश होकर बोले—'मेरे भाग्य मे दुःख ही लिखे हैं। माता-पिता से विछुड कर मैं इस जगल मे आया, किन्तु दुर्भाग्य ने यहाँ भी मेरा पीछा नही छोडा। सीता के विना मै अब एक पल भी जीवित नही रहूँगा। आप लोग घर जाइये और सुखपूर्वक रहिये।' इस प्रकार राम को विलाप करते देखकर लक्ष्मण भी रोने लगे।

तब विराधित ने उन्हे आश्वासन दिया—'देव ! इस तरह शोक करने से तो सीता मिलेगी नही। आप धैर्य रख कर कुछ उपाय कीजिये। जीवन रहेगा तो सीता भी मिल जायगी। खरदूषण मारा गया है, अतः उसके पक्ष के रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, मेघनाद, इन्द्रजीत आदि अभी चढकर आवेंगे। अतः आप अलकारपुर चलिये। वहाँ मै शीघ्र अपने योद्धाओं को सीता का पता लगाने भेजूंगा और भामण्डल के साथ मिल कर मै और वे दोनो पता लगायेंगे। यदि मै सीता का पता न लगा पाया तो अपने प्राण त्याग दूंगा।' इस प्रकार उसके वचनो से आश्वस्त होकर सब लोग अलकारपुर चले। वहाँ जाकर नगर को घेर लिया और उस पर अधिकार कर लिया। चन्द्रनखा पश्चिम द्वार से अपने पुत्र के साथ निकल भागी। विराधित ने राम और लक्ष्मण को एक सुन्दर महल में ठहरा दिया। पुरजन अपने राजा को पुनः पाकर बडे हर्षित हुए। सब लोग बैठकर सीता की खोज का उपाय सोचने लगे। किन्तु उस महल मे भी राम को सीता के विना सब कुछ सूना-सूना लगता था। उन्हे कुछ देर भगवान की पूजा करने से शान्ति मिलती थी।

लंका के उद्यान मे सीता

रावण विमान मे ले जाते हुए सीता को समझाने लगा—'सुन्दरी ! तुम क्यो शोक करती हो। कहाँ वह दरिद्री राम और कहाँ त्रिखण्डपति मैं। मेरे पास ससार की सारी सपदायें है। तू राम का ध्यान छोडकर मेरे साथ भोग कर और आनन्दपूर्वक शेष जीवन विता। मैं तुझे अपनी अठारह हजार रानियो मे पटरानी का पद दूंगा।' यह कहकर उसने सीता की ओर ज्योंही हाथ बढाया, सीता वड़े क्रोध मे बोली—'पापी ! खवरदार जो मुझे स्पर्श किया। परस्त्री गमन से तू नरक मे पड़ेगा। यदि तूने मुझे स्पर्श करने का प्रयत्न किया तो सती के शील से तू अभी भस्म हो जायगा।' रावण भयभीत होकर पीछे हट गया और लका में जाकर अपने महलो के पीछे अशोक उद्यान मे सीता को ठहरा दिया।

तभी चन्द्रनखा अपने पुत्र सहित बाल विखेर कर विलाप करती हुई वहाँ आई। उसने अपने पुत्र और पति के वध का समाचार रावण को सुनाया। रावण के घर मे हाहाकार मच गया। तब रावण ने उसे समझाते हुए कहा—'बहिन ! तू शोक मत कर। मै शीघ्र तेरे पति के हत्यारे का वध करके बदला लूँगा। तू यहाँ आनन्दपूर्वक रह।' इस प्रकार चन्द्रनखा को सान्त्वना देकर रावण अन्तःपुर मे जाकर खेदखिन्न होकर शय्या पर पड गया। तब उसकी रानी मन्दोदरी आकर कहने लगी—'नाथ ! आप इतने शोकग्रस्त क्यो हैं। खरदूषण मारा गया तो क्या हुआ।' तब रावण कहने लगा—'देवि ! तुम शपथ खाओ कि मेरी बात सुनकर तुम क्रोध नही करोगी।' तब मन्दोदरी ने शपथ खाई। तब रावण बोला-'एक भूमिगोचरी की स्त्री सीता को लाकर मैंने उद्यान में रक्खा है। अनेक उपाय करने पर भी वह मेरे अनुकूल नही होती। यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहती हो तो तुम जाकर उसे अनुकूल करने का प्रयत्न करो।' मन्दोदरी यह सुनकर वोली—'अच्छी बात है। मैं उसे वश में करके तुमसे मिलाऊँगी।'

यह कहकर मन्दोदरी अशोक उद्यान मे सीता के पास पहुँची और समझाने लगी—'लड़की ! तू यहाँ

आकर उदास क्यो है। जिसे रावण जैसा बली त्रिखण्डाधिपति पति प्राप्त हो रहा हो, उसे शोक करना उचित नही है। तेरे राम-लक्ष्मण रावण की तुलना मे अति तुच्छ है। यदि तू महाराज रावण की बात स्वीकार नही करेगी तो रावण कुपित होकर क्षणभर मे राम और लक्ष्मण को मार डालेंगे। यदि तूने समझ से काम लिया तो तू पटरानी बनकर जीवन का आनन्द उठावेगी।'

यह सुनकर अश्रुपूरित नयनो से मन्दोदरी को देखती हुई सीता बोली—'माता! सतियो के मुख से ऐसे वचन नही निकलने चाहिये। मेरा शरीर टुकडे-टुकडे कर दिया जाय, तब भी मैं राम को छोड अन्य पुरुष की इच्छा नही कर सकती। पर-पुरुष चाहे इन्द्र चक्रवर्ती ही क्यो न हो।'

इधर ये बातें हो ही रही थी कि काम से व्याकुल रावण वहाँ आया और मुस्कराता हुआ सीता को समझाने लगा। किन्तु सीता ने फटकारते हुए करारा उत्तर दिया। तब रावण ने क्रोधित होकर विद्यात्रल से वहाँ घोर अन्धकार कर दिया। नाना प्रकार के फुंकारते हुए विषधर और भयानक जन्तु सीता को डराने के लिये भेजे। किन्तु सीता राम के ध्यान मे निमग्न रही, वह भयभीत नही हुई।

तब रावण वहाँ पर ही पर्दा डालकर मंत्रियो से मंत्रणा करने लगा। वहाँ सीता के रुदन के शब्द विभीषण के कानो मे पड़े। वह पर्दा उठाकर सीता के पास पहुँचा और पूछने लगा—'बहिन! तू किसकी पुत्री है और यहाँ बैठी क्यो रुदन कर रही है।' तब सीता ने उत्तर दिया—'भाई! मैं मिथिलापति जनक की पुत्री और अयोध्यापति दशरथ की पुत्र-वधू हूँ। वन मे जब मेरे पति राम और देवर लक्ष्मण युद्ध को गये थे तो मुझे अकेली पाकर पापी रावण मुझे हर लाया है। अब आप मुझे यहाँ से छुडाकर मेरे पति राम के पास पहुँचाने का कोई उपाय करो।'

सीता के मुख से ये वचन सुनकर विभीषण को बड़ा क्रोध आया। वह रावण के पास आकर कहने लगा—'देव! आप ज्ञानवान हैं, फिर भी आपने परस्त्री हरण जैसा अपवादकारी निंद्य पाप क्यो किया? आप यह तो जानते ही हैं कि परस्त्री समागम से कुल की अपकीर्ति और नाश हो जाता है। अत आप दया करके सीता को उसके पति के पास पहुँचा दें।' किन्तु यह सुनकर निर्लज्ज रावण बडी धृष्टता से बोला—त्रिखण्ड मे जितनी भी सुन्दर वस्तुयें है, सब मेरी हैं।' यह कहकर वह मारीच आदि से बात करने लगा। तब मारीच कहने लगा—नाथ! राजाओ को सदा न्याय-मार्ग पर चलना चाहिये। लोकनिंद्य काम करने से वश का नाश हो जाता है।'

रावण को मारीच का उपदेश रुचिकर नही लगा और वह वहाँ से उठकर चल दिया। उसने अपना सारा वैभव सीता के आगे से निकाला, जिससे सीता प्रभावित हो किन्तु सीता पर इसका कुछ प्रभाव नही पडा। वह तो सदा राम के ही चरणो का ध्यान करती थी। उसने मन मे सकल्प कर लिया कि जब तक पुन पति से समागम न होगा तब तक अन्न-जल ग्रहण नही करूँगी। रावण ने सीता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये अनेक चतुर स्त्रियाँ सीता के पास रख दी, जो रत्न, मुक्तक आदि के अनेक आभूषण और शृंगार की सामग्री सीता के पास लाकर रखती, उसे प्रेमभरी रसीली बातें सुनाती, कोई उसे भयभीत करती, किन्तु सीता उनको न कुछ उत्तर देती और न ही बोलती। वे जाकर रावण को रिपोर्ट देती कि सीता पर हमारी बातो का कुछ भी प्रभाव नही पडता। रावण काम विमूढ हुआ सीता का ही दिनरात ध्यान करता।

तब एक दिन विभीषण ने मंत्रि-परिषद बुलाई और कहने लगा—'देखो, रावण सीता को ले आया है। इससे बडा अनर्थ होगा। न्याय मार्ग पर चलने वाले हनुमान आदि राजा विरुद्ध हो जायेंगे। रावण का दाहिना हाथ खरदूषण मारा ही गया है। राम की सहायता पाकर विराधित बलवान हो गया है। वानरवशी अपनी ही समस्याओ मे उलझे हुए हैं। भगवान के मुख से आप लोग सुन ही चुके हैं कि दशरथ के पुत्रो के हाथ से रावण की मृत्यु होगी। अतः आप लोग कुछ उपाय करें कि यह अनर्थ टल सके।' तब मंत्रियो ने निश्चय किया कि लका की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिये। प्रभावशाली पुरुषो को मधुर वाक्यो से अपने पक्ष मे कर लेना चाहिये और दुष्ट जनो को धनादि से परितृप्त कर अपने अनुकूल करना चाहिये। रावण का जिसमे हित हो, हमे वही कार्य

करना चाहिये। सीता के बिना राम जीवित नही रहेगा और राम के मरने पर लक्ष्मण स्वय मर जायगा। अत हमे तब तक धैर्य रखना चाहिये।

इस निर्णय के अनुसार विभीषण ने लका के चारो ओर यन्त्रों का एक दूसरा परकोट बनवाया, खाई खुदवादी। चारो ओर रक्षा के लिए सुभट और दिक्पाल नियुक्त कर दिये और युद्ध की सी तैयारी होने लगी।

सुग्रीव से राम की मित्रता

सुग्रीव की स्त्री सुतारा के प्रति आसक्त विद्याधर साहसगति पर्वत पर जाकर कामरूपिणी विद्या सिद्ध कर किष्किधापुरी आया। उस समय सुग्रीव कही बाहर गया हुआ था। अत साहसगति सुग्रीव का रूप बनाकर महलो मे गया और सुतारा को पकडने लगा। किन्तु रूप बना लेने पर भी साहसगति को सुग्रीव के समान बाते नही आती थी, न वह वहाँ के शयनासन, द्वारपालो आदि से ही परिचित था। अत. सुतारा को सन्देह हो गया और वह उससे बचकर दूसरे कक्ष मे चली गई। तभी असली सुग्रीव नगर मे आया। उसे देखकर लोग आश्चर्य करने लगे—एक तो सुग्रीव पहले आया ही था, यह दूसरा कौन आ गया। लोगो के आश्चर्य को देखता हुआ असली सुग्रीव महलो मे पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही छद्मवेशी साहसगति उससे लडने आया। दोनो ओर की सेनाये भी आडटी। तब मन्त्रियो ने सोचा—'असली सुग्रीव कौन सा है, यह निर्णय करना कठिन है। फिर व्यर्थ ही इन गरीब सैनिको का अकारण वध क्यो कराया जाय।' यह सोचकर उन्होने दोनो सुग्रीवो को उत्तर और दक्षिण दिशा मे ठहरा दिया। सुतारा ने बताया कि जो पहले आया था, वह नकली सुग्रीव है। जामवन्त ने भी उसका समर्थन किया। किन्तु मन्त्रियो ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। वहाँ का शासन-सूत्र बाली के पुत्र चन्द्ररश्मि ने सभाल लिया तथा प्रतिज्ञा की कि जो भी सुग्रीव महलो मे आवेगा, उसका ही वध कर दूंगा।

असली सुग्रीव बेचारा बडा दुखी हुआ। उसने रावण तथा अपने मित्र हनुमान से सहायता माँगी। हनुमान सेना लेकर आया तो नकली सुग्रीव ने उसका बडा स्वागत किया। तब हनुमान भी असली और नकली सुग्रीव की पहचान नही कर पाया और वह वापिस चला गया। तब सुग्रीव खरदूषण से सहायता लेने के लिए दण्डकारण्य पहुँचा। वहाँ हाथो, घोडो और मनुष्यो की लाशो को देखकर सोचने लगा कि यहाँ युद्ध किसका हुआ है। उसने एक मनुष्य से इस बारे मे पूछा तो उसने खरदूषण की मृत्यु, सीता हरण आदि वृत्तान्त कह दिया। तब सुग्रीव ने सोचा कि जिन्होने खरदूषण जैसे वीर को मार दिया, वे अवश्य लोकोत्तर वीर पुरुष हैं। उन्ही से सहायता लेनी चाहिए। अत उसने एक दूत राजा विराधित के पास दोस्ती के उद्देश्य से अलकारपुर भेजा। दूत ने जाकर विराधित से सब बाते कही। विराधित सोचने लगा—राम के ससर्ग से न जाने क्या-क्या लाभ होगे। देखो, सुग्रीव भी मेरी शरण मे आ रहा है! यह विचार कर उसने दूत से कह दिया—सुग्रीव से कहना, वह राम की शरण मे आ जाय। वे ही उसका दु ख दूर कर सकेंगे।

दूत ने सुग्रीव से जाकर सब बाते कह दी। सुग्रीव अपनी सेना के साथ अलकारपुर जिसे पाताल लका भी कहते थे-आया। सेना का कोलाहल सुनकर लक्ष्मण ने विराधित से पूछा—'यह किसकी सेना आ रही है।' तब विराधित ने सुग्रीव का परिचय देते हुए कहा—वह वानर वशी राजा राम की सहायता करने के लिए आ रहा है। तभी सुग्रीव अपने मन्त्रियो सहित वहाँ आया। राम और लक्ष्मण उससे प्रेम से मिले। तब राम ने सुग्रीव के मन्त्री जामवन्त से उसके आने का कारण पूछा। जामवन्त बोला—'देव! यह चौदह अक्षौहिणी सेना का अधिपति वानर वशी राजा सुग्रीव है। जब यह तीर्थ यात्रा को गया हुआ था तो कोई मायावी पुरुष सुग्रीव का रूप बनाकर किष्किधापुरी मे आ गया और वहाँ रहने लगा। सुग्रीव इससे बडा दुखी है। इन्होने हनुमान से सहायता मागी, किन्तु उन्होने इनकी कोई सहायता नही की। अतः ये आपकी शरण मे आये है। आप ही इनका दुःख दूर कर सकते है।'

राम ने सोचा—यह भी मेरी तरह ही पत्नी-वियोग से दुखी है। यह मेरा कार्य अवश्य करेगा। यह सोचकर वे सुग्रीव से बोले यदि तू मेरी पत्नी सीता का पता लगाकर लावेगा तो मैं नकली सुग्रीव को निकाल कर तुझे तेरी सुतारा और तेरा राज्य दिला दूंगा।' यह सुनकर सुग्रीव बोला—'महाराज! मैं वचन देता हूं कि यदि

सात दिन के भीतर मैं सीता का पता लगाकर न लाऊँगा तो अग्नि मे प्रवेश कर जाऊँगा।' राम उसकी बातो से बडे प्रसन्न हुए और दोनो ने प्रतिज्ञा की—हम परस्पर विश्वासघात नही करेंगे।

सुग्रीव राम और लक्ष्मण को रथ मे बैठाकर सेना सहित किष्किन्धापुरी आया और उसने एक दूत नकली सुग्रीव के पास भेजा। दूत ने उससे जाकर कहा—तुम या तो राजा सुग्रीव की शरण मे जाओ या युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।' नकली सुग्रीव युद्ध के लिए तैयार हो गया और सेना लेकर आ डटा। दोनो पक्षो मे जोरदार युद्ध हुआ। विषयलम्पटी साहसगति ने सुग्रीव पर प्रहार किया। इससे सुग्रीव मूर्छित हो गया। उसे मरा हुआ जानकर साहसगति आनन्दपूर्वक नगर मे चला गया। होश आने पर सुग्रीव राम से बोला—प्रभो! हाथ मे आया हुआ चोर निकल गया। आपने मेरी सहायता नही की।' तब रामचन्द्र जी बोले—'मैं युद्ध के समय तुम दोनो के रूप रग मे अन्तर नही जान पाया। अत मैंने मारना उचित नही समझा।'

इसके बाद राम ने साहसगति को पुन युद्ध के लिए ललकारा और युद्ध के लिए उसके सम्मुख आये। उन्होने वज्रावर्त धनुष पर डोरी चढाई और उसे टकारने लगे। उसकी टकार सुनकर साहसगति की कामरूपिणी विद्या भय के मारे भाग गई। अत सुग्रीव का रूप हटकर वह पुन साहसगति के रूप मे आ गया। उसकी ओर की सारी सेना उसका असली रूप देखकर सुग्रीव की ओर आ गई। तभी राम ने तलवार से उसका सिर काट दिया। सेना मे जय-जयकार होने लगा। सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण का खूब आदर किया। दोनो भाई नगर के बाहर एक मनोरम उद्यान मे ठहर गये। सुग्रीव बहुत दिनो बाद सुतारा से मिला और वह विषय-भोगो मे इतना निमग्न हो गया कि राम से की हुई प्रतिज्ञा भी भूल गया।

जब राम ने देखा कि सुग्रीव अपनी प्रतिज्ञा को पूरा नही कर रहा है तो उन्हे बडा क्रोध आया। वे लक्ष्मण के साथ एक दिन सुग्रीव के महलो मे पहुँचे और उससे कहा—'रे दुष्ट! सुतारा को पाकर तू सुख से घर मे बैठ गया है।' इस प्रकार कह कर राम उसे मारने को तैयार हुए तो लक्ष्मण ने बीच मे पडकर राम से कहा—देव! इस पापी को क्षमा करे। यह अपने कार्य को भूल गया है।' फिर भय से काँपते हुए सुग्रीव से बोले—'राजन्! महान पुरुषो को उपकार नही भूलना चाहिये।' तब सुग्रीव राम के पैरो मे पड कर क्षमा मागने लगा और बोला—'प्रभो! आप मेरी शक्ति देखिये। मैं अभी सीता का पता लगा कर लाता हूँ।' यो कहकर उसने अपने सुभटो को आवश्यक निर्देश देकर चारो ओर भेज दिया और स्वय भी विमान मे बैठकर वहाँ से चल दिया।

सुग्रीव अनेक नगरो, वनो और पर्वतो पर सीता को खोजता हुआ जा रहा था। तभी उसे कबुद्वीप के शिखर पर एक वृक्ष के नीचे एक व्यक्ति बैठा दिखाई दिया। सुग्रीव उसके पास पहुँचा। वह व्यक्ति भय से कापने और रोने लगा। उसने समझा कि सुग्रीव को रावण ने मेरा वध करने भेजा है। सुग्रीव ने उसके पास जाकर अभय देते हुए कहा—तू कौन है, काँपता क्यो है, भय मत कर।' तब उस व्यक्ति ने कहा—'राजन्! मै जटी का पुत्र रत्नजटी हूँ। मैं जब धातकीखण्ड के चैत्यालयो की वन्दना करके आकाश मार्ग से लौट रहा था तो मेरे कानो मे सीता के रोने की आवाज आई।

लक्ष्मण द्वारा कोटिशिला उठाना

वह विलाप करती हुई 'हाय राम हाय लक्ष्मण, हाय भाई भामण्डल कह रही थी। मैने उसे पहचान लिया। मै तुरन्त रावण के पास गया और उसे ललकारते हुए कहा—'रे पापी! यह राम की पत्नी और मेरे स्वामी भामण्डल की बहन है। इसे तू कहाँ लिये जा रहा है।' यह कह कर मैं उससे लडने लगा। तब रावण ने क्रोध मे आकर मेरी सारी विद्यायें नष्ट कर दी और मै इस कबुवन मे आकर गिरा। मै वहाँ से उठकर पर्वत पर आ गया।'

सुग्रीव यह सुनकर बडा प्रसन्न हुआ। उसने कहा—'तुम चिन्ता मत करो कि तुम्हारी विद्याये नष्ट हो गई है। तुम हमारे भाई हो। आओ, हम राम के पास चले।' यो कह कर सुग्रीव रत्नजटी को राम के पास लिवा लाया और राम से बोला—'प्रभो! सीता का पता लग गया है, विस्तृत समाचार इससे पूछिये।' राम ने रत्नजटी से सारा समाचार ज्ञात किया और बार बार पूछने लगे-भाई! सत्य कहना, तुमने मेरी सीता देखी है? रत्नजटी बोला—प्रभो! सचमुच मैंने आपके वियोग से दुखी सीता को देखा है। लका का राजा पापी रावण उसे हर कर ले गया

है।' तब राम ने प्रसन्न होकर विद्याधर को सुन्दर मणियो का हार और वस्त्र पुरस्कार मे दिये और कहा कि तेरा राज्य भी तुझे वापिस दिलाऊँगा।

इसके बाद राम ने क्रोध मे भरकर विद्याधरो से पूछा कि लका यहाँ से कितनी दूर है और दुष्ट रावण कौन है ? यह सुनकर विद्याधर डर गये। कोई रावण के बारे मे बताने का साहस नही कर सका। बडी कठिनाई से जामवत ने रावण के पराक्रम का परिचय दिया और कहा—उससे लडने की सामर्थ्य ससार मे किसी की नही है। आप सीता का विचार छोड दें।

तब लक्ष्मण बोले—'उस अधम रावण को हम देखेंगे। वह शक्तिशाली होता तो यो चोरो की तरह सीता को चुरा कर न ले जाता। आप लोग लका का मार्ग बता दीजिये।' तब जामवन्त बोला—पुरुषोत्तम राम! आप यह हठ छोड दीजिये। एक बार रावण ने भगवान अनतवीर्य से पूछा था कि मेरी मृत्यु किसके हाथ से होगी। उस समय भगवान ने उत्तर दिया था कि जो अपने पराक्रम से कोटिशिला उठा लेगा, वही चक्र द्वारा तेरा वध करेगा।

यह सुनकर लक्ष्मण बोले—'उस शिला को मैं उठाऊँगा।' लक्ष्मण की यह बात सुनकर सुग्रीव, नल, नील, विराधित राम-लक्ष्मण को विमान मे बैठाकर कोटिशिला के निकट गये। यह शिला नाभिगिरि के ऊपर स्थित है। यहाँ से अनेक मुनि सिद्ध हुए है। उन्होने जाकर सुर-असुरो मे पूजित उस शिला को अक्षत-पुष्पादि से पूजा की। बाद मे लक्ष्मण ने सिद्ध भगवान को नमस्कार कर अपने पराक्रम से उस कोटिशिला को उठाया। लक्ष्मण ने उस शिला को जांघो तक उठाया। राम आदि सभी यह देखते रहे। देवो ने पचाश्चर्य किये। सब उपस्थित लोगो को विश्वास हो गया कि सचमुच मे लक्ष्मण नारायण है। सब लोग उसी दिन विमान मे अपने-अपने नगर मे वापिस आ गये।

किष्किधापुरी वापिस आने पर राम ने कहा—विद्याधरो! आप लोग अब देर न कीजिये और लका पर जल्दी चढाई करके दुखी सीता को छुडाइये।' तब विराधित बोला—'देव! आप युद्ध चाहते हैं या सीता ? यदि बिना युद्ध के सीता मिल जाय तो यह श्रेष्ठ मार्ग रहेगा। हम पहले किसी नीतिज्ञ चतुर व्यक्ति को रावण के पास भेजते हैं। शायद वह समझाने-बुझाने से सीता को वापिस करने पर सहमत हो जाय।

हनुमान का लका-गमन

राम ने भी इस उपाय को स्वीकार कर लिया। सबने परामर्श किया कि किस व्यक्ति को भेजना उचित रहेगा। सबने एक मत से कहा—हनुमान ही उपयुक्त व्यक्ति है। वही इस कार्य को कर सकता है और रावण को समझा भी सकता है। अत एक दूत को तत्काल विमान द्वारा हनुमान के पास भेजा गया। उसने जाकर हनुमान से खरदूषण और शम्बूक की मृत्यु, और सुतारा की प्राप्ति आदि के सब समाचार सुनाये। अपने पिता खरदूषण और भाई शम्बूक की मृत्यु के समाचार सुन कर हनुमान की पत्नी अनगकुसुमा विलाप करने लगी और हनुमान की दूसरी पत्नी पद्मरागा अपने पिता सुग्रीव के कुशल समाचार सुनकर हर्ष करने लगी और जिनालय मे जाकर नृत्य गान करने लगी। हनुमान ने तब अनगकुसुमा को धैर्य बधाया। बाद मे सेना लेकर वह किष्किधापुर चला। सुग्रीव आदि राजाओ ने हनुमान का प्रेम से स्वागत किया। सुग्रीव ने सुतारा की प्राप्ति और रामचन्द्र जी के शौर्य आदि के बारे मे विस्तारपूर्वक सब समाचार बताये। तब सब लोग रामचन्द्र जी के पास गये। हनुमान ने राम से कहा—'देव! मैं रावण को समझा कर अवश्य सीता को वापिस लाऊँगा। आप निश्चिन्त रहे।'

जब हनुमान चलने लगा तो जामवत ने उसे समझाया—वानरवशियो को एकमात्र तुम्हारा ही सहारा है। अत तुम लका मे सावधानी से जाना और किसी के साथ विरोध मत करना।' हनुमान ने उसकी बात मान ली और वहाँ से चलने लगा। तब रामचन्द्र जी ने हनुमान को छाती से लगा कर कहा—'तुम सीता से जाकर कहना कि राम तुम्हारे वियोग मे न सोते है, न खाते है, न बैठते है। वे पागलो की तरह इधर-उधर घूमते रहते है। वे जानते है कि तुम शीलवती हो। उनके वियोग मे तुम प्राण त्याग देने पर तुली हो। किन्तु मनुष्य-जन्म बडा दुर्लभ है। अत प्राणो की रक्षा का यत्न करो। शीघ्र ही तुम्हारा और उनका मिलाप होगा। तुम उनकी आशा रक्खो और भोजन करो।' इस प्रकार कहकर रामचन्द्र जी ने निशानी के लिए अगूठी दी और कहा—वीर! तुम सीता को मेरी यह निशानी दे देना और उसे और भी विश्वास दिलाने के लिये उससे कहना कि रामचन्द्र जी ने कहा है

कि हम तुम दोनो ने दण्डक वन मे चारण मुनि को आहार दान दिया था, वशगिरि पर्वत पर हम लोगो ने मुनियो का उपसर्ग दूर किया था और जब उस दुष्ट कपिल ब्राह्मण ने तुम्हे जल नही दिया था, तब मैंने तुम्हे रामगिरि मे जल पिलाया था। जब तुम लौटो तो सीता का चूडारत्न ले आना।'

हनुमान ने कहा—'देव ! ऐसा ही करूँगा।' और राम के चरणो मे नमस्कार कर सब विद्याधरो से कहा—जब तक मै लौट कर वापिस न आऊँ, तब तक आप लोग यही रहना और इन दोनो महापुरुषो की सेवा करना।'

यह कह कर हनुमान वहाँ से सेना सहित सानन्द विदा हुआ। मार्ग मे उसे महेन्द्रपुर नगर दिखाई दिया जो उसकी ननिहाल थी। उसे देख कर हनुमान को बडा क्रोध आया कि जब मै पेट मे था, तब मेरे नाना ने मेरी माँ को बडा दुःख दिया था। अतः क्रोध मे भर कर हनुमान ने रणभेरी बजा दी। दोनो ओर की सेनाओं मे घोर युद्ध हुआ। अन्त में हनुमान ने अपनी लागूल विद्या से महेन्द्र को बाध लिया। तब मन्त्रियो ने उन्हे छुडाया। नाना और धेवता तब प्रेम से मिले। राजा महेन्द्र ने अपने धेवते का बडा सम्मान किया। चलते समय हनुमान ने कहा—आप अपने पुत्रो और सेना को लेकर शीघ्र रामचन्द्र जी के पास पहुँच जायें।

इसके पश्चात् हनुमान मार्ग में अपनी माता से मिला। आगे बढने पर हनुमान ने देखा कि उदधिनामक द्वीप पर दधिमुख नगर के पास वन जल रहा है और उसमे दो चारण मुनि तपस्या कर रहे है। हनुमान ने बडी भक्ति और करुणा से अपनी विद्या द्वारा वहाँ जल बरसा कर अग्नि को शान्त किया और मुनि-चरणो की पूजा की। उपसर्ग दूर होते ही तीन कन्याओ को विद्या सिद्ध हो गई। वे तीनो दधिमुख नगर के गधर्व राजा की पुत्रियाँ थी। जिनके नाम चन्द्ररेखा, विद्युत्प्रभा और हरगमाला थे। उन्होने आकर पहले तो मुनियो की वन्दना की, फिर हनुमान का नमस्कार किया। हनुमान के पूछने पर उन कन्याओं ने बताया कि हमारे पिता ने एक अवधिज्ञानी मुनि से पूछा था कि हमारा पति कौन होगा। तब उन्होने कहा था कि जो साहसगति को मारेगा, वही इनका पति होगा। उधर अगारकेतु विद्याधर हमे चाहता था। हम मुनि के वचनो पर विश्वास करके मनोनुगामिनी विद्या सिद्ध करने बारह दिन पहले इस वन मे तपस्या करने आई थी और ये मुनि आठ दिन पहले आये थे। तब अगारकेतु ने बडे उपसर्ग किये और उसी ने वन मे आग लगादी। उपसर्ग के कारण हमे बारह वर्ष मे सिद्ध होने वाली विद्यायें बारह दिन मे सिद्ध हो गई। आपने आग बुझाकर मुनिराज और हमे जलने से बचा लिया।'

हनुमान ने कन्याओं की प्रशसा करते हुए रामचन्द्र जी का सारा वृत्तान्त सुनाया। यह समाचार गन्धर्वराज के पास पहुँचा तो वह नगरवासियो के साथ वहाँ आया और हनुमान से मिलकर कन्याओ को लेकर सेना सहित रामचन्द्र जी के पास चल दिया और वहाँ जाकर कन्याओ का विवाह रामचन्द्र जी के साथ कर दिया।

हनुमान चला जा रहा था कि उसकी सेना एक मायामई यन्त्रनिर्मित परकोटे से रुक गई। जब हनुमान को यह ज्ञात हुआ कि यह सब रावण की सुरक्षा के लिये भारी तैयारी है तो हनुमान ने कुछ देर मे ही उस परकोटे के खण्ड-खण्ड कर दिये और शालिविद्या का हृदय भेद दिया। जब इस कोट के रक्षक वज्रमुख को, जिसने रावण की आज्ञा से इस कोट का निर्माण किया था—पता चला कि कोट ध्वस्त कर दिया है, वह हनुमान से सेना सहित लडने आया। दोनो मे युद्ध हुआ। अन्त मे हनुमान ने उसे मार दिया। तब उसकी पुत्री लकासुन्दरी युद्ध के लिये आई। किन्तु हनुमान का मोहन रूप देखकर उस पर मोहित हो गई और सन्धि कर ली।

वहाँ से चलकर हनुमान सर्वप्रथम न्यायशील विभीषण के घर पर गया। दोनो परस्पर गले मिले। फिर हनुमान ने विभीषण से कहा—'राजन् ! आपके भाई ने परस्त्री हरण करके बडा लोक निंद्य कार्य किया है। आप उन्हे इस काम से रोकिये, नही तो व्यर्थ जन-धन हानि होगी।' विभीषण बोला—'मैंने उन्हे बहुत समझाया बुझाया है, किन्तु वे मेरी एक नही सुनते। सीता को ग्यारह दिन भोजन छोडे हुए हो गये है किन्तु उन्हे दया नही आती। आप जाकर सीता को समझा कर भोजन कराइये। मैं तब तक रावण को समझाता हूँ।'

हनुमान यह सुनकर अशोक उद्यान मे पहुँचा और अशोक वृक्ष के नीचे जहाँ सीता बैठी हुई थी, वहाँ पहुँचा। उसने देखा—सीता अपने हाथ की बायी हथेली पर गाल टेके हुए है, आखो से आसू झर रहे है। गर्म गर्म श्वास निकल रहे हैं, बाल बिखरे हुए है और राम का ध्यान कर रही है। हनुमान ने समझ लिया कि राम क्यो इसके गुणो

का स्मरण कर व्याकुल हो रहे है। तब हनुमान अपनी विद्या से वृक्ष पर रूप बदल कर जा बैठे और राम की दी हुई अगूठी सीता की गोद मे डाल दी। अगूठी राम नामाङ्कित थी। अगूठी को देख कर सीता बडी हर्षित हुई, मानो साक्षात् राम के ही दर्शन हो गये हो। सीता को प्रसन्न देखकर विद्याधरियो ने जाकर रावण को समाचार दिया। रावण ने समझा—मेरा कार्य सिद्ध हो गया। उसने उन विद्याधरियो को खूब पुरस्कार दिया और मन्दोदरी से कहा—तुम अन्य रानियो के साथ जाकर सीता को प्रसन्न करो।' मन्दोदरी अन्य रानियो को लेकर सीता के पास पहुँची और उससे कहा—'तुम्हे प्रसन्न देखकर हमे भी प्रसन्नता है। अब तुम ससार विजयी रावण के साथ आनन्द के साथ भोग करो।' सीता सुनकर बडी कुपित होकर बोली—'विद्याधरी! मुझे मेरे पति के समाचार मिल गये है इसलिये मै प्रसन्न हूँ। अब यदि मेरे पति ने यह सब सुन लिया तो रावण जीवित नही बचेगा।' फिर सीता कहने लगी—'यहां ऐसा मेरा कौन भाई है, जिसने लाकर मुझे राम की अँगूठी दी है।'

हनुमान यह सुनकर वृक्ष से नीचे उतरे और उन विद्याधरियो के समक्ष ही सीता के सामने जा पहुँचे और चरणो मे नमस्कार कर कहा—'माता! रामचन्द्र जी की यह अँगूठी मै लाया हूँ।' सीता द्वारा परिचय पूछने पर हनुमान ने अपना परिचय देते हुए कहा—रामचन्द्र जी आपके वियोग मे बडे दुखी है, न खाते हैं, न सोते हैं। दिन-रात आपका ही ध्यान करते रहते है।' अपने पति के समाचार पा कर सीता बडी प्रसन्न हुई। फिर वह कहने लगी—'हाय! मै पापिनी तुझे इस समय इस खुशी के समाचारो के बदले कुछ भी नही दे सकती।' हनुमान बोला—, माता! आपके दर्शनो से ही मेरा पुण्य-वृक्ष फल गया।' तब सीता बार-बार राम-लक्ष्मण की कुशलता के समाचार पूछने लगी और कहने लगी—'हनुमान! सच कहना, कही उनकी अगुली से गिर जाने के कारण यह अगूठी तुम उठा तो नही लाये। वे इस समय कहां है। लक्ष्मण खरदूषण से युद्ध करने गये थे। उनके वियोग मे कही राम ने प्राण तो नही त्याग दिये।' तब हनुमान ने कहा—'माता वे इस समय किष्किन्धापुर मे है। बहुत से विद्याधर उनके साथ हैं। उन्होने ही मुझे आपके पास भेजा है।'

तब मन्दोदरी हनुमान से बोली—'अरे कृतघ्न! अब रावण की सेवा छोडकर विद्याधर होकर भी तूने भूमि गोचरियो की सेवा अगीकार करली है। अब तेरी कृतघ्नता का फल तुझे शीघ्र मिलेगा! रावण राम-लक्ष्मण सहित तुझे भी शीघ्र मार डालेगे।' तब हनुमान ने उसे करारा उत्तर देते हुए कहा —'भूमिगोचरी तो तीर्थंकर भी होते है। तू राम-लक्ष्मण के पराक्रम को नही जानती। इसीलिए तू पटरानी होकर यह दूती का निद्य कार्य कर रही है। तू देखेगी कि राम-लक्ष्मण के हाथो तेरा पति रावण अब शीघ्र ही मारा जायगा।'

तब मन्दोदरी आदि सीता को मारने झपटी किन्तु हनुमान की एक ही हुकार से वे भयभीत होकर वहाँ से भाग गई। तब हनुमान ने सीता से कहा—'माता! आप भोजन कर लीजिये। रामचन्द्र जी ने यह आज्ञा दी है। विभीषण की रानियो ने भी सीता से भोजन करने का बहुत आग्रह किया। बडी कठिनाई से सीता ने थोडा सा भोजन किया। हनुमान ने फिर निवेदन किया—'माता! आप मेरे कन्धे पर बैठ जाइये। मै अभी आपको रामचन्द्र जी के पास पहुँचाये देता हूँ।' किन्तु सीता ने कहा—'बिना प्रभु रामचन्द्र जी की आज्ञा के मैं वहाँ नही जा सकती। दुनियाँ मेरा अपवाद करेगी। तू विश्वास के लिए यह चूडामणि रत्न लेजा और प्रभु से कहना—सीता आपके दर्शनो की लालसा से ही प्राण धारण किये हुए है।' इस प्रकार कह कर सीता ने हनुमान से शीघ्र चले जाने को कहा।

सीता की आज्ञानुसार हनुमान वहाँ से चल दिया। रानियो ने जाकर रावण से शिकायत की। रावण ने नौकरो को आज्ञा दी कि जाकर विद्याधर को पकड लाओ। नौकरो को आते देखकर हनुमान ने विद्या से वानर का रूप रख लिया और एक वृक्ष की शाखा मे छिप गया। जब हनुमान को कही नही देखा तो वे इधर-उधर ढूढने लगे। तब हनुमान ने वृक्ष उखाड-उखाड उन्हे मारना शुरू कर दिया। उसने उस उद्यान को तहस-नहस कर दिया। घुडशालाये नष्ट कर दी, गजशालाओ मे आग लगा दी। अनेक लोगो को मार डाला। तब कुछ लोगो ने जाकर रावण से फरयाद की— महाराज! कोई भारी दैत्य आया है। उसने अनेक घर ढा दिये, वृक्ष उखाड फेंके, अनेक लोगो को मार डाला।' यह सुनकर रावण ने अपने पुत्र मेघनाद से कहा—पुत्र! तू जा, देख तो यह कौन पापी आया है।

मेघनाद हाथी पर चढकर राक्षसो के साथ वहाँ आया। उसे देखकर हनुमान ने विद्या से वानर सेना तैयार करी। हनुमान और मेघनाद मे युद्ध हुआ। आखिर हनुमान ने मेघनाद को मार भगाया। तब इन्द्रजीत लडने आया। दोनो मे भयानक युद्ध हुआ। अन्त मे इन्द्रजीत ने हनुमान को नागपाश मे बाँध लिया और ले जाकर रावण के सामने खडा कर दिया।

रावण उसे देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला—अरे दुष्ट ! तूने लका मे यह ध्वस क्यो किया, मेरा उद्यान क्यो नष्ट कर दिया। मैंने तुझे प्रभुत्व दिया था और तू राम से जा मिला, जिसकी स्त्री को मैं ले आया हूं और अब तू उस राम का दूत बन कर आया है। मैं तुझे अभी मारता हूं।' यो कह कर रावण ने हनुमान को मारने के लिए तलवार उठाई, किन्तु मन्त्रियो ने उसे यह कह कर रोक लिया कि दूत अवध्य होते है। तब हनुमान ने निर्भय होकर कहा—मैंने तो अभी क्या नाश किया है, किन्तु क्रुद्ध राम शीघ्र ही तेरा नाश करेंगे। परस्त्री चोर रावण तो नरक जायगा ही, किन्तु आप लोग भी इस पाप मे साथ देने के कारण नरक मे जायेंगे। समझलो, अब राक्षसवशियो का विनाश-काल आ गया है।

तब रावण ने क्रोध से भर कर आज्ञा दी—'इस दुष्ट को नगर के बाहर ले जाकर शूली पर चढा दो।' अनेक सुभट हनुमान को लोहे की साकलो से बाँध कर लका के बाजारो मे होकर ले चले। लोग हनुमान का उपहास उडाने लगे—रावण से विमुख होने का यही फल मिलता है। यह सुनकर हनुमान को क्रोध आ गया। उसने लोह शृखलाये तोडदी और आकाश मे उड गया। उसने नगर का स्वर्णमयी कोट ढा दिया, फाटक तोड दिये। सारी लका मे आग लगा दी। रावण का घर, ध्वज, तोरण नष्ट कर दिये। इस प्रकार लका-दहन कर हनुमान किष्किंधापुरी की ओर चल दिया। वह वहाँ पहुँच कर राम के पास पहुँचा और उन्हे प्रणाम कर खडा हो गया। राम ने उसे छाती से लगाकर पूछा—सीता कुशलपूर्वक तो है। तुमने उसे कहाँ देखा।' तब हनुमान ने चूडामणि रत्न निकाल कर उनके सामने रख दिया और सीता का कहा हुआ सन्देश सुना दिया। उसे सुनकर राम दु ख से अधीर होकर रोने लगे। तब लक्ष्मण ने उन्हे धैर्य देते हुए कहा—'देव ! दु ख करने से क्या होगा। मैं आज ही लका मे जाकर रावण को मारकर सीता को लाऊँगा।' तब राम को कुछ सान्त्वना मिली और अपने शरीर से आभरण उतार कर प्रेम पूर्वक हनुमान को दे दिये।

लक्ष्मण ने सब विद्याधरो को एकत्रित किया और उनसे कहा—'अब लका पर चढाई करने का समय आ गया है। अब देर नही करनी चाहिये। सब विद्याधर लका पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गये और सब विमानो मे बैठ कर चल दिये। उस दिन प्रभात के समय मार्गशीर्ष कृष्णा पचमी थी। चलते समय अनेक शुभ शकुन हुए। राम की सेवा मे बडे-बडे योद्धा थे—नल, नील, सुग्रीव, अग, अगद, हनुमान, विराधित, महेन्द्र, प्रसन्नकीर्ति, धनगति, भूतनाद, गजस्वन, व्रज्रमुख आदि। वे चलते-चलते वेलधर द्वीप पहुँचे। वहाँ पर नगर के राजा समुद्र से युद्ध हुआ। नल ने उसे जीता हुआ पकड लिया। जब उसने रामचन्द्रजीका आधिपत्य स्वीकार कर लिया तो उसे उसका राज्य दे दिया। वहाँ से चल कर सुवेलपुर पहुँचे और वहाँ के राजा सुवेल को जीता। वहाँ से लका को चले। विमानो से सबने देखा—सोने का कोट, सोने के महल, अत्यन्त वैभवपूर्ण लका नगरी। सब लोग हसद्वीप मे उतर गये। वहाँ के राजा को जीता और भामण्डल की प्रतीक्षा करने लगे। तब तक लका मे एक दूत भेज दिया।

राम का लका पर आक्रमण

राम का आगमन सुनकर लका मे कोलाहल मच गया। रावण ने रणभेरी बजा दी। सभी सुभट एकत्रित होकर रावण के पास पहुंचे। रावण को युद्ध के लिये उद्यत देखकर विभीषण उसे समझाने लगा—'देव ! कृपा कर मेरी विनय सुनिये। आप न्याय मार्ग पर चलने वाले हैं। अत आप राम को सीता सौप दीजिये। व्यर्थ ही इस अन्याय युद्ध से लाभ नही होगा। हमारे वश का नाश हो जायगा।' यह सुन कर इन्द्रजीत बोला—'अगर आपको भय लगता है तो आप घर मे बैठिये। स्त्रीरत्न को पाकर कही छोडा जाता है। रावण के आगे राम बेचारा तुच्छ है।' तब विभीषण पुन समझाते हुए बोला—'इन्द्रजीत ! ऐसा मत कहो। पाप से राजा भी रक हो जाते है। तुम्हारे पिता सीता नही लाये, बल्कि विष लाये हैं। हनुमान आदि अनेक राजा-गण राम के पक्ष मे मिल गये है।'

विभीषण के यह वचन सुन कर रावण क्रोध मे अधा होकर विभीपण को मारने दौडा, तव विभीपण भी युद्ध के लिये तैयार हो गया। तब मन्त्रियो ने समझा-बुझाकर दोनो को रोका। किन्तु रावण क्रोध मे भर कर बोला—'दुष्ट ! तू शत्रु से मिल गया है। अत तू इसी समय लका से निकल जा।' विभीपण बोला—'अच्छी बात है। मैं अभी यहाँ से जाता हूँ। यदि मैने लका नष्ट न की तो मै रत्नश्रवा का पुत्र नही। इस प्रकार कह कर विभीपण तीस अक्षौहिणी सेना लेकर राम से मिलने चल दिया।

विभीपण की सेना का कोलाहल सुनकर वानरवशी सेना भी युद्ध के लिए तैयार हो गई। राम और लक्ष्मण ने वज्रावर्त और सागरावर्त धनुष उठाये और नगर से बाहर युद्ध के लिये चल दिये। वानरवशी सेना भी उनके पीछे चल दी। तव विभीपण ने राम के पास दूत भेजा। दूत ने आकर राम से कहा—'देव ! विभीपण अपने भाई रावण से शत्रुता कर आपकी शरण मे आये है।' राम ने यह सुनकर जावुनद आदि मन्त्रियो को बुला कर मन्त्रणा की और यह निर्णय किया कि विभीपण धर्मात्मा है। रावण से सीता को लेकर उसका प्रारम्भ से ही विरोध रहा है। अत दोनो मे मतभेद और शत्रुता होना कोई आश्चर्य की बात नही है। इसलिये विभीपण को अवश्य बुलाना चाहिये। फलत विभीपण को भेजने के लिये दूत से कह दिया। विभीपण ने आकर राम को नमस्कार किया और बोला—'प्रभो ! इस जन्म मे आप और दूसरे जन्म मे भगवान जिनेन्द्र मेरे शरण है।' राम ने बडे प्रेम से विभीषण से कहा—'विभीषण ! मैं विजय कर राक्षस द्वीप सहित लका तुम्हे दूंगा, मेरी यह प्रतिज्ञा है।'

इधर यह बात हो रही थी, तब तक अनेक विद्याओ का अधिपति भामण्डल आ पहुँचा। उसे देखकर वानर वशियो को बडी प्रसन्नता हुई। उसके साथ एक हजार अक्षौहिणी सेना थी।

अब सेना को लेकर राम ने लका की ओर प्रयाण किया और लका के बाहर सेना का पडाव डाल दिया। उसी के सामने रावण की सेना भी आ डटी। रावण की सेना मे चार हजार अक्षौहिणी थी और राम की सेना मे दो हजार अक्षौहिणी थी।

सबसे प्रथम रावण की ओर से हस्त और प्रहस्त नामक सुभट अपनी सेना लेकर युद्ध के लिए आये। इधर राम, लक्ष्मण और नल-नील भी आगे बढे। उनके पीछे उनकी सेना थी। युद्ध प्रारम्भ हो गया। रक्त की कीचड मच गई। हाथी, घोडे, मनुष्य कट कट कर गिरने लगे। लाशो पर लाश पडने लगी। तब नल, नील ने भयकर युद्ध कर भिण्डमाल के प्रहार से हस्त-प्रहस्त को मार दिया।

दूसरे दिन रावण पक्ष के मारीच आदि राजा युद्ध के लिये आये। उन्होने भयकर युद्ध किया। वानर वशियो मे भगदड मच गई। तव हनुमान आगे बढा। उसके प्रहार से राक्षसवशियो की सेना तितर-वितर होने लगी। उसे रोकने के लिए राक्षसो का सेनापति माली आगे आया। हनुमान और माली का घोर युद्ध हुआ। हनुमान ने माली के हृदय पर भयानक वेग से शक्ति का प्रहार किया। वह मूर्च्छित हो गया। उसके सैनिक उसे युद्धस्थल से उठा ले गये। तव वज्रोदर माली के स्थान पर लडने लगा। हनुमान ने उसे अल्पकाल मे ही मार डाला। फिर रावण का पुत्र जवुमाली लडने आया। दोनो वीरो मे बडी देर तक युद्ध हुआ। हनुमान ने जवुमाली के सीने पर वज्रदण्ड का कठोर प्रहार किया, जिससे वह मूर्च्छित हो गया। उसकी सेना उसे लेकर भाग निकली। हनुमान ने भागती हुई सेना का पीछा किया और जहाँ रावण खडा था, जहाँ होनिर्भय होकर युद्ध करने लगा। उसे देखकर रावण आगे बढा, किन्तु उसे रोक कर अन्य योद्धा युद्ध करने लगे और हनुमान को घेर लिया। तब नल, नील, सुग्रीव, सुषण, विराधित, प्रीतिकर, भामण्डल, समुद्र, हस आदि राजा मिलकर राक्षस-सेना पर टूट पडे। राक्षस घवडा गये। तब वीर कुम्भकर्ण लडने उठा। उसने वानरवशियो को दबाना शुरू किया। तब उससे लडने के लिए हनुमान, अगद, भामण्डल, शशी इन्द्र, आय। कुम्भकर्ण ने माया से सबको सुला दिया। सबके हाथ से शस्त्र गिर गये। तब सुग्रीव ने प्रबोधिनी विद्या द्वारा सबको सचेत किया। वे पुन सचेत हो गये और उससे युद्ध करने लगे। उनके प्रहारो से कुम्भकर्ण घबडा गया। तब रावण स्वय युद्ध करने आया। किन्तु इन्द्रजीत ने उसे रोक कर स्वय युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। उसने वाणो की वर्षा से सबको क्षत-विक्षत कर दिया। अपनी सेना का यह विनाश देखकर सुग्रीव, भामण्डल आदि उससे युद्ध करने लगे। सुग्रीव इन्द्रजीत से भिड गया, भामण्डल मेघनाद से जा जूझा।

हनुमान ने कुम्भकर्ण को जा दवाया। अद्भुत युद्ध हुआ। इन्द्रजीत ने मेघ वाण छोडा तो भयकर वर्षा होने लगी। सारा कटक मछली की तरह तैरने लगा। तव सुग्रीव ने पवन वाण से मेघो को छिन्न विच्छिन्न कर दिया। तव इन्द्रजीत ने अग्नि वाण छोडा। चारो ओर आग लग गई। उसे सुग्रीव ने मेघ वाण छोड कर वुझा दिया। अन्त मे इन्द्रजीत ने मायामय अस्त्रो से सुग्रीव को व्याकुल कर दिया और फिर नागपाश मे वांध लिया। उधर मेघनाद ने भामण्डल को उसी अस्त्र से वांध लिया।

यह देखकर विभीषण ने राम और लक्ष्मण से कहा—'प्रभो ! देखिये, सुग्रीव और भामण्डल को नागपाश मे वांध लिया है और हनुमान को घायल कर कुम्भकर्ण ने भुजाओ मे जकड लिया है। इनके मर जाने पर हम सवका मरण निश्चित है। आप इनकी रक्षा कीजिये। मैं तव तक इन्द्रजीत और मेघवाहन को रोकता हूं।' यह कह कर विभीषण इन्द्रजीत और मेघनाद से युद्ध करने पहुँचा। दोनो भाई अपने चाचा से सकोच के साथ युद्ध से हट गये। तव तक अगद ने कुम्भकर्ण से हनुमान को छुडा लिया। सुग्रीव और भामण्डल को मरा जानकर राक्षस वापिस चले गये। तव सव लोग उनके पास आये। उस समय राम ने गरुणेन्द्र को स्मरण किया और उससे उन दोनो को जिलाने के लिये कहा। तव प्रसन्न होकर गरुणेन्द्र ने राम को हल, मूसल, छत्र, चमर, और सिंहवाहिनी विद्या दी और लक्ष्मण को गदा, खड्ग और गरुडवाहिनी विद्या दी। दोनो भाई अन्य राजाओ के साथ सुग्रीव और भामण्डल के पास आये। गरुडो की हवा लगने से सर्पों के वन्धन ढीले पडने लगे, विष दूर हो गया और दोनों वीर मूर्च्छा से उठकर वैठ गये। सव लोग वडे हर्षित हुए।

अगले दिन मारीच आदि सेनानायक युद्ध के लिए आगे आये और उन्होंने वानरवशी सेना पर भारी दवाव डालना प्रारम्भ किया। उनका प्रतिरोध करने के लिये भामण्डल आगे वढा। उसने राक्षस सेना को दवाया।

लक्ष्मण के शक्ति का लगना

तव रावण युद्ध के लिये स्वय आया। उसने वाण-वर्षा करके वानर-सेना को तितर वितर कर दिया। यह देखकर विभीषण उससे युद्ध करने आ गया। उसे देखकर रावण वोला—'तू व्यर्थ मे क्यो मरने आ गया। मैं तो शत्रुओ को मारने आया हूँ। अत तू लौट जा।' तव विभीषण वोला—'तुम सीता राम को सौंप दो, अन्यथा तुम मारे जाओगे।' दोनो भाई युद्ध करने लगे। रावण ने विभीषण का छत्र उडा दिया। विभीषण ने उसकी ध्वजा उडा दी। लक्ष्मण इन्द्रजीत से और राम कुम्भकर्ण से युद्ध करने लगे।

इन्द्रजीत ने लक्ष्मण पर अन्धकार वाण छोडा। लक्ष्मण ने सूर्य वाण छोडकर अन्धकार का नाश कर दिया। इन्द्रजीत ने नागवाण छोडा तो लक्ष्मण ने गरुड वाण छोडकर नागों को भगा दिया। इसके वाद लक्ष्मण ने नागवाण छोड कर इन्द्रजीत को वाध लिया। इन्द्रजीत नागपाश मे वधकर पृथ्वी पर गिर पडा। राम ने भी कुम्भकर्ण को नागपाश मे वांध लिया। राम-लक्ष्मण का सकेत पाते ही भामण्डल ने दोनो वीरो को अपने रथ मे डाल लिया। विराधित ने मेघनाद को नागपाश मे वांध लिया। रावण ने विभीषण पर त्रिशूल छोडा, लक्ष्मण ने आकर उसे वीच मे ही रोक लिया। तव रावण ने धरणेन्द्र द्वारा दी हुई शक्ति को हाथ मे लेकर लक्ष्मण से कहा 'अरे वालक ! तू क्यो व्यर्थ मे युद्ध करने आया है। अव तू वज्र प्रहार से मेरे हाथो मारा जायगा। लक्ष्मण ने क्रोध मे उत्तर दिया—अरे दुष्ट ! तू परस्त्रीलम्पट है। आज तेरी मृत्यु निश्चित है।' यो कह कर दोनो महावीर परस्पर भिड गये। रावण ने ताक कर वह शक्ति लक्ष्मण के वक्षस्थल पर फेंक कर मारी। शक्ति लगते ही लक्ष्मण मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पडे। तव राम रावण से युद्ध करने लगे। उन्होंने रावण को छह वार रथरहित कर दिया और वाण-वर्षा से उसे ढक दिया। रावण व्याकुल होकर युद्ध वन्द कर लौट गया।

रावण को सन्तोष था कि चलो आज एक वीर तो मारा गया। किन्तु जव उसे कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद के समाचार मिले तो वह विलाप करने लगा। उधर सीता को लक्ष्मण के समाचार मिले तो विलाप करने लगी।

रावण के चले जाने पर राम लक्ष्मण के पास पहुँचे और उन्हे मरा हुआ जानकर वे मूर्च्छित होकर गिर पडे। जव उन्हे होश आया तो वे विलाप करने लगे—वत्स ! तू मुझे विदेश मे अकेला छोड कर कहाँ चला गया।

अब मुझे सीता, माता और भाइयो से क्या काम है। हे विद्याधरो ! तुम शीघ्र चिता तैयार करो। मैं उसमे जलकर मर जाऊँगा, अब तुम लोग भी अपने घर वापिस जाओ और मेरे अपराध क्षमा करो। तब जाबुनद ने उन्हे समझाया—'देव ! आप व्यर्थ ही शोक क्यो करते है। लक्ष्मण शक्तिवाण से मूर्च्छित है। वे सुवह तक अवश्य होश मे आ जायेंगे।

सब लोग लक्ष्मण को होश मे लाने का उपाय करने लगे। वहाँ की युद्ध भूमि साफ करके वही डेरे तम्बू डाल दिये और कनात लगाकर सात दरवाजो पर सात वार पहरा देने लगे। इतने मे आकाश-मार्ग से एक मनुष्य आया और भामण्डल से बोला—'देव ! आप मुझे इसी समय राम के दर्शन करा दीजिए। मैं लक्ष्मण को जीवित करने का उपाय बताता हूँ। तब भामण्डल उसे राम के निकट ले गये। राम को नमस्कार कर वह बैठ गया। तब राम ने उसका परिचय और आने का प्रयोजन पूछा। तो उस व्यक्ति ने कहा—'देव ! मैं देवगीन नगर के राजा शशिमडल का पुत्र शशिप्रभ हू। एक बार मेघ के पुत्र चिनय ने मुझ पर शक्ति का प्रहार किया था। उससे मैं मूर्च्छित हो गया था। मै अयोध्या के बाहर मूर्च्छित पडा हुआ था। तब अयोध्या के राजा भरत ने मेरे ऊपर जल छिडका, उससे मैं ठीक हो गया था। एक वार अयोध्या मे बीमारी फैल गई थी। तब लोगो के कहने से राजा भरत ने राजा द्रोण को बुलाया। द्रोण ने सबके ऊपर जल छिडक दिया तो मनुष्य और पशु ठीक हो गये। तब राजा भरत ने द्रोण से उस जल के बारे मे पूछा तो उसने बताया कि मेरी पुत्री विशल्या को एक दिन उसकी धाय चन्द्रावती ने स्नान कराया था। उस जल के लगते ही एक कुतिया—जा मर रही थी—ठीक हो गई। तबसे चन्द्रावती ने उस जल के प्रभाव से अनेक रोगियो को ठीक किया है। अत विशल्या के जल के प्रभाव से लक्ष्मण की मूर्च्छा अवश्य दूर हो जायगी।'

तब राम ने विद्याधरो को आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र जाकर विशल्या का जल ले आइये। तब उसी समय हनुमान, भामण्डल और अगद वहाँ से विमान मे चलकर अयोध्या आये और राजा भरत से मिले। हनुमान ने सीता हरण और रावण से युद्ध की बात बताई। यह सुनकर भरत को बडा क्रोध आया। उसने रणभेरी बजादी। भेरी का शब्द सुनकर अयोध्यावासी जाग गये और धीरे-धीरे सब लोग वहाँ एकत्रित होने लगे। शत्रुघ्न मन्त्रियो सहित वहाँ पहुँचा। उससे भरत ने कहा—शत्रुघ्न युद्ध की तैयारी करो। अभी लका पर आक्रमण करना है।' किन्तु हनुमान बोले—विद्याधरो के इस युद्ध मे आपको चलने की आवश्यकता नही है। लक्ष्मण शक्ति-वाण के कारण मूर्च्छित पडे हे। आप तो विशल्या का स्नान-जल दे दीजिये।' भरत लक्ष्मण को मूर्च्छा की बात सुनकर रोने लगा। फिर बोला—जल से तो थोडा ही लाभ होगा। अच्छा यही होगा कि आप लोग विशल्या को ही अपने साथ लेते जाइये। उसके पिता द्रोण ने विशल्या का विवाह लक्ष्मण के साथ करने का निश्चय कर रखा है।' इस प्रकार कह कर भामडल, हनुमान, अगद और कैकेई को लेकर भरत कौतुक मगल नगर पहुँचा और वहाँ राजा द्रोण से मिल कर सब समाचार बताये तथा उनमे विशल्या की याचना की। द्रोण ने बडी प्रसन्नता के साथ विशल्या को उनके साथ कर दिया। वे लोग विशल्या को लेकर लका पहुँचे और, भरत कैकेयी अयोध्या लौट गये। अयोध्यावासी राम की चिन्ता करने लगे।

हनुमान आदि ने युद्ध स्थल पर पहुँच कर राम को विशल्या के आने का वृत्तान्त बताया। सबने विशल्या का सत्कार किया। ज्यो ही विशल्या ने लक्ष्मण के ऊपर जल छिडका तो लक्ष्मण यह कहते हुए उठ बैठे—'कहाँ गया पापी रावण। राम ने गद्‌गद होकर उसका आलिगन किया और सबने लक्ष्मण को नमस्कार किया। राम की आज्ञा से कुम्भकर्ण आदि पर भी वह जल छिडका गया, जिससे सब लोग निर्विष हो गये। घायल लोग स्वस्थ हो गये।

मारीच आदि मन्त्रियो ने जब सुना कि लक्ष्मण पुन जीवित हो उठे है तो उन्हे अपने पक्ष की निर्वलता का अनुभव हुआ। उन्होने रावण से विनयपूर्वक कहा—'देव ! लक्ष्मण शक्ति से मरकर भी पुन जीवित हो उठा है, उनके पक्ष के सभी वीर स्वस्थ हो गये हैं। जबकि कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघवाहन अभी तक शत्रु के कारागार मे है। हमारी बहुत सी सेना मारी जा चुकी है। उधर देवर को जीवित हुआ जानकर सीता भी प्रसन्न है। वह राम के गुणो मे अनुरागी है। वह आपको कभी स्वीकार नही करेगी। अत इस कुल-विनाशक व्यर्थ युद्ध करने से क्या लाभ है। हमारे लिये अब उचित यही होगा कि सीता राम को वापिस दे दे और उनसे सन्धि कर ले।'

रावण द्वारा बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करना

रावण ने कहा—'अच्छी बात है ।' उसने एक दूत को समझा बुझा कर राम के पास भेजा । दूत ने जाकर राम को नमस्कार किया और कहने लगा—'महाराज ! त्रिखण्डाधिपति रावण ने यह कहा है कि आप मेरे भाई और पुत्रो को छोड दे तथा मुझसे सन्धि कर ले । आप सीता की याद भूल जायँ । उसके बदले मे आपको तोन सौ कन्याये और आधा राज्य दे दूँगा ।' रामचन्द्रजी यह सुनकर बोले— भाई ! मुझे अन्य स्त्रियो से कोई प्रयोजन नही है । तुम रावण से कह देना कि वह मुझे मेरी सीता वापिस कर दे, मैं उसके भाई और पुत्रो को वापिस कर दूँगा ।' फिर भी दूत बोला—'देव ! आप समझदार है । आप त्रिखडी राजा रावण के साथ दुराग्रह न करें । आपके पक्ष के बहुत से राजा उनके हाथ से मारे जा चुके है, आप भी उसी प्रकार व्यर्थ मारे जायँगे ।' दूत के ये उद्दण्ड वचन सुनकर भामण्डल को भारी क्रोध आया और उसने दूत को अपमानित करके निकाल दिया ।

दूत ने जाकर रावण को सारी बाते बताई । रावण सोचने लगा— यदि मैं युद्ध मे वानरो को जीतकर भाई और पुत्रो को छुडाने का प्रयत्न करूँ तो वे उन्हे पहले ही मार डालेंगे । यदि मैं गुप्त रूप से जाकर रात मे उन्हे छुडाता हूँ तो मेरी अपकीर्ति होगी । अत उचित होगा कि मैं पहले बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करूँ । उसके सिद्ध हो जाने पर सब काम सिद्ध हो जायेंगे !' यो निश्चय करके उसने मत्रियो को आदेश दिया कि मैं जब तक विद्या सिद्ध करता हूँ, तब तक भरत क्षेत्र के सभी मदिरो मे तीनो काल पूजन, कीर्तन, सामायिक होनो चाहिये, लका मे हिंसा बन्द रहे, युद्ध बन्द रहे । मेरी सेवा मे केवल मन्दोदरी आदि रानियाँ रहेगी ।' इस प्रकार आदेश देकर वह शातिनाथ जिनालय मे फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को शुद्ध वस्त्र पहन कर और सामग्री लेकर जा बैठा और नियम कर लिया कि जब तक कामरूपिणी विद्या सिद्ध न हो जायगी, तब तक के लिए उपवास है । इस प्रकार नियम करके वह ध्यान लगाकर बैठ गया ।

जब विभीषण को यह ज्ञात हुआ तो उसने बानरवशियो को एकत्र कर कहा—'रावण विद्या सिद्ध कर रहा है । यदि उसे वह विद्या सिद्ध हो गई तो हमारा जीतना कठिन हो जायगा । अत उसकी विद्या-सिद्धि मे विघ्न डालना चाहिये ।' यह सुनकर अनेक विद्याधर लका मे जा पहुँचे । उन्होने नगर को लूटना, नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । अनेक लकावासियो को मार दिया । नगर मे त्राहि त्राहि मच गई । उन्होने राजमहल मे भी जाकर बडे उत्पात किये । यह देखकर मय नामक दैत्य विद्याधरो से लडने को तैयार हुआ, किन्तु मन्दोदरी ने उसे रोक दिया कि महाराज रावण की ऐसी आज्ञा नही है । तब बानरवशी शान्तिनाथ जिनालय जा पहुँचे । वहाँ जाकर उन्होने भगवान के दर्शन किये । उसके पश्चात् वे वहाँ पहुचे जहाँ रावण बैठा हुआ था । वहाँ जाकर उन्होने रावण के समक्ष ही रावण की रानियो की दुर्दशा करना प्रारम्भ कर दिया । किन्तु रावण अविचल भाव से विद्या-साधन करता रहा । अन्त मे उसे वह विद्या सिद्ध हो गई । विद्या सिद्ध कर रावण भगवान शान्तिनाथ को नमस्कार कर सिंह की तरह उठा । उसे उठते देखकर सब बानर सेना वहाँ से भाग खडी हुई । रानियो ने रावण से शिकायत की कि इन वानरो ने हमारी बडी दुर्गति की है । रावण बोला—'अब सब वानरवशी सेना मेरे हाथो से मारी जायगी । तुम लोग निश्चित रहो ।' यह कह कर वह प्रासाद मे पहुँचा और वहाँ स्नान कर पुन जिनालय मे गया । वहाँ उसने भगवान की पूजा की । फिर भोजन आदि से निवृत्त होकर मण्डप मे आया और विद्या की परीक्षा की, इमके अनेक रूप बनते गये । अब सबको विश्वास हो गया कि रावण अवश्य विजयी होगा ।

इसके पश्चात् रावण शृगार करके सीता के पास पहुँचा । उस समय एक दासी सीता को रावण की बहुरूपिणी विद्या की सिद्धि की प्रशसा कर रही थी । तभी रावण वहाँ पहुँचा और बोला —'देवी ! मुझे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो गई है । मैंने भगवान अनन्तवीर्य के समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि जो स्त्री मुझे नही चाहेगी, उसके साथ मैं बलात्कार नही करूँगा । अत मैंने तुझे आज तक स्पर्श नही किया । अब मैं तेरे राम और लक्ष्मण को इस विद्या के बल से निष्प्राण करूंगा । फिर तू मेरे साथ पुष्पक विमान मे विहार करना और जीवन के आनन्द उठाना । तब सीता रावण को धिक्कारती हुई कहने लगी—'हे दशानन ! तुम उच्च कुल मे पैदा होकर ऐसे अधम विचार करते हो, तुम्हे धिक्कार है । मैं तुमसे एक बात कहती हूँ । जब तुम्हे मेरे राम मिलें तो उनसे कहना कि सीता के प्राण केवल तुम्हारे दर्शन के लिए अटके हुए हैं ।' यो कह कर सीता मूर्छित हो गई ।

यह देखकर रावण को पश्चाताप हुआ और वह मन मे अपने को धिक्कारता हुआ कहने लगा—मुझ पापी ने व्यर्थ ही इस शीलशिरोमणि सीता का अपहरण करके लोकनिंद्य काम किया और अपने पवित्र वश मे अकीर्ति-कालिमा लगाई। मैंने अपने बुद्धिमान भाई विभीषण की बात नही मानी। यदि उसकी वात मान कर मैं सीता को वापिस कर देता तो लोक मे मेरी प्रशसा होती। किन्तु अब तो वह अवसर जाता रहा। यदि इस समय मैं सीता को वापिस करूँगा तो लोग मुझे कायर कहेगे। अब तो मेरे लिए एक ही मार्ग है। मैं युद्ध करूँ और राम लक्ष्मण को जीवित पकड कर सीता के निकट लाऊँ और उन्हे सीता को सौंप कर वस्त्राभूषण से उनका सन्मान करूँ। इससे लोक मे मेरी प्रशसा होगी तथा मैं पाप से भी बच जाऊंगा। किन्तु इन वानरवशी विद्याधरो को नही छोडूंगा। उस अगद का तो मैं अवश्य बध करूँगा, जिसने मेरी रानियो का अपमान किया है और वह सुग्रीव, भामण्डल, हनुमान इनको भी मारूँगा। इन्होने मुझसे विद्रोह किया है।

इस प्रकार विचार कर वह वापिस महलो मे पहुँचा। तभी अनेक प्रकार के अपशकुन होने आरम्भ हो गए— आसन हिलने लगा, दसो दिशाये कपायमान होने लगी, उल्कापात हुआ, गीदडियाँ रुदन करने लगी। यक्षो की मूर्ति से अश्रुपात होने लगे। रुधिर की भी वर्षा हुई। और भी इसी प्रकार के अनेक अपशकुन हुए।

प्रात काल होने पर रावण राज दरबार मे गया। अनेक वीर राजा भी बैठे हुए थे। किन्तु वहाँ कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद को न देखकर रावण बडा दु खी हो गया। उसका मुख-कमल मुर्झा गया। फिर उसे क्रोध आया, नेत्र लाल हो गए, नथुने फडकने लगे। वह वहाँ से उठ कर अपनी आयुधशाला मे गया। उसी समय पूर्व दिशा मे छीक हुई, आगे बढा तो भयकर कालनाग मार्ग रोके खडा दिखाई दिया। हवा से छत्र का वैडूर्यमणि का दण्ड भग्न हो गया और उत्तरासन गिर पडा। दाहिने हाथ पर कौआ बोला। इन अपशकुनो से सबको अनिष्ट की आशका हो गई। तब मन्दोदरी ने चिन्तित होकर मंत्रियो से कहा—तुम लोग महाराज के हित की बात उनसे स्पष्ट क्यो नही कहते। कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद बन्धन मे पडे हुए है। तुम उन्हे युद्ध से रोको।' तब मन्त्री बोले- 'स्वामिनी! हमने सब प्रयत्न करके देख लिए। किन्तु महाराज हमारी एक नही सुनते। शायद आपकी बात मान ले।' तब मन्दोदरी रावण के पास पहुँची और बड़ी विनय से बोली—नाथ! युद्ध मे जाते समय अनेक अपशकुन हो रहे है। अत आप युद्ध का विचार छोड दीजिये और सीता राम को देकर शान्ति के साथ रहिए। साथ ही राम से कह कर कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत, मेघनाद आदि को बन्धन से छुडाइये। राम और लक्ष्मण बलभद्र नारायण के रूप मे पैदा हुए हैं और आप प्रतिनारायण है। मन्दोदरी की बातें सुनकर रावण को क्रोध आ गया। बोला —तुम क्यो डरती हो। उन भिखारियो को बलभद्र-नारायण बता रही हो। वे तो पेट भरने के लिए फिर रहे हैं। तुम कैसी क्षत्रिय कन्या हो, जो मृत्यु से डरती हो।'

रावण की मृत्यु

युद्ध के लिये चलते समय रावण ने अपने कुटुम्बी जनो से क्षमा माँगी तथा अपनी रानियो से भी कहा— 'देवियो! मे युद्ध के लिये जा रहा हूँ। पता नही फिर आप मिले या नही। मैंने हँसी मे या क्रोध मे यदि कोई अपशब्द कह दिया हो तो उसे मेरा प्रेमोपहार समझना।' रावण ने पुन पुन सबका प्रेमालिंगन किया। फिर रण-भेरी बजवाई। रणभेरी की आवाज सुनते ही सब भट अपने परिवार से विदा होकर रावण के पास आ गये। रावण ने बहुरूपिणी विद्या के द्वारा इक्कीस खण्ड का एक रथ बनाया। उसमे एक हजार हाथी जुते हुए थे। वह उस रथ मे मय, मारीच, सार, सुक आदि मन्त्रियो के साथ बैठकर चला। उसके पीछे अगणित योद्धा विविध शस्त्रास्त्र लेकर विविध वाहनो मे चल रहे थे। चलते समय धुएँ वाली अग्नि, कीचड मे सना हुआ तेल का बर्तन, बिखरे हुए वालो वाले मनुष्य इत्यादि अनेक शोकसूचक अपशकुन हुए। इन्हे देखकर भी वह अभिमानी लौटा नही।

शत्रु सैन्य को देखकर राम भी सिंहरथ मे आरूढ होकर चल दिये। उसके पीछे लक्ष्मण, भामण्डल, नल, नील, सुग्रीव, हनुमान आदि भी चले। रावण को हजार हाथियो वाले रथ पर आता देख कर लक्ष्मण भी गारुड़ी रथ पर शस्त्रास्त्रों से सजकर बैठ चले। दोनो सेनाओं मे भयकर युद्ध छिड गया। मारीच आदि राक्षसो द्वारा वानर सेना का विनाश होता हुआ देखकर हनुमान और नील राक्षसो पर झपटे। तब मय दैत्य हनुमान के सामने आया। हनुमान ने उसे छह वार रथरहित कर दिया। तब रावण ने अपनी विद्या द्वारा रथ बना कर मय को दिया।

मय ने तब हनुमान का रथ तोड दिया। इसके बाद भामण्डल, सुग्रीव, विभीषण मय से लडने आये । मय ने अपने वाणो से सवको व्याकुल कर दिया। तब राम युद्ध मे कूद पडे। दोनो मे घोर युद्ध हुआ। आकाश वाणो से आच्छादित हो गया। असख्य योद्धा कट-कट कर मरने लगे। हाथी और घोडो की चीत्कारो से कान के पर्दे फटने लगे। लाशो के अम्वार लग गये। मय ने अनेक मायामयी वाण राम के ऊपर चलाये, किन्तु राम ने उन सवको बीच मे ही प्रभावहीन कर दिया। उल्टे राम ने मय को अपने वाणो से जर्जरित कर दिया। मय की यह दशा देखकर रावण युद्ध करने आया। उसे ललकारते हुए लक्ष्मण ने कहा—'अरे पापी ! तू प्राण लेकर मेरे आगे से कहाँ जाता है। आज धर्मबुद्धि रामचन्द्रजी ने मुझे आज्ञा दी है कि तुझ परस्त्री चोर का आज शिरच्छेद कर दूँ। रावण वोला—'अरे! क्यो व्यर्थ वकवास कर रहा है। सिंह के आगे कुत्ते का इतना साहस।' यो कहकर रावण ने लक्ष्मण को वाणो से ढक दिया। बदले मे लक्ष्मण ने भी वाणो से रावण को व्याकुल कर दिया। तब रावण मायामयी शस्त्रो से युद्ध करने लगा। लक्ष्मण ने उसका उसी प्रकार उत्तर दिया। दोनो ओर से जलवाण, पवनवाण, अग्निवाण, नागवाण,गरुणास्त्र, अन्धकार-वाण, प्रकाशवाण, निद्रावाण, प्रवोधवाण आदि मायामय अस्त्रो से बडी देर तक युद्ध होता रहा।

इसी समय आकाश मे आठ विद्याधर कुमारियाँ आईं। वे लक्ष्मण की मगल-कामना करने लगी। जब लक्ष्मण ने ऊपर की ओर देखा तो उन कुमारियो ने लक्ष्मण को सिद्धार्थ नामक महाविद्या दी। लक्ष्मण ने इससे रावण की सम्पूर्ण विद्याओ का प्रभाव नष्ट कर दिया। अब रावण, वहुरूपिणी विद्या द्वारा अनेक रूप बनाकर युद्ध करने लगा। लक्ष्मण उसका एक सिर काटते, उसकी जगह सौ सिर वन जाते। रावण अनेक सिर और भुजायें वनाता और लक्ष्मण उन्हे काटता जाता। इस प्रकार दोनो मे ग्यारह दिन तक भयकर युद्ध होता रहा। लक्ष्मण के वाणो से वहुरूपिणी विद्या का शरीर भी जर्जर हो गया। अत वह भी रावण के शरीर से निकल भागी। विद्या के निकल जाने पर रावण अपने असली रूप मे आ गया। तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हजार आरो वाले चक्ररत्न को स्मरण किया। स्मरण करते ही सुदर्शनचक्र उसके हाथ मे आ गया। तब रावण लक्ष्मण से वोला—'अब भी तू आकर मुझे नमस्कार कर, अन्यथा मारा जायेगा।' लक्ष्मण हसकर बोला—इस कुम्हार के चाक पर तुझे इतना अभिमान है !' यह सुनते ही रावण ने चक्ररत्न की पूजा कर उसे लक्ष्मण पर फेंका। इसी बीच राम ने मय को वाँध कर रथ मे डाल लिया और वे लक्ष्मण की ओर आये। सबने आग की ज्वालाओ के समान आते हुए चक्र को देखा। लक्ष्मण ने वज्रमयी वाणो से चक्र को रोकने का प्रयत्न किया, राम बज्रावर्त धनुष और हल लेकर, सुग्रीव गदा से, भामण्डल तलवार से, विभीषण त्रिशूल से, हनुमान मुद्गर से, नील वज्रदण्ड लेकर और अग अगद कुठार लेकर उसे रोकने लगे। किन्तु वह देवाधिष्ठित चक्र किसी के रोके न रुका। वह आया और लक्ष्मण की तीन प्रदक्षिणा देकर लक्ष्मण की अगुली पर ठहर गया।

लक्ष्मण की अगुली पर टिके हुए चक्ररत्न को देखकर वानरवशी विद्याधर हर्ष से नाचने लगे और कहने लगे—वास्तव मे ही ये दोनो भाई वलभद्र और नारायण हैं। रावण चक्र को लक्ष्मण के पास देखकर मन मे कहने लगा—इस क्षणस्थायी लक्ष्मी को धिक्कार है। वे भरत आदि महापुरुष धन्य है, जो इस लक्ष्मी को त्याग कर मोक्ष को प्राप्त हुए। मैं जीवन भर विषयो मे ही लिप्त रहा। रावण यह सोच ही रहा था कि लक्ष्मण ने गरज कर रावण से कहा—'रावण ! तू समझदार है। अब भी सीता राम को सौंप दे। सीता राम को देकर उनके चरणो मे प्रणाम कर और आनन्दपूर्वक राज्य कर।' यह सुनकर रावण क्रोध से वोला—'यह चक्र चला गया तो क्या हुआ, अभी मेरी शक्ति सुरक्षित है। देखता क्या है, चक्र चला।' रावण की यह दर्पोक्ति सुनकर लक्ष्मण ने बडे जोर से घुमाकर चक्र रावण को मारा। रावण ने उसे रोकने का वहुत प्रयत्न किया, किन्तु अब उसका पुण्य क्षीण हो गया था। चक्र ने रावण के वक्षस्थल को चीर डाला। हृदय के भिदते ही रावण पृथ्वी पर गिर पडा। रावण के मरते ही उसकी सेना भाग खडी हुई। उसे भागते देखकर हनुमान ने अभयघोषणा करते हुए कहा—आप लोग डरें नही, राम की आज्ञा शिरोधार्य कर सुख से रहे।

रावण को मरा हुआ देखकर विभीषण आत्महत्या के लिए तैयार हो गया, किन्तु राम ने उसे रोका। वह मूर्छित हो गया। होश मे आने पर वह रावण की लाश के पास वैठकर विलाप करने लगा। जब यह समाचार लका मे

पहुँचा तो मदोदरी आदि रानियाँ आकर वहाँ विलाप करने लगी, वे अपना सिर धुनने लगी, कोई छाती कूटने लगी। उसकी लाश के चारो ओर बैठकर उसकी अठारह हजार रानियाँ रावण का सिर गोद मे रखकर जोर-जोर से विलाप करने लगी। तव राम, लक्ष्मण आदि वहाँ आये और विभीपणादि को देखकर कहने लगे—रावण धन्य है जो युद्ध में वीरतापूर्वक मारा गया। इसमे शोक मनाने की क्या आवश्यकता है।' फिर राम ने मन्दोदरी आदि रानियो को भी समझाया। वाद मे वानरवशियो और राक्षस-वशियो ने मिलकर पद्म सरोवर के तट पर चदन कपूर आदि से चिता वनाई और रावण का दाह-सस्कार किया। फिर राम की आज्ञा से कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत, मेघनाद, मय आदि को सुभट वन्धनो मे वाँधकर लाये। राम ने उन्हे वन्धनमुक्त करते हुए कहा—'अव आप लोग स्वतन्त्र है, प्रसन्नतापूर्वक अपना राज्य सभाले। मै तो सीता को लेकर यहाँ से चला जाऊंगा।' तव उन सवने उत्तर दिया—'अव हमे इस राज्य से कोई प्रयोजन नही है।' राम वोले—'आप धन्य है, जो आत्म-कल्याण का आपने विचार किया।

उसी दिन कुसुम नामक वन में मुनिराज को केवलज्ञान हुआ। देवों ने उनका ज्ञान महोत्सव मनाया। यह सुनकर वानरवशियो और राक्षसवशियो के साथ राम समवसरण मे पहुँचे और केवली भगवान की स्तुति, वन्दना और पूजा कर समवसरण मे वैठ गये। भगवान का उपदेश हुआ। भगवान का उपदेश सुनकर इन्द्रजीत, मेघनाद, कुम्भकर्ण आदि ने मुनिदीक्षा लेली तथा मन्दोदरी आदि रानियाँ आर्यिका वन गईं। इन्द्रजीत, और मेघवाहन तपस्या करके चूलगिरि (वडवानी) से मुक्त हुए। रेवा नदी के किनारे विंध्य पर्वत पर इन्द्रजीत के साथ मेघवाहन मुनि ने तपस्या की थी। अत. वह मेघतीर्थ कहलाने लगा। कुम्भकर्ण रेवा के किनारे मुक्त हुए।

राम का लंका में प्रवेश और अयोध्या-गमन

श्री रामचन्द्र जी ने त्रैलोक्य अम्बर हाथी पर आरूढ होकर विद्याधरो के साथ गाजे वाजे के साथ लका मे प्रवेश किया। लका की विशेप शोभा की गई थी। रामचन्द्र जी राजमार्ग पर होकर निकले। वे अशोक उद्यान मे पहुँचे, जहाँ सीता दासियो के वीच मे वैठी हुई थी। राम को देखकर सीता वडी पुलक के साथ उठी। राम धूलधूसरित सीता को देखकर हाथी से उतर पडे। सीता ने आगे वढकर राम के पैर छुए, राम ने वडे हर्प से उसे छाती से लगा लिया। फिर सीता राम के आगे हाथ जोडकर खडी हो गई। तभी लक्ष्मण ने आगे वढकर सीता को प्रणाम किया। सीता ने उसे आशीर्वाद दिया। इसके वाद भामण्डल ने सीता को सव विद्याधरो का परिचय कराया। सीता ने सवको आशीर्वाद दिया। उसके वाद रामचन्द्र जी सीता के साथ हाथी पर सवार होकर तथा अन्य विद्याधर अपनी-अपनी सवारियो पर आरूढ होकर रावण के स्वर्ण प्रासाद मे आये। वहाँ शान्तिनाथ जिनालय को देखकर सव लोग उतर पडे और सवने भगवान के दर्शन किये। फिर पूजन किया। रामचन्द्र जी ने वीणा वजाई, सीता नृत्य करने लगी। वहाँ से सव लोग सभा मण्डप मे आये। विभीपण महल मे जाकर सुमाली, माल्यवान, रत्नश्रवा आदि को राम के पास ले आया। राम ने सवको वरावर आसन पर वैठाकर सवका समुचित सम्मान किया और सान्त्वना दी। फिर विभीषण ने राम को भोजन का निमन्त्रण दिया। सव लोग उठकर विभीषण के महलो मे भोजन के लिए गये। राम, सीता आदि को तैलादि मर्दन कर स्नान कराया, सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कराये और स्वादिष्ट भोजन कराया। फिर सवको यथायोग्य स्थानो पर ठहराया। राम सीता के साथ तथा लक्ष्मण विशल्या के साथ सुन्दर प्रासादो मे ठहरे।

एक दिन विद्याधरो ने तीन खण्ड के राजसिंहासन पर राम-लक्ष्मण का अभिषेक करने की अनुमति माँगी। किन्तु राम ने कहा—हमारे पिता ने राजसिंहासन हमारे भाई भरत को दिया है, अत राजा वही है। हम उन्ही की आज्ञा का पालन करेगे। वे ही हम सवके मालिक है। फिर भी विद्याधरो ने 'त्रिखण्डाधिपति राम-लक्ष्मण की जय' बोलकर उनके ऊपर छत्र लगा दिया। राम-लक्ष्मण दोनो भाई छह वर्ष तक लका मे रहे।

एक दिन नारद अयोध्या गये। वहाँ अपराजिता (कौशल्या) से उन्हे राम का निर्वासन, राम-रावणयुद्ध आदि के बारे मे समाचार ज्ञात हुए। वे तेतीस बर्ष बाद इधर आये थे। अत उन्हे इधर के कोई समाचार ज्ञात नही थे। रानी नारद को समाचार सुनाते सुनाते फूट-फूट कर रोने लगी। नारद को रानी के इस दु ख से बड़ा दु ख

हुआ। वे बोले—माता! शोक मत करो। मै जाकर राम के कुशल समाचार लाता हूँ। यह कहकर नारद लका पहुँचे और राम से मिलकर उन्हे बताया कि आपकी माता आप लोगो के वियोग से बहुत दुखी है। आप यहाँ सुख मे ऐसे मग्न है कि आपने उनकी बात तक भुलादी है। वे आप लोगो के दु ख से प्राण त्याग देगी। यह सुनकर रामचन्द्र जी बडे व्याकुल हुए। उन्होने उसी समय विभीषण को बुलाया और कहा-तुम्हारे यहाँ हम लोग इतने दिन बडे सुख से रहे। अब हमारी इच्छा अयोध्या जाने की है। आप सवारियो का प्रबन्ध कर दीजिये।' विभीषण ने राम से सोलह दिन और ठहरने का आग्रह किया। राम ने यह स्वीकार कर लिया। विभीषण ने शीघ्र ही एक दूत अयोध्या को भेजा और भरत को समाचार दिया कि रामचन्द्र जी १६ दिन बाद लका से अयोध्या को प्रस्थान करेंगे। यह सुनकर भरत आदि को बडी प्रसन्नता हुई। फिर विभीषण ने बहुत से राक्षस विद्याधरो को अयोध्या की सजावट करने के लिए भेजा।

राम लक्ष्मण ने सोलह दिन बाद अनेक विद्याधरो के साथ गाजे बाजे के साथ लका से प्रस्थान किया। राम सीता के साथ पुष्पक विमान मे बैठे। लक्ष्मण, हनुमान आदि अन्य सवारियो मे बैठे। मार्ग मे राम सीता को सारे स्थान बताते जाते थे। दण्डक वन, वन्शगिरि, क्षेमनगर, वालखिल्य नगर, उज्जयिनी, चित्रकूट सभी प्रवास-स्थानो को उन्होने बताया। इस तरह वे अयोध्या के बाहर आ पहुँचे। भरत भी शत्रुघ्न के साथ सेना लेकर राम की अगवानी को आया। भरत को देखकर राम आदि सभी विमान से उतरे। राम-भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न परस्पर गले मिले और दोनो भाईयो ने सीता को प्रणाम किया। फिर सब अयोध्या की ओर चल दिये। मार्ग जन सकुल था। हर्ष से अयोध्या झूम उठा। सडके और गलियाँ नया शृगार करके अपने बिछुडे राम का स्वागत करने को मचल रही थी। सारा नगर सुसज्जित किया गया था। सडको पर गुलाबजल का छिडकाव किया गया था। तोरण और वन्दनवारो से अयोध्या पटी पडी थी। आज उसके नाथ जो आये थे। वन्दीजन विरुदावलियाँ गाते जा रहे थे, नर्तकियाँ नृत्य कर रही थी। अपूर्व शोभा थी अयोध्या की।

चारो भाई सीता को बीच मे करके राजद्वार पर पहुँचे। माताये बाहर दरवाजे पर आ गई। दोनो भाइयो ने माताओ के चरण छुए। माताओ ने उन्हे हृदय से लगा लिया और आनन्दाश्रु बहाने लगी। उसके पश्चात् सीता, विशल्या आदि ने सासुओ के पैर छुए। माताओ ने सबको आशीर्वाद दिया। सब लोग राजमहल मे गये।

रावण को विजय करने पर बलभद्र राम और नारायण लक्ष्मण स्वयमेव तीन खण्ड के अधिपति बन गये। उनके वैभव का वर्णन क्या किया जा सकता है। उनके पास ४२ लाख हाथी, ४२ लाख रथ, ९करोड प्यादे, और तीन खण्ड के देव और विद्याधर उनके सेवक थे। राम के पास चार रत्न थे—हल, मूशल, रत्नमाला और गदा। लक्ष्मण के पास सात रत्न थे—शख, चक्र, गदा, खड्ग, दण्ड, नागशय्या और कौस्तुभ मणि। उनका घर इन्द्र के आवास जैसा लक्ष्मी का आगार था। ऊँचे दरवाजो वाला चतु शाल कोट था। उनकी सभा का नाम वैजयन्ती था। प्रासाद कूट नामक उनका महल था। वर्ध नाम का नृत्य घर था। शीत ऋतु का महल कुकडे के अण्डे जैसा था। ग्रीष्म ऋतु का धारा मण्डप गृह था। उनके सोने की शैय्या मे सिंह के आकार के पाये थे। वह पद्मरागमणि की थी। अम्भोदकाण्ड नामक वर्षा ऋतु का महल था। सिंहासन उगते सूर्य के समान था, चन्द्रमा के समान उज्वल उनके चमर और छत्र थे। अमूल्य वस्त्र और दिव्य आभरण थे। उनका कवच अभेद्य था। मनोहर मणियो के कुण्डल थे। अमोघ गदा, खड्ग, स्वर्णबाण थे। ५० लाख हल, एक करोड से अधिक गाय, और अक्षय भण्डार था। मनोहर उद्यान थे, जिनमे रत्नमई सीढियो वाली बावडी बनी हुई थी। उनके राज्य मे सारी प्रजा पूर्ण सुखी थी। किसानो के पास गाय भैस और बैलो की अधिकता थी। राम के आठ हजार रानियाँ थी तथा लक्ष्मण के सोलह हजार रानियाँ थी। राम ने भगवान के हजारो जिनालय बनवाये। लोग सदा धर्म-कथा किया करते थे। राम के पधारने से अयोध्या की शोभा असख्य गुनी बढ गई। जन-जन मे राम के यश का वर्णन होता रहता था। किन्तु कुछ दुष्ट लोग सीता के सम्बन्ध मे कभी कभी दबी चर्चा किया करते थे कि रावण सीता को हर लेगया था और वह उसके घर मे भी रही थी। फिर भी इतने विवेकी और न्यायवान होते हुए भी राम सीता को अपने घर ले आये।

बलभद्र-नारायण की विभूति

भरत के मन मे तो प्रारम्भ से ही राजपाट और गृहस्थी की ओर से विरक्ति थी। उनका मन विषय वासनाओ की ओर जाता ही नही था। जब राम अयोध्या लौटे नही थे, तब तक तो उन पर राज्य का भार था। अत वे चाहते हुए भी मुनि-दीक्षा नही ले सके। किन्तु राम के वापिस आने पर उन्होने मुनि बनने की मन ने ठानली। एक दिन उन्होने रामचन्द्र जी से अपने मन की बात कही और उनसे आज्ञा मांगी। यह जानकर माता कैकेयी विलाप करने लगी। राम और लक्ष्मण ने उसे समझाया—भैया! अभी तुम्हारी आयु मुनि के कठोर व्रत पालने की नही है। अत तुम घर मे रहकर राज्य शासन करो और धर्म का पालन करो। भरत उनकी आज्ञा उल्लघन नही कर सके। किन्तु फिर भी घर मे रह कर मुनियो के उपयुक्त व्रतो का पालन करने लगे। एक दिन सीता, विशल्या, उर्वशी, कल्याणमाला, जितपद्मा, वसुन्धरा आदि दोनो भाइयो की रानियाँ भरत का मन विराग से हटाने के उद्देश्य से भरत के पास आकर बडे प्रेम से बोली—देवर! चलो, हम सब मिल कर जलक्रीडा करे। भरत उनके प्यार भरे आग्रह को टाल न सके और न चाहते हुए भी वे उनके साथ चल दिये। सबने सरोवर पर जाकर जल क्रीडा की। परस्पर विनोद करते हुए सबने जल मे स्नान किया। पश्चात् भरत उठकर निकट के चैत्यालय मे जाकर भगवान की पूजा करने लगे। स्त्रियो मे से कोई वीणा बजाने लगी, कोई नृत्य करने लगी।

भरत घर मे वैरागी

इतने मे त्रैलोक्य मण्डन हाथी बन्धन तुडाकर इधर-उधर भागने लगा। चिंघाडता हुआ वह अनेक बाग बगीचो को उजाडने लगा, उसने अनेक घर ढा दिये। उसकी चिंघाड सुनकर अनेक हाथी भी बन्धन तुडाकर भागने लगे। घोडे हिनहिनाने लगे। सारी अयोध्या मे आतक छा गया। राम-लक्ष्मण, हनुमान आदि सभी हाथी को पकडने आये, किन्तु वह किसी के वश मे नही आया। वह काल के समान सीधा उस तालाब की ओर भागा, जहाँ रानियाँ जल-क्रीडा कर रही थी। हाथी को आता हुआ देख कर रानियाँ भय के मारे भरत के पीछे छिप गई। हाथी को भरत की ओर जाते देख कर सब हाहाकार करने लगे। किन्तु भरत को देखते ही हाथी को अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया और सूँड नीची करके शान्त भाव से खडा हो गया। भरत ने बडे प्रेम से उससे कहा—'गजेन्द्र! तुम इस प्रकार क्रुद्ध कैसे हो गये? भरत का प्रश्न सुनकर हाथी रोने लगा। सबको बडा आश्चर्य हुआ।

भरत सीता और विशल्या के साथ उसी हाथी पर बैठ कर घर आया। भोजन आदि से निवृत्त होने पर राज सभा में उसी हाथी की चर्चा थी। इतना क्रुद्ध होने पर भी यकायक भरत को देखकर वह शान्त कैसे हो गया तथा खुशामद करने पर भी चार दिन से आहार क्यो नही ले रहा।

उसी समय अयोध्या के बाहर उद्यान मे देशभूषण-कुलभूषण केवली भगवान का आगमन हुआ। समवसरण की रचना देख कर वनमाली ने उनके आगमन की सूचना राम को दी। यह समाचार सुन कर राम ने अपने आभूषण उतार कर माली को दे दिये और नगर मे ड्योढी पिटवा कर राम लक्ष्मण आदि के साथ केवली भगवान के दर्शनो को गये। साथ मे सभी विद्याधर, राज परिवार, पुरजन थे। सबने वहाँ पहुँच कर भगवान की वन्दना-पूजा की और भगवान का उपदेश सुना। भगवान से हाथी के सम्बन्ध मे प्रश्न करने पर भगवान ने बताया कि भरत और इस हाथी के जीव इस जन्म से पहले ब्रह्मोत्तर स्वर्ग मे देव थे। अभिराम का जीव तो स्वर्ग से चलकर यह भरत हुआ है तथा मृदुमति का जीव मायाचारपूर्वक तप करने के कारण स्वर्ग से चलकर यह हाथी हुआ है। भरत को देखने से उसे पूर्व जन्म का स्मरण हो आया, इसलिए वह शान्त हो गया।

अपने जन्मान्तर का हाल जानकर भरत ने केवली भगवान से दीक्षा देने की प्रार्थना की। तो राम कातर होकर कहने लगे—'भाई! पिता ने तुम्हे राज्य दिया था। अब इसे किसे दोगे। हमने तो तुम्हारे लिए ही विजय की है। यह चक्ररत्न भी तुम्हारा ही है। तुम इसे सम्भालो। यदि तुम हमसे विरक्त हो तो हम बाहर चले जायेंगे। पिता गये, अब तुम भी चले जाओगे। पति और पुत्र के वियोग मे माता कैकेई रो रोकर जान दे देगी।' तब भरत बोले—'अब तक तो पिता की आज्ञा से मैंने राज्य किया। अब तुम करना।' यह कहकर भरत ने मुनिदीक्षा लेली। उसके साथ कैकेयी आदि ने भी आर्यिका दीक्षा ग्रहण करली। हाथी ने श्रावक के व्रत ले लिए और चार वर्ष तक घोर तपश्चरण कर वह छठे स्वर्ग मे देव हुआ। भरत भी तपस्या करके कर्मों का नाश कर मुक्त हो गये।

राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक—भरत के दीक्षा लेने पर लक्ष्मण को बडा शोक हुआ। वह भरत के गुणो का बार-बार बखान करता। राम भी भरत के गुणो की चर्चा करते रहे। सारे नगर मे भरत की ही प्रशसा के गीत गाये जाने लगे। घर-घर उन्ही की चर्चा थी।

अगले दिन सब राजा मिलकर राम के पास आए और हाथ जोडकर निवेदन करने लगे - देव! हम सब भूमिगोचरी और विद्याधर राजा आपसे एक निवेदन करने आये हैं। हम सब आपका राज्याभिषेक करना चाहते है।' राम यह सुनकर बोले—'तुम सब लक्ष्मण का राज्याभिषेक करो। वह नारायण है। वह सदा मेरे चरणो मे नमस्कार करता है। फिर मुझे राज्य की क्या आवश्यकता है।' सब राजा तब लक्ष्मण के पास गये और उनसे राम का सन्देश कह कर राज्याभिषेक की अनुमति मागने लगे। लक्ष्मण सबको अपने साथ लेकर राम के पास आए और बोले—'देव! इस राज्य के स्वामी तो आप ही है। मैं तो आपका सेवक हूँ।' तब राम ने बडे स्नेह से कहा—'वत्स! तुम चक्र के धारी नारायण हो, इसलिए राज्याभिषेक तुम्हारा ही होना उचित है।' तब अन्त मे सबने यह निश्चय किया कि राज्याभिषेक दोनो का होना चाहिए।

नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। याचको को मनोवाछित दान दिया गया। कमल पत्रों से ढके हुए स्वर्ण कलशो मे पवित्र जल भर कर उससे दोनो का एक ही आसन पर अभिषेक किया गया। दोनो भाइया को मुकुट, भुजबन्ध, हार, केयूर, कुण्डलादि आभरण और कौशेय वस्त्र धारण कराये। तीनो खण्डो के आए हुए विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओ ने दोनो का जय-जयकार किया। राम और लक्ष्मण का अभिषेक करने के बाद विद्याधर भूमिगोचरी रानियो ने सीता और विशल्या का अभिषेक किया। सीता राम की और विशल्या लक्ष्मण की पटरानी बनी।

अभिषेक के बाद राम ने लका विभीषण को दी, किष्किधापुर सुग्रीव को, श्रीनगर और हनुरुह द्वीप का राज्य हनुमान को, अलकारपुर विराधित को, वैताढ्य की दक्षिण श्रेणी का रथनूपुर भामण्डल को दिया और उसे समस्त विद्याधरो का अधिपति बनाया। रत्नजटी को देवोपुनीत नगरी का राज्य दिया। अन्य लोगो का भी यथायोग्य सम्मान किया।

शत्रुघ्न द्वारा मथुरा-विजय

सबसे निवृत्त होकर राम शत्रुघ्न से बोले- भाई! तुझे जो पसन्द हो, वहाँ का राज्य ले ले, चाहे तू आधी अयोध्या ले ले, चाहे पोदनपुर, हस्तिनापुर, बनारस, कौशाम्बी, शिवपुर इनमे से किसी को चुन ले।' शत्रुघ्न बोला—'मुझे तो मथुरा का राज्य चाहिए।' राम ने कहा—'वहाँ हरिवशी राजा मधु राज्य कर रहा है और वह रावण का दामाद है। उसके पास नागेन्द्र का दिया हुआ त्रिशूल है। उसके कारण उससे कोई युद्ध नही कर सकता। लक्ष्मण भी उससे शकित रहता है। तब तू उसे कैसे जीत सकता है।' शत्रुघ्न बोला— 'आप तो मुझे मथुरा का ही राज्य दे दीजिए। उसका अभिमान मैं चूर करूंगा। राम ने उसका आग्रह देखकर मथुरा का राज्य दे दिया। शत्रुघ्न सबको प्रणाम कर चतुरगिणी सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण करने चल दिया। लक्ष्मण ने उसे अपना सागरावर्त धनुष और कृतान्त-वक्त्र सेनापति भी दे दिया।

शत्रुघ्न ने यमुना तट पर अपना पडाव डाल दिया। उसने एक गुप्तचर को मथुरा भेजा। उसने आकर समाचार दिए कि आज छह दिन हुए, मधु नन्दन वन मे क्रीडा करने गया है। सारा परिवार और अनेक सामन्त उसके साथ हैं। वह यहाँ से तीन योजन दूर है। शत्रुघ्न ने मथुरा मे जाकर रातो रात उस धन-जन से परिपूर्ण नगरी पर अधिकार कर लिया। शस्त्रालय, कोष और राजमहल पर फौजी पहरा बैठा दिया। शासन सूत्र अपने हाथ मे लेकर मथुरा पर रघुवशियो के शासन की ड्योढी पिटवा दी।

प्रात काल होते ही किसी ने वन मे जाकर राजा मधु से यह समाचार कहा। मधु मथुरा पर शत्रुघ्न का अधिकार सुनकर क्रोध से जलता हुआ मथुरा आया। मधु के पास इस समय त्रिशूलरत्न नही था, फिर भी उसने नगर को घेरकर युद्ध की घोषणा कर दी। शत्रुघ्न की कुछ सेना युद्ध के लिए बाहर आई। जब मधु की सेना दबने लगी तब उसका पुत्र लवणार्णव युद्ध के लिए आया और उसने शत्रुघ्न की सेना तितर-बितर कर दी। यह देखकर

कृतान्तवक्त्र सेनापति युद्ध के लिए आया। दोनो मे घोर युद्ध हुआ। कृतान्तवक्त्र ने उसकी छाती पर गदा का प्रहार किया, जिससे वह तत्काल मर गया। पुत्र को मृत जानकर मधु स्वय युद्ध के लिए आया। कृतान्तवक्त्र पीछे हटने लगा। यह देख शत्रुघ्न मैदान मे कूद पडा। दोनो मे घोर युद्ध हुआ। अन्त मे मधु मारा गया। शत्रुघ्न ने उसका राजसी ठाठ से दाह सस्कार कराया।

स्वामी के न रहने पर त्रिशूलरत्न को देव उठा कर ले गये और गरुण इन्द्र को दे दिया। इन्द्र ने पूछा—इसे तुम क्यो ले आए। तब देवो ने कहा—शत्रुघ्न ने मधु का वध कर दिया है।' यह सुनकर गरुणेन्द्र शत्रुघ्न को मारने आया। और जब उसने मथुरा की प्रजा को मधु की मृत्यु पर खुशियाँ मनाते देखा तो वह और भी क्रुद्ध हो गया और उसने मथुरा मे मरी रोग फैला दिया। प्रजा धडाधड मरने लगी। शत्रुघ्न प्रजा के इस विनाश से दुखी होकर अयोध्या चला गया।

एक बार नागपुर के राजा श्रीनन्दन के सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिलय, सर्वसुन्दर, जय, विनय, लालस और जयमित्र ये सात पुत्र मुनि हो गये और तपस्या करके उन्हे ऋद्धि प्राप्त हो गई। वे विहार करते हुए मथुरा पधारे और एक वड के नीचे चातुर्मास किया। चारण ऋद्धि के कारण वे चार अगुल जमीन से ऊपर चलकर दूसरे नगरो मे आहार कर शाम को मथुरा वापिस आ जाते थे। मथुरा की सारी प्रजा नगर से भाग गई थी। उन ऋषियो के तप के प्रभाव से धीरे-धीरे मरी रोग शान्त हो गया और प्रजा पुन नगर मे आ गई। शत्रुघ्न भी मथुरा से लौट आया। तब शत्रुघ्न ने सप्तर्षियो से निवेदन किया—'प्रभो! आप इसी नगर मे विराजें, जिससे पुन मरी रोग न हो।' मुनि बोले—'तुम यहाँ जिनालयो का निर्माण कराओ, उनकी प्रतिष्ठा करो। उससे पुन मरी रोग का भय नही रहेगा।' शत्रुघ्न ने महर्षियो की आज्ञा से अनेक जिनमदिर बनवाये। तबसे मथुरा मे खूब आनन्द मगल होने लगे और प्रजा सुख से रहने लगी।

अब राम-लक्ष्मण ने त्रिखण्ड विजय के लिए प्रयाण किया। जो राजा स्वेच्छा से उपहार लेकर आये, उन्हे आदर-सत्कार करके सन्तुष्ट किया। किन्तु जिन्होने उनकी आधीनता स्वीकार नही की, उनको दण्डित किया।

सीता का परित्याग

इस प्रकार अल्पकाल मे ही भरत क्षेत्र के तीन खण्डो के समस्त राजाओ को, विद्याधरो और भूमिगोचरो को जीतकर नारायण लक्ष्मण त्रिखण्डाधिपति बन गये। उनके सोलह हजार रानियाँ थी जिनमे आठ मुख्य थी—विशल्या, रूपवती, वनमाला, कल्याणमाला, रतिमाला, जितपद्मा, भगवती और मनोरमा। राम की रानियो मे मुख्य चार पटरानी थी—सीता, प्रभावती, रतिप्रभा, और श्रीदामा।

अब राम-लक्ष्मण आनन्दपूर्वक तीनो खण्डो पर शासन कर रहे थे। सोलह हजार मुकुटवद्ध राजा उनकी सेवा मे रहते थे। धर्म, अर्थ, काम तीनो पुरुषार्थ उनके अनुकूल थे। एक बार सीता अपने महलो मे सो रही थी। उसने रात्रि के पिछले प्रहर मे दो सुन्दर स्वप्न देखे। वह शय्या से उठ कर राम के पास गई और निवेदन किया—नाथ! मैंने आज रात्रि के अन्तिम प्रहर मे दो स्वप्न देखे हैं। एक मे तो दो पूर्ण चन्द्र देखे हैं। उसके बाद दो सिंह मुह मे प्रवेश करते देखे है। इन दोनो स्वप्नो का फल आप बतावे।' राम बोले—'देवि! तुम्हारे सिंह के समान दो पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होगे। वे दोनो ही भोगी, त्यागी और मोक्ष मार्ग के प्रवर्तक होगे अ र अन्त मे कर्म शत्रुओ को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करेगे।' सीता स्वप्नो का फल सुनकर बडी प्रसन्न हुई और अपने महलो मे चली गई।

स्वप्न वाले दिन पुष्पोत्तर विमान से चलकर दो देव सीता के गर्भ मे आए। धीरे-धीरे गर्भ बढने लगा। उससे सीता कृश हो गई, मुह पीला पड गया। स्तनो का अग्र भाग काला पड गया। सीता की ऐसी हालत देख कर राम ने कहा—'तुम्हे जो दोहला हो, वह कहो, मैं उसे पूरा करूँगा।' सीता ने कहा—'नाथ! मैं सब जगह जाकर भगवान की प्रतिमाओ का पूजन करना चाहती हूँ।' राम सीता को लेकर मदिरो मे गये और आनन्दपूर्वक पूजा की। पूजा करते समय सीता की दाई आख फडकी। सीता यह देखकर किसी अनिष्ट की आशका से चिन्तित हो गई। विघ्न शाति के लिए उसने यथेच्छ दान दिया और महलो को लौट आई।

रामचन्द्र जी वही प्रासाद मण्डप मे अनेक लोगो के साथ बैठे रहे। तभी द्वारपाल ने आकर निवेदन

किया—'महाराज ! वहुत प्रजाजन आपके दर्शनो के लिए आना चाहते है ।' राम ने सबको अन्दर ले आने की आज्ञा दी । प्रजाजन आकर नमस्कार कर यथास्थान बैठ गये । राम ने पूछा—'कहिए, आप लोग कैसे आए । मेरे राज्य मे आपको कोई कष्ट तो नही है?' यह सुनकर सब चुप रह गये । राम ने फिर कहा—'आप लोग भय मत करिए, जो कुछ मन मे हो, निस्सकोच कहिए ।' अभय पाकर एक लोकचतुर विजय नाम का प्रजाजन हाथ जोडकर बोला—'प्रभो ! निवेदन यह है कि आजकल देश मे वडा अनाचार फैल रहा है । एक की स्त्री दूसरा भगा ले जाता है और वह दो तीन महीने उसके घर रहकर वापिस आ जाती है । यदि कोई पूछता है कि उस व्यभिचारिणी स्त्री को तुमने क्यो रख लिया । तो जवाव मिलता है कि रामचन्द्र जी भी तो सीता को रावण के घर से छह महीने के बाद ले आये है । जब छह महीने रावण के सपर्क मे रहने वाली सीता को राम जैसे धर्म धुरन्धर मर्यादा पुरुषोत्तम राजा भी पुन अगीकार कर सकते है, तव वे हमे अपनी अपहृत स्त्रियो को रखने से कैसे रोक सकते है । इस तरह दुष्ट लोग दिनदहाडे आपका उदाहरण देकर यह अनाचार कर रहे है । अत जिस प्रकार यह अनाचार रुके वह उपाय आपको करना चाहिए ।

प्रजाजनो की यह वात सुनकर क्षण भर को राम गम्भीर हो गये, फिर बोले—अच्छा, आप लोग जाइये, मैं इसका कुछ उचित उपाय करूँगा । प्रजाजन लौट गये ।

रामचन्द्र जी सोचने लगे—हाय ! जिसके बिना मैं व्याकुल रहा, जिसके लिए रावण को मारने समुद्र पार कर गया, उसके विना तो मेरा जीना ही व्यर्थ हो जायेगा । हाय ! सुशील गुणवती सीता मुझसे कैसे छोडी जाएगी । उसके विना तो मैं एक घडी भर भी स्थिर नही रह सकता, उसके बिना मैं जीवन भर उसका दु ख कैसे सहूँगा । यदि उसे न छोडा तो सदा के लिये मेरे कुल मे कलक लग जायेगा ।' इस प्रकार सोचकर उन्होने लक्ष्मण को बुलाया और बोले—'वत्स ! सीता के बारे मे वडा लोकापवाद फैल रहा है । अत मैं उसे जगल मे छोड देना चाहता हूँ ।' लक्ष्मण यह सुनकर बडा क्रुद्ध होकर बोला—'कौन दुष्ट सीता को लेकर अपवाद फैला रहा है । मैं उसका अभी तलवार से सिर उतारता हूँ । सीता के समान आज भी कोई पतिव्रता नही दीखती । उसमे जो दोष वतलाता है, मैं उसकी जीभ काट लूँगा । समझ मे नही आता, दुष्ट लोगो के कहने से आप सीता को कैसे छोड रहे है । राम ने समझाया—'लक्ष्मण ! ऐसा मत कहो । सीता को रखने से हमारे वश मे हमेशा के लिए कलक लग जाएगा । अत. मैं सीता का अवश्य परित्याग करूँगा । तुम्हे अगर मुझसे स्नेह है तो इस विषय मे मौन ही रहना । हे लक्ष्मण ! जैसे सूखे ईंधन मे लगी अग्नि जल से बुझाये विना वृद्धि को प्राप्त होती है, उसी प्रकार अपकीर्ति रूपी अग्नि पृथ्वी पर फैलती है । उसका निवारण किए विना मिटती नही । यह तीर्थंकरो का समुज्वल कुल प्रकाश रूप है । इसको कलक न लगे, वह उपाय करना चाहिए । यद्यपि सीता महा निर्दोष है, शीलवती है फिर भी मैं उसका परित्याग करूँगा, मैं अपनी कीर्ति मलिन नही करूँगा ।' किन्तु लक्ष्मण को इन वातो से सन्तोष नही हुआ । वे उद्वेग से बोले—'देव ! लोग तो मुनियो की भी निन्दा करते हैं, धर्म की भी निन्दा करते हैं तो क्या लोगो के अपवाद के डर से मुनियो को छोड दें, धर्म को छोड दें । इसी तरह कुछ दुष्ट लोगो के अपवाद के भय से जानकी को कैसे छोड दे ।' तव रामचन्द्र जी समझाने लगे—'लक्ष्मण ! जो शुद्ध न्यायमार्गी मनुष्य हैं, वे लोक विरुद्ध कार्य छोड देते हैं । जिसकी दसो दिशाओ मे अकीर्ति फैल रही हो, उसे संसार मे क्या सुख है ।'

यह कहकर राम ने कृतान्तवक्त्र सेनापति को बुलाया । और उससे कहा कि 'तुम तीर्थ यात्रा कराकर सीता को किसी वियावान जगल मे ले जाओ और वहाँ छोडकर शीघ्र लौट आओ ।' 'जो आज्ञा' कहकर सेनापति रथ लेकर सीता के महल पर गया और कहा 'माता ! उठो । रामचन्द्र की आज्ञानुसार तुम्हे तीर्थ यात्रा के लिए चलना है ।' सीता वडी प्रसन्नता से उठी, तैयार हो सबसे मिलकर यात्रा को चली । विशल्या आदि रानियो ने सीता के पैर छुए । सीता ने अपनी सासुओ के पैर छुए और देवरानियो से बोली—'तीर्थयात्रा कर शीघ्र ही लौटकर सबसे मिलूगी । वैसे तो इस हालत मे न जाती परन्तु सौभाग्य से मुझे दोहला ही ऐसा हुआ है कि मैं तीर्थ वन्दना करू और दान पुण्य करूँ । अगर सकुशल लौट आई तो फिर सबके दर्शन करूंगी । आप सब मेरे अपराधो को क्षमा करना ।' इस तरह कहकर सीता रथ मे बैठकर राम के पास गई और उनसे आज्ञा लेकर यात्रा को विदा हुई ।

चलते समय अपशकुन हुए। नदी, पर्वतादिको को लाघता हुआ रथ यात्रा कराता हुआ आगे वढा और सिहाटवी मे पहुँचा। सिह व्याघ्रादि से भरे हुए उस वन मे सेनापति ने रथ रोक दिया। सेनापति कुछ कहना ही चाहता था कि उसकी आँखो से अश्रुधारा वह निकली। सीता ने पूछा-'भाई ! हम लोग तीर्थयात्रा को निकले है। ऐसे हर्षपूर्ण प्रसग मे तुम्हारे दु ख का अभिप्राय मै नही समझी।' सेनापति ने कहा--'माता ! वडे पाप के फल से कुत्ते के समान यह दास का जीवन मिलता है। दास वडे पाप के फल से नरको मे जाता है और वहाँ से निकल कर चाण्डालादि योनियो मे जन्म लेता है।" सीता वोली-'वत्स ! तुम ऐसा क्यो कहते हो ?' सेनापति ने कहा—'माता! महाराज रामचन्द्र जी की आज्ञा है कि मैं तुम्हे यही जगल मे छोड दू। उनका कहना है कि यद्यपि सीता निर्दोष है, फिर भी लोकापवाद के कारण मै उसे रखने को तैयार नही हूँ। किन्तु तुम्हे एकाकी इस वन मे किस प्रकार छोडूँ। और यदि नही छोडता हूँ तो महाराज रामचन्द्र नाराज होगे। मेरे रोने का यही कारण है।'

सेनापति के वचन सुनते ही सीता को मूर्च्छा आ गई। जव उसे होश आया तो वोली—'हे वीर ! मुझे एक वार अयोध्या ले चलो। रामचन्द्र जी के चरणो के दर्शन करके और उनसे अपने मन की वात कह कर मैं पुन वन मे चली आऊँगी।' किन्तु सेनापति वोला—'देवि ! इस समय रामचन्द्र जी क्रोध और कठोरता की मूर्ति हो रहे है। अत उनके दर्शन करना भी वेकार है।' सीता ने कहा—'हे सेनापति ! तुम मेरे वचन राम से कहना कि मेरे त्याग का विषाद आप न करना, परम धैर्य धारण कर प्रजा की रक्षा करना, जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है। राजा को प्रजा ही आनन्द का कारण है। आप मुक्ति के कारण सम्यग्दर्शन की आराधना करना और राज्य से सम्यग्दर्शन को श्रेष्ठ मानना। अभव्य जनो की निन्दा के भय से सम्यग्दर्शन को मत छोडना। आप सव शास्त्रो के ज्ञाता हो, अत मै आपको कोई उपदेश देने मे समर्थ नही हूँ। यदि मैंने कभी परिहास मे अविनयपूर्ण वचन कहे हो तो आप क्षमा करना।' इस प्रकार कहकर रथ से उतर कर वह मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिर पडी, मानो रत्नो की राशि ही पडी हो।

कृतान्तवक्त्र सीता को चेष्टारहित मूर्छित देख कर वडा दुखी हुआ और मन मे विचारने लगा—धिक्कार है इस पराधीनता को, जिसके कारण मुझे महासती सीता को निर्दय जीवो से भरे हुए इस वन मे अकेला छोडकर जाना पड रहा है। पराधीन जीवन वडे पाप का फल है। स्वामी की आज्ञा के अनुसार ही चलना सेवक का एकमात्र काम है। यह पराधीनता कभी किसी को प्राप्त न हो।' यो सोचकर अत्यन्त दुखी और लज्जित होता हुआ वह वहाँ पर ही सीता को अकेली छोडकर अयोध्या को चल दिया।

इधर सीता को जव होश आया तो वह विलाप करने लगी—'आर्यपुत्र ! आप सव की रक्षा करते थे, किन्तु मेरे लिए इतने कठोर कैसे बन गये। देवर लक्ष्मण ! भाई भामण्डल ! तुम मुझे कैसे भूल गये। भरत ! शत्रुघ्न ! तुम्ही आकर मुझे इस वन मे ढाढस बधाओ। क्या तुम सबने मुझे छोड दिया। विद्याधरो ! तुम मेरी रक्षा करने को लका गये थे, अब तुम मेरी रक्षा क्यो नही करते। इस प्रकार विलाप करके वह बार-बार मूर्छित होने लगी। सीता का विलाप सुनकर जगल के पशु भी स्तब्ध रह गये। सीता पुन मन को सान्त्वना देने लगी-इसमे राम या किसी अन्य का क्या दोष है। मैंने जो शुभाशुभ कर्म किये है, उनका फल मुझे भोगना ही होगा। शायद मैंने किसी जन्म मे मुनि-निन्दा की हो, सतियो को दोष लगाया हो या कोई ऐसा ही पाप किया हो। इस प्रकार सीता कभी विलाप करती, कभी आत्म निन्दा करती हुई हिरणी की भाति इधर उधर फिरने लगी।

सीता करुण क्रन्दन करती हुई वन मे फिर रही थी तभी पुण्डरीकपुर का हरिवशी राजा वज्रजघ सेना सहित हाथी पकडने इसी जगल मे आ निकला। हाथी पकडकर लौटते हुए उसने सीता का विलाप सुना। वह शीघ्र सीता के पास आया। सेना को देखकर सीता और भी भयभीत होकर विलाप करने लगी। वन देवी की तरह सीता को बैठी देखकर सेना कौतुक से और भी समीप आई। सीता डरकर उन्हे अपने गहने देने लगी। तब वज्रजघ हाथी से उतर कर सीता के समीप आया और बोला—पुत्री ! तू इस वन मे अकेली क्यो है। तेरे पिता, पति और श्वसुर कौन है ? सीता ने रोते हुए कहा—'भाई ! मैं दशरथ की पुत्र वधू, और जनक की पुत्री हूँ। रामचन्द्र मेरे पति है। और भामण्डल मेरा भाई है। भरत को राज्य सौंपकर मेरे पति वन को गये थे। उनके साथ मैं भी गई

थी। वहाँ दण्डक-वन मे पापी रावण ने मुझे हर लिया। इसके लिए राम ने रावण पर आक्रमण कर दिया। उस युद्ध मे रावण मारा गया। हम लोग प्रेमपूर्वक अयोध्या वापिस गये। वहाँ समयानुसार मै गर्भवती हुई। इसके बाद जनता ने इसका अपवाद करके रामचन्द्र से शिकायत की। उन्होने उस लोकापवाद के कारण मेरा परित्याग कर दिया। इस तरह अपना सारा वृत्तान्त कह कर वह पुन रोने लगी। सीता का करुण आक्रन्दन सुनकर वज्रजघ और उसके सैनिको के भी आसू निकलने लगे। वज्रजघ ने कहा—तू मेरी बहन है। मै तेरा भाई हूँ। चलो, हम लोग घर चलें। वहाँ रहने से फिर रामचन्द्र जी के दर्शन होगे। इस तरह सीता को समझा बुझा कर वह पालकी मे बैठाकर अपने घर ले गया। मार्ग मे सीता का परिचय पाकर जगह जगह लोगो ने उसका सम्मान सत्कार किया। नगर प्रवेश करते ही जनता ने बडे समारोह से उसकी अगवानी की। राजद्वार पर आकर वज्रजघ की रानियाँ बडे आदर और सम्मान के साथ सीता को अन्दर ले गई। वज्रजघ ने आदेश कर दिया कि सीता मेरी बहिन है अत सब काम उसकी आज्ञानुसार होने चाहिए। सब रानियो ने राजाज्ञा शिरोधार्य की। सीता वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगी तो भी रामचन्द्र जी के बिना उसे सूना सूना लगता था।

उधर कृतान्तवक्त्र वापिस अयोध्या लौटा और रामचन्द्र जी के निकट पहुँचा और नमस्कार कर बोला—'प्रभो! आपकी आज्ञानुसार मैं सीता को भयानक वन मे छोड आया हूँ।' राम बोले—'सीता ने मेरे लिए कुछ कहा तो नही।' तब सेनापति ने सीता का दिया हुआ सन्देश रामचन्द्र जी को कह सुनाया। सेनापति के मुख से सीता का सन्देश सुनते ही राम मूर्च्छा को प्राप्त हो गये। जब चेत आया तो वे विलाप करने लगे। फिर कृतान्तवक्त्र से पुन पुन पूछने लगे—'कृतान्तवक्त्र! कह, क्या तूने सीता को वन मे छोड दिया? यदि तूने किसी शुभ स्थान मे छोडा हो तो तेरे मुखचन्द्र से अमृत रूप वचन बिखरे। यह सुनकर सेनापति ने लज्जा से नीचा मुख कर लिया। तब राम ने समझ लिया कि यह निश्चय ही सीता को भयानक वन मे छोड आया है। यह समझ कर राम पुन मूर्च्छित हो गये। तब लक्ष्मण आये और मन मे दुखित होते हुए कहने लगे—'देव! क्यो व्याकुल होते हो। धैर्य धारण कीजिए। पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का फल भोगना ही पडेगा। केवल सीता को ही दुख नही हुआ। सारी प्रजा ही दुखी है। यह कहते ही लक्ष्मण का भी धैर्य जाता रहा और वे भी रुदन करने लगे। 'हाय माता! तू कहाँ गई। जैसे सूर्य बिना आकाश की शोभा नही है, इसी प्रकार तेरे बिना अयोध्या की शोभा नही रही। फिर राम से कहने लगे, 'हे देव! सारे नगर मे गीत सगीत की ध्वनि बन्द हो गई और रुदन की ध्वनि आती रहती है। घर घर मे सब लोग रुदन करते हैं और सीता के अखण्ड सतीत्व और गुणो की ही चर्चा करते रहते है। अत आप शोक छोडिये आपका चित्त प्रसन्न है तो सीता को फिर बुला लेंगे। इस तरह समझाने बुझाने से राम का शोक कुछ क्षणो के लिए कम हो गया। किन्तु वे सीता को भुला नही सके। उनका मन एक क्षण के लिए भी सीता के बिना नही लगता था।

लव-कुश का जन्म और दिग्विजय—नौ मास बीतने पर श्रावण शुक्ला पूर्णिमा मगलवार के दिन श्रवण नक्षत्र मे सीता ने दो पुत्रो को जन्म दिया। दोनो पुत्र सूर्य और चन्द्र की तरह कातिमान थे। उनका मुख देखकर सीता के साथ साथ सब जनो को परम सन्तोष हुआ। वज्रजघ ने खूब उत्सव मनाया, जिनेन्द्र देव की पूजा की और याचको को यथेच्छ दान दिया। बडे पुत्र का नाम अनगलवण और छोटे का नाम मदनाकुश रखा गया।

धीरे-धीरे दोनो बालक बढने लगे। उनका मुख देखकर सीता अपना शोक भूल गई। जब वे कुछ बडे हुए तो सीता को चिन्ता हुई कि इन्हे किस गुरु के पास पढने भेजा जाय। इतने मे सिद्धार्थ नामक एक क्षुल्लक भिक्षा के लिए सीता के घर पधारे। वे महाज्ञानी, शील सम्पन्न, तथा कला-विज्ञान के पारगामी थे। शरीर पर केवल एक वस्त्र रखते थे, केशलोच करते थे, अपने पात्र मे ही भोजन करते थे और सदा ज्ञान ध्यान मे लीन रहते थे। सीता ने उन्हे आहार कराया। आहार करने के पश्चात् वे एक आसन पर बैठ गये। सीता भी इन्हे नमस्कार करके पास ही बैठ गई। इतने मे दोनो कुमार भी आ गये। उन्हे देखकर क्षुल्लक ने पूछा—'ये दोनो सुन्दर कुमार किसके है?' क्षुल्लक का प्रश्न सुनकर सीता ने आखो मे आसू भरकर उन्हे सब वृत्तान्त सुनाया। सुनकर क्षुल्लक बोले—'दुख मत करो पुत्री! तुम्हारे दोनो पुत्र राजा होकर मुक्ति प्राप्त करेंगे। मैं इन्हे सब विद्याओ मे निपुण

कर दूँगा।' यह सुनकर सीता वडी प्रसन्न हुई। क्षुल्लक वही एकान्त स्थान मे रहने लगे और वालको को पढाने लगे। थोडे ही समय मे दोनो वालक शस्त्र विद्या और शास्त्रविद्या मे निपुण हो गये।

अव वे हाथी पर सवार होकर नगर मे क्रीडा करते घूमते थे। वज्रजघ ने बडे पुत्र अनगलवण के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। अव उसे दूसरे पुत्र के विवाह की चिन्ता हुई। तव उसने पृथ्वीपुर के राजा पृथु के पास उनकी कन्या कनकावली को अपने दूसरे पुत्र के लिए माँगने के लिए अपने मत्री को भेजा। किन्तु राजा पृथु ने वडा कटु उत्तर दिया कि जिसके कुल गोत्र का ठिकाना नही, उसके लिये मैं अपनी पुत्री को कैसे दे सकता हूँ। वज्रजघ ने जब मत्री से पृथु का यह अभद्रतापूर्ण उत्तर सुना तो उसे वडा क्रोध आया। वह सेना लेकर पृथु का मान-मर्दन करने चल दिया। मार्ग मे वंशपुर का राजा व्याघ्ररथ जो पृथु के पक्ष का था—युद्ध करने आया। उसे पराजित कर वज्रजघ ने पृथ्वीपुर को घेर लिया। राजा पृथु ने अपने मित्र पोदनपुर के राजा को बुलाया। वह सेना लेकर मैदान मे आडटा। दोनो ओर से भीषण सग्राम हुआ किन्तु दोनो की सम्मिलित शक्ति के मुकावले वज्रजघ ठहर नही सका। तव उसने दोनो कुमारो को बुला भेजा। दोनो पुत्र और वज्रजघ के पुत्र फौरन युद्ध-स्थल मे आये। दोनो कुमारो ने थोडी ही देर मे पृथु को पकड लिया। साथ ही पोदनपुर के राजा को भी उसके रथ मे ही धर दवाया और उसे पकड लिया। दोनो राजकुमारो को प्रणाम कर पृथु वोला—आप दोनो भाई उच्च कुलीन और ज्ञानवान है। मैंने अज्ञानता मे जो अपराध किया, उसे आप क्षमा कर द।' इस तरह विनयपूर्वक निवेदन करके उसने अपनी पुत्री कनकमाला का विवाह मदनाकुश के साथ कर दिया। कुमारो ने दोनो राजाओ को बधने मुक्त कर दिया और एक महीने पृथ्वीपुर मे ठहर कर दिग्विजय करने निकले। उनके साथ राजा पृथु, पोदनपुर को राजा और वज्रजघ भी चले। वे लोकाक्ष, मालवा, अवन्ति, तिलिग आदि दक्षिण देशो को जीतते हुए कैलाश पर्वत की ओर पूर्व दिशा मे गये। उधर के अनेक राजाओ को जीतते हुए पश्चिम के राजाओ को जीता। पश्चात् विजयार्ध के समीप सिन्धु के किनारे के राजाओ को जीना। इस तरह तमाम पृथ्वी को जीतते हुए वे अपने नगर को लौट आये। प्रजा ने कुमारो का खूव स्वागत किया। वज्रजघ के साथ कुमार राजद्वार पर पहुँचे। रानियो ने तीनो की आरती उतारी। सीता भाई से मिली और कुमारो ने सीता के पैर छुए। सीता ने दोनो को आशीर्वाद दिया।

एक दिन देवर्पि नारद अयोध्या गये। नारद ने वहाँ सीता को न देखकर राम से पूछा—'यहाँ सीता कही दिखाई नही देती।' नारद का प्रश्न सुनकर कृतान्तवक्त्र ने सारा समाचार सुनाया। उसे सुनकर नारद को बडा दु ख हुआ और वे सीता को खोजने चल दिये। घूमते हुए वे पुण्डरीकपुर पहुँचे और वज्रजघ की आज्ञा लेकर अन्त -पुर मे गये। सीता ने उन्हे प्रणाम किया और वैठने को उच्च आमन दिया। नारद सीता को देखकर बडे प्रसन्न हुए। नारद ने सीता से कुशल समाचार पृछे तो सीता ने आपवीती सारी घटना कह सुनाई। इतने मे वही पर दोनो कुमार आ गये और नारद के पैर छूकर खडे हो गये। नारद ने उन्हे आशीर्वाद दिया—'राम-लक्ष्मण के समान तुम्हारे भी खूव विभूति हो।' कुमारो ने नारद से पूछा—'ये राम-लक्ष्मण कौन है।' नारद वोले—'क्या तुमने नारायण और वलभद्र लक्ष्मण राम का नाम नही सुना जिन्होने सीता को हरने वाले महा बलवान रावण को मारा है और जो तीन खण्ड के अधिपति वन कर अयोध्या मे शासन कर रहे है। उन्ही मे से वलभद्र के तुम दोनो पुत्र हो।' तव कुमारो ने सीता से पूछा कि नारद जी जो कुछ कह रहे है, क्या वह सत्य है ? तव सीता ने सव आप वीती सुना दी। माता का वृत्तान्त सुनकर दोनो पुत्र क्रुद्ध होकर राम लक्ष्मण को मारने के लिए तैयार हुए। नारद जी ने मना किया तो लवणाँकुश तेजी मे वोला—लोगो के कहने मे आकर पिता ने क्यो हमारी माँ को छोड दिया। क्या उस समय अयोध्या मे न्याय की वात कहने वाला कोई नही था कि एक स्त्री को भयानक वन मे अकेली क्यो छोडा जाता है। अगर मामा ने माँ को न रखा होता तो अव तक माँ को शेर चीते खा जाते। आप वताइये, अयोध्या यहाँ से कितनी दूर है। हम भी तो देखे, पिता कितने पानी मे है।' नारद ने कहा—'अयोध्या यहाँ से एक सौ साठ योजन है।' लवणाँकुश ने मामा से कहा—'हम राम लक्ष्मण पर चढाई करेंगे, आप सेना सजवाइये।' सीता ने पुत्रो से मना किया—वेटा! तुम राम लक्ष्मण के साथ लडाई मत ठानो। वे वडे वलवान हैं। उन्होने तीन खण्ड के अधि-पति और अनेक विद्याओ के स्वामी रावण को भी मार दिया।' लवणाँकुश वोला—'मा! हम लोग रावण की तरह

परस्त्री लपट नही है। हम तुम्हारे चरणो की सौगन्ध खाते है कि हम उन्हे पीठ दिखाकर नही आवेंगे।' इस तरह कहकर दोनो कुमार चतुरग सेना सजाकर युद्ध के लिए चल दिये।

अनेक देशो को जीतते हुए वे अयोध्या पहुँचे। किसी शत्रु-सैन्य का आगमन सुनकर राम लक्ष्मण से बोले—सेना तैयार करो। वज्रजघ को मारने हमे जाना ही था, किन्तु वह स्वय मरने के लिए यहाँ आ गया है।' लक्ष्मण ने दूत भेजकर हनुमान, विराधित, विभीषण आदि को भी बुला लिया। युद्ध भेरी बजाई गई। राम सिंहरथ पर सवार होकर सबसे आगे चले। उनके पीछे गरुड रथ पर चक्र हाथ मे लेकर लक्ष्मण चले। उनके पीछे असख्य राजा और सैन्य चली। दोनो सेनाये एक दूसरे के सम्मुख आ डटी।

सीता, सिद्धार्थ क्षुल्लक और नारद मुनि के साथ ऊपर विमान मे बैठी हुई थी। दोनो ओर से युद्ध की तैयारी देखकर सीता चिंतित होकर नारद से बोली—यह आपने क्या किया ? कुमार अभी बालक है। वे बलभद्र और नारायण से कैसे लडेंगे। दोनो ओर से कोई अनिष्ट हुआ तो मैं कही की नही रहूँगी।' नारद ने कहा—'पुत्री ! डरो मत। ये दोनो कुमार चरमशरीरी और वज्रमयी शरीरधारी है। इस प्रकार सीता को समझा कर नारद भामण्डल के पास पहुँचे और उसे कुमारो का परिचय दिया। भामण्डल हनुमान को लेकर सीता के पास पहुँचा। दोनो कुमार भी वहाँ आकर भामण्डल और हनुमान से मिले। युद्ध शुरू होने से पहले ही भामण्डल और हनुमान राम का पक्ष छोडकर लवणांकुश की ओर आ मिले। यह देखकर अन्य विद्याधर भी युद्ध से तटस्थ हो गये। युद्ध प्रारम्भ हो गया। लवण के योद्धाओ ने राम की सेना को छिन्न भिन्न कर दिया। यह देखकर शत्रुघ्न युद्ध करने आया। उसे देखकर लव और कुश युद्ध करने आगे आये और शत्रुघ्न को बाणो से आच्छादित कर रथ से नीचे गिरा दिया। यह देखकर क्रुद्ध होकर राम और लक्ष्मण शत्रु सेना का सहार करते हुए इन दोनो कुमारो के सामने आ डटे। लवणांकुश के साथ राम और मदनाकुश के साथ लक्ष्मण युद्ध करने लगे तथा वज्रजघ शत्रुघ्न से युद्ध करने लगा। भयकर युद्ध हुआ। अनेक हाथी, घोडे, सैनिक मारे गये। रथो का चूरा हो गया। खून की नदी बहने लगी। खून की कीचड मच गई। राम ने हल उठाकर मारा, किन्तु लव ने उसे व्यर्थ कर दिया। राम ने दिव्य अस्त्र चलाये, किन्तु लव पर उनका कोई प्रभाव नही हुआ। बाद मे लवण ने राम का रथ तोड दिया। राम बार-बार रथ बदलते और लवण उसे तोड देता। राम व्याकुल हो गये। राम सोचने लगे—मेरे सारे अस्त्र व्यर्थ हो गये, सारे विद्याधर धोखा दे गये। दिव्यास्त्रो का इस पर कोई प्रभाव नही पडा। भूमिगोचरी राजा इसने मार दिये। मेरे भी तीन बार इसने रथ तोड दिये। राम इस प्रकार सोच ही रहे थे कि लवण ने उनके वक्षस्थल पर प्रहार किया। वे मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे। राजाओ ने उठाकर राम को कठिनाई से सचेत किया।

उधर लक्ष्मण सागरावर्त धनुष लेकर क्रोध से मदनाकुश पर झपटे। उन्होने अनेक बाण छोडे किन्तु कुश ने उन सबको व्यर्थ कर दिया। लक्ष्मण ने तब गदा उठाकर मारी किन्तु कुश ने उसे धनुर्दण्ड से रोक दिया। फिर कुश ने लक्ष्मण पर वज्र का प्रहार किया। लक्ष्मण वज्र की चोट से बेहोश हो गये। विराधित रथ लौटाने लगा किन्तु लक्ष्मण ने उसे डाट दिया। तब कुश ने लक्ष्मण को बाणो से ढक दिया और सात बार लक्ष्मण का रथ तोड दिया। तब क्रुद्ध होकर लक्ष्मण ने कुश पर चक्र फेका, किन्तु चक्र कुश की प्रदक्षिणा देकर लौट आया। इस प्रकार लक्ष्मण ने सात बार चक्र मारा, किन्तु हर बार वह लौट आया। तब कुश ने लक्ष्मण पर धनुर्दण्ड घुमाया। सब लोग आश्चर्य से सोचने लगे—यह कोई नया नारायण पैदा हुआ है या कोई चक्रवर्ती आ गया है। लक्ष्मण सोचने लगे—मेरा पुण्य ही क्षीण हो गया है। इस प्रकार लक्ष्मण सोचते हुए खडे रह गये।

तब नारद और सिद्धार्थ लक्ष्मण के पास आये और बोले—ये दोना प्रतिद्वन्द्वी राम के पुत्र लवण और अकुश है। जिस सीता को आप लोगो ने भयानक वन मे ले जाकर छोड दिया था, उसे वज्रजघ अपनी बहिन बना कर ले गया था। उसी के ये दोनो पुत्र माता के दु ख से क्रोधित होकर आपसे लडने आये है। लक्ष्मण रथ से उतर पश्चाताप करता हुआ राम के पास गया और जाकर दोनो पुत्रो का वृत्तान्त बताया।

इसके बाद दोनो कुमारो ने आकर राम लक्ष्मण के पैर छुए। उन्होने उन दोनो कुमारो को छाती से लगा लिया। राम सीता-त्याग की घटना याद करके विलाप करने लगे। उन्हे विलाप करते देखकर अन्य लोगो के

भी आसू आ गये। विद्याधर और भूमिगोचरी राजा मिलकर राम के निकट आये। युद्ध बन्द हुआ। सब लोग परस्पर गले मिले। अपने पुत्रो का माहात्म्य देखकर सीता पुण्डरीकपुर लौट गई। भामण्डल की रानियाँ भी सीता के साथ गई। युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भामण्डल, सुग्रीव, विभीषण, नल, नील, अग, अगद हनुमान तथा अन्य विद्याधर सीता को देखने पुण्डरीकपुर गये। सबने सीता को प्रणाम किया, सीता ने उन्हे आशीर्वाद दिया। फिर सब लोग अयोध्या वापिस आ गये। पुत्रो के समागम की खुशी मे अयोध्यावासियो ने बडा हर्ष मनाया। नगर खूब सजाया गया। रामचन्द्र जी दोनो पुत्रो के साथ हाथी पर बैठकर नगर मे आये। स्त्रियो ने कुमारो की आरती उतारी। राम लक्ष्मण ने वज्रजघ का खूब सत्कार किया।

एक दिन विभीषण, हनुमान आदि विद्याधरो ने हाथ जोडकर रामचन्द्र जी से निवेदन किया—प्रभो! सीता पुण्डरीकपुर मे जाने कैसे अपना समय व्यतीत करती होगी। अगर आप आज्ञा दे तो उन्हे जाकर ले आवें।'

सीता जी की अग्नि परीक्षा

यह सुनकर रामचन्द्र जी आखो मे आसू भर कर बोले—'मैं जानता हूँ कि सीता निर्दोष है। परन्तु उसे ले आने से लोग फिर अपवाद करेंगे। अगर सीता अग्नि मे प्रवेश करके अपनी निर्दोषता की परीक्षा दे तो मै उसे रख सकता हूँ।' 'अच्छा' कहकर विद्याधर लोग पुण्डरीकपुर पहुँचे और सीता से जन समुदाय के सामने अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने की प्रार्थना की। सीता ने कहा—मैं अब ससार के सुखो मे पुन प्रवेश नही करना चाहती। यदि मेरे भाग्य मे सुख ही होते तो ये दु ख ही क्यो आते। जब मुझे कलक लग चुका तो क्या लेकर उन्हे अपना मुह दिखाऊँ।' विभीषण बोला—'दु ख करने से क्या लाभ है। जो कुछ होता है, सब अपने भाग्य से होता है। अत' आप ऐसा कीजिये कि सब लोगो पर आपका विश्वास जम जाय। ऐसा करने से आपकी भी कीर्ति होगी।' सीता ने अपनी निर्दोषता प्रमाणित करना स्वीकार किया और प्रसन्नता से विमान मे बैठ गई।

सीता अयोध्या आई। वह महेन्द्र उद्यान मे ठहराई गई। देश-विदेश के लोगो को निमन्त्रण-पत्रिका भेजी गई। देश विदेश के लोग आकर एकत्रित होने लगे। रामचन्द्र जी महल के समीप ही एक मच पर बैठ गये। राजा लोग भी यथास्थान बैठ गये। आज्ञा पाकर विद्याधर लोग सीता को हाथी पर बैठाकर सभा-मण्डप मे ले आये। सीता को आते देखकर लोग हर्षित हो उठे। जब सीता निकट आ गई तो राजा गण खडे हो गये। लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि ने उनके पैर छुए। सीता राम के निकट आई। रामचन्द्र जी की उदासीनता देखकर सीता मन मे अत्यन्त व्याकुल हुई किन्तु फिर उनके पैर छू कर सामने खडी हो गई और लज्जा से निगाह नीची करके पैर के अगूठे से जमीन कुरेदने लगी। उसे ख्याल आने लगा कि मैं यहाँ क्यो आई। इतने मे रामचन्द्र जी बोले—'सीता! सामने से दूर हो। तू यहाँ क्यो आई। छह महीने तू रावण के यहाँ रही है। अब किस मुँह से मैं तुझे अपने यहाँ रक्खूँ। मैं जानता हूँ कि तू निर्दोष है। परन्तु जब तक लोग तुझे निर्दोष न मान ले, तब तक मेरे यहाँ तुम्हारी गुजायश नही है।' यह सुनकर सीता ने कहा—मुझे सब स्वीकार है। अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिये आप कहे तो मैं साप के मुह मे अपना हाथ दे दूँ, आप कहें तो हलाहल विष पीलू, आप कहे तो तपे हुए लोहे के गोले हाथ मे ले लू, आप कहे तो आग मे कूद पडूँ। आप जो कुछ कहे, वह सब मै करने को तैयार हूँ। राम क्षण भर सोचकर बोले—'आग मे प्रवेश कर अग्नि-परीक्षा दो।' यह सुनकर नारद सोचने लगे—अग्नि का क्या विश्वास, न जाने क्या अनर्थ हो जाय। विभीषण हनुमान आदि भी इस आज्ञा से व्याकुल हो गये। लक्ष्मण, शत्रुघ्न, लवण और अकुश भी बडे दु खी हुए। क्षुल्लक सिद्धार्थ ने खडे होकर कहा—'महाराज! मैं विद्या के बल से सर्वत्र चैत्यालयो की वदना के लिये जाता रहता हूँ। मैंने मुनियो के मुख से भी सब जगह सीता के सतीत्व की प्रशसा सुनी है। अत आप सीता को अग्नि-प्रवेश की आज्ञा मत दीजिये।' विद्याधर और भूमिगोचरी लोग भी एक स्वर से कहने लगे—'प्रभो! सीता सती है, वह निर्दोष है, उन्हे अग्नि प्रवेश की आज्ञा मत दीजिये। राम क्रुद्ध होकर बोले—इतनी दया अब दिखा रहे हो तो पहले सीता का अपवाद क्यो किया था।'

राम की आज्ञा से फौरन दो पुरुष गहरा और तीन सौ हाथ लम्बा चौडा गड्ढा खोदा गया और सूखे ईंधन से भरकर अग्नि प्रज्वलित की गई। असख्य जनता सीता की अग्नि-परीक्षा देखने वहाँ एकत्रित हो गई।

उसी रात को महेन्द्र उद्यान मे सकलभूषण मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवो ने आकर ज्ञानोत्सव मनाया। चारो निकाय के देवता वहाँ आये। मेघकेतु नामक एक देव सीता की परीक्षा के लिए बनाये गये अग्नि-कुण्ड को देखकर इन्द्र से कहने लगा—'प्रभो! सीता पर घोर उपसर्ग आ पडा है। वह महासती शीलवती है। उसे दु ख क्यो हो।' तब इन्द्र ने आज्ञा दी—'मैं तो केवली भगवान का ज्ञानोत्सव मनाने जाता हूँ। तुम महासती का उपसर्ग दूर करना।' मेघकेतु देव अपने विमान मे आकाश मे ठहर गया।

जब अग्नि-कुण्ड की लपटे आकाश को छूने लगी तो राम सोचने लगे—कैसे सीता को इस भयकर आग मे कूदने दूं। सीता जैसी स्त्री इस लोक मे नही है। यदि मैं इसे अग्नि-प्रवेश से रोकता हूँ तो सदा के लिए मेरे कुल मे कलक लग जायगा। यदि सीता आग मे जल कर मर गई तो और भी अनर्थ होगा।' रामचन्द्र जी इधर यह सोच रहे थे, उधर सीता धीरे-धीरे अग्नि-कुण्ड के समीप आई। एकाग्र चित्त होकर उसने ऋपभदेव भगवान से लेकर मुनिसुव्रतनाथ पर्यन्त तीर्थंकरो की स्तुति की। बाद मे बोली—'हे अग्नि! मन से, वचन से काय से, स्वप्न मे या जागृत अवस्था मे राम के सिवाय मैंने कभी पर पुरुष की इच्छा नही की है। यदि शील मे कोई दूषण लगा हो अथवा मै व्यभिचारिणी हूँ तो हे अग्नि! तू मुझे भस्म कर देना। यदि मैं सती हूँ तो मुझे मत जलाना।' यो कहकर सीता ने णमोकार मत्र का स्मरण किया और जलती हुई अग्नि मे प्रवेश कर गई। लोग भयभीत होकर, आशकित मन से उसका परिणाम देखने लगे।

अचानक आग बुझ गई। उसके शील के प्रभाव से अग्नि के स्थान पर निर्मल शीतल जल हो गया, मानो धरती को भेदकर ही यह वापिका पाताल से निकली हो। जल मे कमल खिल रहे है। वहाँ न अग्नि रही, न ईधन। वहाँ तो जल मे झाग उठने लगे, भवर पडने लगे। जैसे समुद्र मे गर्जन होता है, इस प्रकार उस वापी मे घोर शब्द होने लगा, जल उछल कर बढने लगा। पहले घुटने तक आया, फिर छाती तक आया। फिर सिर के ऊपर होकर पानी चलने लगा। लोग डूबने लगे। तब सब आर्तवाणी मे पुकारने लगे—'हे माता! हे महासाध्वी! हमारी रक्षा करो, हमे बचाओ।' जनता की इस विह्वल पुकार पर धीरे-धीरे जल रुका, फिर कम होता गया और सिम्ट कर तालाब बन गया। उसके मध्य मे एक सहस्र दल कमल खिल रहा था। उस कमल के बीच मे रत्नमयी सिंहासन पर सीता विराजमान थी। देवागनाये सेवा कर रही थी। अनेक देवो ने आकर सीता के चरणो पर पुष्प चढाये। आकाश से सीता के ऊपर पुष्पवर्षा होने लगी। देव और विद्याधर 'सीता सती हैं' इस प्रकार चिल्लाने लगे, विद्याधर आकाश मे नाचने लगे। लवण और अकुश जल पारकर सीता के पास गये और उसके आजू-बाजू बैठ गये। राम भी विद्याधरो के साथ सीता के निकट पहुँच कर कहने लगे–देवी! उठो, चलो घर चले। मेरे अपराधो को तुम क्षमा करो। सारे ससार मे तुम सती ही नही, सतियो मे भी प्रधान हो। मेरे प्राणो की रक्षा तुम्हारे ही आधीन है। आठ हजार रानियो मे तुम अपना पूर्व का प्रमुख पद सभालो।' सीता ने उत्तर दिया—मुझे अब भोगो से प्रयोजन नही है। अब तो मैं ऐसा उपाय करूँगी, जिससे मेरा नारी-जन्म सफल हो। नाथ! आपके साथ मैंने अनेक सुख भोगे, अब उनसे मेरा जी ऊब गया है।' इस प्रकार कहकर सीता ने अपने हाथो से अपने बाल उपाड लिये और उन्हे राम के हाथो पर रख दिया। राम उन सुकोमल सुगन्धित बालो को देखकर मूर्छित होकर गिर पडे। लोग जब तक उन्हे होश मे लाने की चेप्टा करते रहे, तब तक सीता ने पृथ्वीमती आर्यिका के पास दीक्षा लेली और आर्यिकाव्रत धारण कर महेन्द्र उद्यान मे केवली भगवान के निकट पहुँची।

राम को होश आया तो सीता को न देखकर उन्हे बडा शोक हुआ और सीता को देखते हुए वे सकलभूपण केवली भगवान की सभा मे जा पहुँचे। भगवान अशोक वृक्ष के नीचे सिंहासन पर विराजमान थे, दिव्य छत्र उन पर लगे हुए थे। चमर ढुर रहे थे। आठ प्रातिहार्य से सम्पन्न थे। चारो ओर देव, मनुष्य और तिर्यच बैठे हुए थे। रामचन्द्र जी ने वहाँ पहुँचकर अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा की और मनुष्यो के भाग मे बैठ गये। लक्ष्मण आदि अन्य लोग भी उसी प्रकार भगवान की स्तुति पूजा कर राम के साथ ही बैठ गये। सबने भगवान का कल्याणकारी उपदेश सुना।

केवली भगवान का उपदेश सुनकर अनेक लोगो ने ससार विरक्त होकर मुनि दीक्षा लेली। सेनापति कृतान्तवक्त्र भी मुनि वन गया और तपस्या करके स्वर्ग मे देव हुआ।

सीता ने वासठ वर्ष तक घोर तप किया और अन्त मे सन्यासपूर्वक मरण करके सोलहवे स्वर्ग मे प्रतीन्द्र हुई।

अपनी स्त्रियो के प्रति भामण्डल की आसक्ति वहुत वढ गई। वह निरन्तर स्त्रियों के साथ क्रीडा और भोग किया करता था। राम-लक्ष्मण का राज्य निष्कटक हो गया था। इसलिए उनकी ओर से भी अव युद्ध का निमन्त्रण नही आता था। उसके भी शत्रु नही रहे थे। इसलिये वह आनन्द के साथ अपना काल-यापन कर रहा था। एक दिन अपनी पुष्पवाटिका मे वज्राक मुनि को आहार-दान देकर वह महल के ऊपर वैठा विचार कर रहा था—ये भोग क्षणभगुर हैं, इसलिये इनका भोग अधिक से अधिक कर लेना चाहिये। न जाने कव वुढापा आ जाय और ये भोग भोगने योग्य अवस्था न रहे। अव मैं भोग भी भोगूगा और शत्रुओ को परास्त कर उत्तर और दक्षिण दोनो श्रेणियो का राज्य करूँगा। भोगो मे पाप तो हे, किन्तु क्या हुआ। जव वुढापा आयेगा और भोग भोगने योग्य नही रहूँगा, तब मैं मुनि-दीक्षा ले लूंगा और उन पापो का भी नाश कर डालूँगा।

दीर्घसूत्री भाभण्डल का करुण निधन

वह इस प्रकार वैठा-वैठा न जाने कितने मन के कुलावे वाध रहा था। तभी अकस्मात् विजली गिरी और भामण्डल उसी मे मर गया। इसीलिये तो आचार्यो ने कहा है—दीर्घसूत्री विनश्यति।

लक्ष्मण के पुत्र, राम के पुत्र लव और अकुश का उत्कर्प सहन नही कर सके। फलत उन्होने मुनि वनना ही उचित समझा। हनुमान भी एक दिन आकाश मे तारे को टूटता हुआ देखकर विचार करने लगे कि ससार के भोग, यह देह और जीवन भी इसी प्रकार अस्थिर हे, क्षणभगुर है। इन पर क्या विश्वास किया जाय और क्या इतराना। यो सोचकर वे भी मुनि वन गये और तपस्या करके अन्त मे तुँगीगिरि से मोक्ष चले गये।

राम का वैराग्य और मोक्ष-गमन

एक दिन सौधर्म स्वर्ग मे इन्द्र देवो की सभा मे शास्त्र चर्चा करते हुए कहने लगे—तुम्हे देव पर्याय पुण्यो से प्राप्त हुई है। इसको भोगो मे नही गवा देना चहिये। यदि यहाँ भगवान की भक्ति और धर्म की आराधना मे मन लगाओगे तो इसके वाद तुम्हे मनुष्य जन्म प्राप्त हो सकता है। तब वहाँ मुक्ति की साधना की जा सकती है।

तव एक देव वोला—देवराज! स्वर्ग मे आकर सव ऐसा ही कहते हैं, किन्तु जव मनुष्य-जन्म मिल जाता है तो सब भूल जाते है। देखिये न, राम का जीव पूर्व जन्म मे जव ब्रह्म स्वर्ग का इन्द्र था, तव वह भी ऐसी ही वैराग्यभरी चर्चा किया करता था, किन्तु अब राम लक्ष्मण के मोह मे कैसे फँस रहे है।' तव देवराज इन्द्र वोले—अनुराग का बन्धन होता ही ऐसा है। राम और लक्ष्मण का भ्रातृ-स्नेह अन्यत्र मिलना कठिन है। इन्द्र सभा समाप्त कर उठ गये।

तव दो देवो ने सोचा—चलकर देखे तो सही, दोनो भाइयो मे कैसा स्नेह है। देव अयोध्या मे लक्ष्मण के महल मे पहुँचे। उस समय वे बैठे हुये मुँह धो रहे थे। देवो ने राम के महल मे जाकर रुदन का कुहराम मचा दिया और ऐसी माया फैलाई कि मत्री, द्वारपाल आदि लक्ष्मण के पास आकर कहने लगे — 'देव! अनर्थ हो गया।' लक्ष्मण बोले—'क्या हुआ ?' किन्तु किसी के मुख से वचन नहो निकला, आँखो से आसुओ की धार बहती रही। बड़ी कठिनाई से इतना ही निकल पाया—'देव! राम हमको अनाथ कर गये।' लक्ष्मण ने ये शब्द क्या सुने, मानो वज्रपात हो गया। एकदम उनके मुख से 'हाय' निकला और वे निष्प्राण होकर भूमि पर गिर पडे। देवो को अपने अविवेकपूर्ण कृत्य पर बडा पश्चाताप हुआ और दुखित मन से वे वहाँ से चले गये।

लक्ष्मण की मृत्यु होते ही महल मे भयानक क्रन्दन शुरु हो गया। लक्ष्मण की रानियाँ लक्ष्मण की मृत देह को घेरकर विलाप करने लगी। तव किसी ने जाकर रामचन्द्र जी को दु सवाद दिया। राम दौडे आये। रानियाँ उनके आते ही एक ओर हट गईं। राम ने आते ही लक्ष्मण को गोद मे उठा लिया और प्रलाप करने लगे—कौन कहता है, मेरा भाई मर गया है, वह तो सो रहा है। फिर लक्ष्मण से कहने लगे—वत्स! तू तो कभी ऐसा सोता नही था।

आज तू ऐसा क्यो सो गया है कि जगाने पर भी नही जागता। अच्छा, अब समझा, तू मुझसे रूठ गया है किन्तु बता तो सही, क्यो रूठ गया है। इस प्रकार कहकर वे मूर्च्छित होकर गिर पडे। वे बार-बार होश मे आते और लक्ष्मण से नाना प्रकार की बाते करने लगते, कभी उसके मुख मे भोजन देते, कभी दूध पिलाते और फिर बार-बार बेहोश हो जाते। किन्तु लक्ष्मण को एक क्षण को भी दूसरे को नही छूने देते। उन्हे किसी पर भी विश्वास नही था, न जाने ये लोग मेरे लक्ष्मण को क्या कर दे। वह रूठ गया है मुझसे, उसे मैं ही मनाऊँगा।

रुदन सुनकर सारा परिवार वहाँ एकत्रित हो गया। 'लवण और अकुश भी आये। उन्होने मृत लक्ष्मण को देखा और मन मे सोचने लगे—ये लक्ष्मण नारायण थे, तीन खण्ड के अधिपति थे, कोई इनको जीतने मे समर्थ नही था। किन्तु जब ऐसे महापुरुषो की भी मृत्यु होती है तो हम जैसो की तो बात ही क्या है। इस प्रकार विचार कर वे ससार, शरीर और भोगो से विरक्त हो गये और पिता की आज्ञा लेकर महेन्द्र वन मे पहुँचे और वहाँ अमृतस्वर मुनि के पास दीक्षा लेकर मुनि बन गये तथा घोर तपस्या करके पावागिरि से मुक्त हो गये।

लक्ष्मण की मृत्यु का सवाद पाकर विभीषण, सुग्रीव आदि सभी राजा आये। जब लक्ष्मण की लाश को छाती से चिपटाये हुये तथा निरर्थक प्रलाप करते हुए राम को देखा तो सभी बहुत दुखित हुए। तब विभीषण ने राम को समझाया—देव ! यह रोना छोडिये। ससार का स्वभाव ही ऐसा है। जो यहाँ जन्म लेता है, वह मरता अवश्य है। अत वीर लक्ष्मण की मृत देह का सस्कार करिये।' राम यह सुनकर क्रुद्ध होकर बोले—'आप लोग अपने पिता पुत्र का सस्कार करिये। मेरा भाई लक्ष्मण तो मुझसे रूठकर सो गया है। क्रोध कम होने पर वह अपने आप उठ बैठेगा।' इस तरह कहकर वे लक्ष्मण से कहने लगे—'भैया लक्ष्मण, उठ। इन दुष्टो के बीच से हम कही अन्यत्र चले चलेगे। ये दुष्ट विद्याधर हमारा अनिष्ट करने पर उतारू है।' इस तरह कहकर लक्ष्मण की लाश को लेकर रामचन्द्र जी चल दिये और इधर-उधर घूमने लगे। उनकी रक्षा के लिये विद्याधर लोग भी उनके पीछे घूमने लगे।

इस तरह कुछ दिन बीत गये। तो शत्रुओ ने देखा—इस समय लक्ष्मण मर गया है, राम भाई के शोक मे पागल हो रहे है, लव और कुश दीक्षा ले गये है। अत अपने पिताओ का बदला लेने का बडा अच्छा अवसर है। यो सोचकर इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, खरदूषण आदि के पुत्रो ने सेना सजाकर अयोध्या पर चढाई कर दी। शत्रु का आक्रमण सुनकर राम लक्ष्मण की लाश को कन्धे से चिपटा कर धनुष उठा कर चल दिये। शोकसतप्त राजा भी उनकी सहायता करने लगे। बलभद्र राम पर चारो ओर से आई हुई विपत्ति देखकर जटायु और कृतान्तवक्त्र के जीव—जो चौथे स्वर्ग मे देव हुए थे—उन्होने आपस मे परामर्श किया। कृतान्तवक्त्र के जीव ने जटायु के जीव से कहा—लक्ष्मण की मृत्यु हो गई है। हमारे पूर्वजन्म के स्वामी राम शोक मे पागल हो गये हैं। शत्रु नगर पर अधिकार करने चले है। ऐसे समय मे हमे उनकी सहायता करनी चाहिए। तुम जटायु पक्षी थे और तुम्हे उन्होने ही मरते समय णमोकार मत्र सुनाया था, जिसके प्रभाव से तुम देव बने हो। मैं उनका कृतान्तवक्त्र सेनापति था। इस तरह कहकर कृतान्तवक्त्र का जीव देव दैत्य का रूप धारण कर शत्रुओ से युद्ध करने लगा। वह पर्वतो को उखाड कर शत्रुओ पर फेंकने लगा। शत्रु सेना डरकर भाग गई।

शत्रुओ को परास्त कर उन दोनो ने राम को प्रतिबोध देने का निश्चय किया। कृतान्तवक्त्र का जीव राम के सामने वृक्ष का सूखा ठूँठ बनकर खडा हो गया और जटायु का जीव उसे पानी से सीचने लगा। यह देखकर राम ने कहा—'अरे मूर्ख ! इस सूखे ठूठ को तू क्यो सीच रहा है। इससे क्या तुझे फल मिल जायेगे।' उत्तर मे जटायु के जीव ने कहा—'दूसरो को उपदेश देने वाले तो बहुत है, किन्तु खुद अपनी ओर कोई नही देखता। आप ही बताइये, आप मुर्दे को छह माह से ढोते फिर रहे है, वह क्या जी जायगा।' यह सुनकर राम बोले—मूर्ख और दुष्ट आदमियो के हित की बात कहो, तो वह भी उन्हें बुरी लगती है। अत चुप रहना ही ठीक है।

इस तरह कहकर राम आगे बढे तो देखा—एक आदमी पत्थर पर बीज बो रहा है और दूसरा आदमी घी के वास्ते जल और बालू मथ रहा है। राम ने उन दोनों से कहा—पागलो ! कही पत्थर से अकुर निकलते हैं और जल या बालू से घी निकलता है ? व्यर्थ क्यो महनत करते हो।' तब कृतान्तवक्त्र के जीव ने कहा—'तब आप ही बताइये आप क्यो मतक शरीर को लिये फिर रहे हैं, क्या वह उससे जीवित हो जायगा ?'

वे दोनो इधर बात कर ही रहे थे, तब तक जटायु का जीव किसी लाश को कन्धे पर रखे उससे बातचीत करता हुआ राम के आगे से निकला। राम ने उससे पूछा—'तू मुर्दे को क्यो लादे हुए है और उससे सुख-दुःख की बात करने से तुझे क्या लाभ होगा?' तब जटायु के जीव ने उनसे कहा—'तब आपने भी तो अपने भाई की लाश को लाद रक्खा है। आपको ही उससे बातचीत करने से क्या मिल जायगा?' राम ने जब यह सुना तो उन्हे होश आया। वे बार-बार लक्ष्मण के मुंह की ओर ताकने लगे। जब देखा कि लक्ष्मण का शरीर प्राणरहित है तो उन्हे ससार की अनित्यता समझ कर वैराग्य हो गया। वे सोचने लगे—ससार मे कौन किसकी माता और कौन भाई है! यह यौवन सदा किसका रहा है? सब कुछ विनाशीक है। इन सबसे सम्बन्ध तोड लेना ही श्रेयस्कर है। राम को विरक्त जानकर दोनो देव प्रगट हुए और अपना परिचय देकर बोले—'हम दोनो चौथे स्वर्ग मे देव हुए है। आपको दुखी जानकर समझाने आये थे।' राम के कहने से सुग्रीवादि ने चिता बनाकर लक्ष्मण की देह का दाह-संस्कार किया। स्नानादि से पवित्र होकर राम ने शत्रुघ्न का राज्याभिषेक करना चाहा, किन्तु उसने स्वीकार न करके दीक्षा लेने की इच्छा प्रगट की। तब राम ने लवणाकुश के पुत्र अनगलवण को राज्य का अधिपति बनाया और दीक्षा लेने वन को चल दिये।

वन मे जाकर चारणऋद्धिधारी अवधिज्ञानी मुनिसुव्रत से राम ने शत्रुघ्न सहित मुनिदीक्षा ले ली। भूषण वस्त्र और सिर के केश उखाड कर फेक दिये। राम की यह दशा देखकर खडे हुए लोगो की आँखो से आँसुओ की धारा बह निकली। राम के साथ विभीषण, सुग्रीव, नल, नील, चन्द्र, विराधित आदि अनेक लोगो ने भी मुनि-दीक्षा ले ली। अनेक रानियां गृह त्याग कर आर्यिका हो गई।

कुछ दिनो पश्चात् राम गुरु से आज्ञा लेकर एकलविहारी हो गये। वे पांच दिनो तक उपवास करने के बाद एक नगर मे पहुंचे तो उनके सुन्दर रूप को देखकर अनेक स्त्रियां काम से व्याकुल होकर नाना चेष्टाये करने लगी। राम अन्तराय समझकर लौट आये और निश्चय कर लिया कि अब मैं आहार के लिये नगर मे नहीं जाया करूंगा। इस प्रकार घोर तपस्या करते हुए वे अनेक देशो मे विहार करते हुए कोटिशिला पहुंचे और नासाग्र दृष्टि से ध्यान करने बैठ गये।

स्वर्ग मे सीता के जीव ने अवधिज्ञान से राम का मुनि होना देखकर विचार किया कि राम को किस प्रकार तपस्या से विचलित करूँ जिससे वे इसी स्वर्ग मे आवे और हम दोनो साथ-साथ रहे। इस तरह विचार कर वह प्रतीन्द्र राम के पास गया और सीता का रूप बनाकर अनेक हाव-भाव करके नाना प्रकार की चेष्टाये करने लगा। किन्तु रामचन्द्रजी ध्यान मे विचलित नही हुए। क्षपक श्रेणी आरोहण करके उन्होने उसी समय घातिया कर्मो का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। माघ शुक्ला द्वादशी को रात्रि के पिछले पहर मे वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी अर्हन्त भगवान बन गये। चारो प्रकार के देवो और इन्द्रो ने मिलकर भगवान राम का ज्ञानोत्सव मनाया और भगवान का उपदेश हुआ।

भगवान राम अनेक देशो मे विहार करते हुए तुगीगिरि पहुँचे और योगनिरोध कर शेष अघातिया कर्मो का भी नाश करके परम पद मोक्ष को प्राप्त किया। राम सिद्ध भगवान बन गये। अब उनका ससार-भ्रमण, जन्म-जरा-मृत्यु सब छूट गये। वे कृत-कृत्य हो गये। ससार के सम्पूर्ण दु खो से वे परे हो गये।

भगवान राम के इस पावन जीवन-चरित को जो भव्यजन भक्ति भाव से पढते है और उन जैसा ही आदर्श जीवन बनाने का प्रयत्न करते है, वे भी एक दिन अवश्य भगवान बनेगे।

बोलो भगवान रामचन्द्र की जय!

त्रयोविंशतितम परिच्छेद

नारद, वसु और पर्वत का सवाद—

भगवान मुनिसुव्रतनाथ के वाद उनका पुत्र सुव्रत राजसिंहासन का अधिकारी हुआ। यथासमय वह अपने पुत्र दक्ष को राज्य-भार सोप कर अपने पिता भगवान मुनिसुव्रतनाथ के पास दीक्षित हो गया और तपस्या द्वारा कर्मो का क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया। राजा दक्ष की रानी इला से ऐलेय नामक पुत्र हुआ। उसके वाद मनोहरी नामक पुत्री हुई। जव पुत्री यौवन को प्राप्त हुई तो उसका सौन्दर्य और भी निखर आया। दक्ष अपनी पुत्री के ऊपर ही मोहित हो गया। एक दिन उसने राज्य-सभा मे उपस्थित प्रजाजनो से पूछा—'यदि राज्य मे अश्व, गज, स्त्री आदि कोई वस्तु अनर्घ्य हो और वह प्रजा के योग्य न हो तो राजा उसका अधिकारी हो सकता है या नही ?' प्रजाजनो ने उत्तर दिया—'देव ! राजा अवश्य ही ऐसी वस्तु का अधिकारी है।' राजा बोला—'मै आप लोगो की सम्मति के अनुसार ही करूँगा।'

हरिवंश की परम्परा मे वसु

इस प्रकार प्रजाजनो को भ्रमित कर दक्ष ने अपनी पुत्री मनोहरी के साथ विवाह कर लिया। इस अनैतिक कृत्य से रुष्ट होकर रानी इला अपने पुत्र और अनेक सामन्तो के साथ चली गई और इलावर्धन नाम का नगर वसाकर रहने लगी। ऐलेय को वहाँ का राजा वनाया। इलावर्धन नगर अग देश मे था। वाद मे ऐलेय ने ताम्रलिप्ति नगर वसाया। फिर वह दिग्विजय करता हुआ नर्मदा तट पर आया। वहाँ उसने माहिष्मती नामक नगर वसाया और वही अपनी राजधानी वना कर राज्य करने लगा।

ऐलेय के वाद उसका पुत्र कुणिम राजगद्दी पर वैठा। उसने विदर्भ देश मे वरदा नदी के तट पर कुण्डिन नामक एक सुन्दर नगर वसाया। कुणिम के पश्चात् उसका पुत्र पुलोम राज्य का अधिकारी हुआ। उसने अपने नाम पर पुलोम नगर वसाया। पुलोम के वाद उसके दो पुत्र पौलोम और चरम राजा हुए। उन्होने रेवा नदी के तट पर इन्द्रपुर नगर वसाया तथा चरम ने जयन्ती और वनवास्य नामक दो नगर वसाये। पौलोम के महीदत्त और चरम के सजय नामक पुत्र हुआ। महीदत्त ने कल्पपुर वसाया। उसके दो पुत्र हुए—अरिष्टनेमि और मत्स्य। मत्स्य दिग्विजय करता हुआ भद्रपुर और हस्तिनापुर को जीतकर हस्तिनापुर को अपनी राजधानी बनाकर रहने लगा। उसके अयोधन आदि सौ प्रतापी पुत्र हुए। फिर अयोधन राजा वना। उसके मूल, मूल के शाल, शाल के सूर्य नामक पुत्र हुआ। सूर्य ने शुभ्रपुर नगर वसाया। सूर्य के अमर नामक पुत्र हुआ। उसने वज्र नामक नगर वसाया। अमर के देवदत्त, देवदत्त के हरिषेण, हरिषेण के नभसेन, नभसेन के शङ्ख, शङ्ख के भद्र और भद्र के अभिचन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अभिचन्द्र ने विन्ध्याचल के ऊपर चेदिराष्ट्र की स्थापना की तथा शुक्तिमती नदी के किनारे शुक्तिमती नामक नगरी वसाई। अभिचन्द्र का विवाह उग्रवश की राजकन्या वसुमती से हुआ। उससे वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

हम वसु-नारद और पर्वत के उपाख्यान द्वारा यह वतावेंगे कि किस प्रकार पर्वत ने 'अजैर्यष्टव्य' इसका अर्थ 'वकरो के द्वारा यज्ञ करना चाहिये' किया, जवकि नारद इसका अर्थ यह वताता था कि अज अर्थात् जो पैदा न हो सके ऐसे धान्य से यज्ञ करना चाहिए और इन दोनो के विवाद का फैसला राजा वसु ने पर्वत के पक्ष मे दिया, जिससे ससार मे यज्ञो मे पशुओ का होम होने लगा। इससे पहले हम यहाँ सक्षेप मे वैदिक साहित्य के आधार पर यह बताना आवश्यक समझते हैं कि प्राचीन काल

प्राचीन काल में यज्ञों का रूप

मे यज्ञो का क्या रूप था। इस विवरण से यह भी ज्ञात हो सकेगा कि यज्ञो के रूप का किस प्रकार क्रमिक विकास हुआ।

प्राचीन काल मे—सभवत. उस काल मे जब वैदिक आर्य भारत मे आये थे उससे पूर्व काल मे—भारत मे ज्ञान यज्ञ का प्रचार था। इस बात का समर्थन वेदो से भी होता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद मे इसके समर्थक अनेक मत्र आये है।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन् ॥
तेहनाकं महिमान· स चन्त यत्रपूर्वे साध्या सन्ति देवा ॥
—ऋग्वेद म० १ सू० १६४/५०, अथर्ववेद का० ७ सू० ५/१

अर्थात् पूर्व समय मे देवो ने ज्ञान से यज्ञ किया क्योकि प्राचीन समय का यही धर्म था। उस ज्ञान-यज्ञ की महिमा स्वर्ग मे जहां पहले साधारण देव रहते थे पहुंची।

अथर्ववेद मे आगे लिखा है—यह ज्ञान यज्ञ यहां (भारत मे) इतना उन्नत हुआ कि वह देवताओ का अधिपति बन गया। इसके पश्चात् यहां—

यत पुरुषेण हविषा यज्ञ देवा अतन्वत।
अस्तिनु तस्मादो जीयो यद् विहव्येने जिरे ॥ ४ ॥

—जब यहां देवो ने हवि रूप द्रव्य यज्ञ फैलाया तो भी यहां ज्ञान यज्ञ ही मुख्य था। परन्तु हवि यज्ञ के अर्थ मूर्ख देवो ने कुछ और ही समझ लिये। इसलिये—

मुग्धा देवा उत शुनाय जन्तोत गोरेङ्गै पुरुधायजन्त।
य इम यज्ञ मनसाचिकेत प्राणो वोचस्तमिहेह ब्रव. ॥ ५ ॥

—उन्होने पशुओ से यज्ञ करना आरम्भ किया। यही तक नही, अपितु गौ के अगो से भी यज्ञ करने लगे।

यजुर्वेद अ० ३१ म० १४ और १५ तथा उसका महीधर भाष्य भी इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है—

'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा ॥'

इस मत्र का भाष्य करते हुए भाष्यकार श्री महीधर लिखते है—

'यज्ञेन मानसेन सकल्पेन यज्ञेन यज्ञं यज्ञस्वरूप प्रजापतिमयजन्त।'

अर्थात् देवो ने मानस सकल्प रूप यज्ञ से यज्ञस्वरूप प्रजापति की पूजा की।

'त यज्ञं र्बाहिषि प्रौक्षन्पुरुष जातमग्रत ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ यजु० अ० ३१ म० ६ ॥

इसका महीधर भाष्य—यज्ञ यज्ञ साधनभूत त पुरुष बर्हिषि मानसे यज्ञे (प्रौक्षत्) प्रौक्षितवन्त। तेन पुरुषरूपेण यज्ञेन मानस याग निष्पादितवन्त के ते देवा·, ये साध्या सृष्टि साधन योग्या प्रजापति प्रभृतय। ये च तदनुकूला ऋषय·।

अर्थात् यज्ञ साधनभूत पुरुष रूपी यज्ञ से देवो ने मानस यज्ञ निष्पन्न किया। वे देव प्रजापति आदि तथा उनके अनुकूल ऋषि आदि थे।

गीता मे भी ज्ञान योग की प्रशसा करते हुए कहा है कि ज्ञान योग से सम्पूर्ण कर्मो का विनाश हो जाता है और ज्ञानयोग के समान अन्य कोई योग नही है।

ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥ ४ । ३७
नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विते ॥ ४ । ३८

उपर्युक्त विवरण पढकर यह निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक आर्यों से पहले भारत मे ज्ञान यज्ञ का प्रचार था। वैदिक आर्यों ने यहां आने पर द्रव्य यज्ञ फैलाया। अपने प्रारम्भिक काल मे यह द्रव्य यज्ञ हिंसा रहित था। धीरे-धीरे हवि का अर्थ बदल कर उन्होने पशुओ से यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। फिर तो यज्ञो मे हिंसा का विस्तार बाध तोडकर बढता ही गया और एक समय ऐसा भी आया, जब गोमेध, अश्वमेध आदि से बढकर नरमेध

भी होने लगे।

यजुर्वेद अ० ३१ और मत्र ६,१४ तथा १५ तथा उसके भाष्य से एक बात पर विशेष रूप से प्रकाश पडता है कि मानस यज्ञ के प्रस्तोता प्रजापति तथा उनके अनुकूल चलने वाले अर्थात् उनके अनुयायी ऋषि थे। तथा देव अर्थात् ऋषि उस मानस यज्ञ से प्रजापति की पूजा करते थे। ये प्रजापति आद्यतीर्थंकर ऋषभदेव से अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति नही थे। आचार्य समन्तभद्र ने स्वयम्भू स्तोत्र मे ऋषभदेव का एक नाम प्रजापति भी बतलाया है—'प्रजापतिर्य प्रथमं जिजीविषु शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजा।

मूर्ख देवो ने हविरूप यज्ञ का अर्थ न समझकर यज्ञो मे हिंसा का जो विधान किया, उसका भी इतिहास मिलता है। इस सम्बन्ध मे हिन्दू पुराणो जैसे मत्स्य पुराण (मन्वन्तरानुकल्प-देवर्षि-सवाद नामक अध्याय १४६) तथा महाभारत (शान्ति पर्व-अध्याय ३३७ तथा अश्वमेध पर्व अध्याय ९१) तथा जैन शास्त्रो—जैसे हरिवश पुराण-सर्ग १७, पद्मचरित पर्व ११, उत्तर पुराण पर्व ६७, भाव प्राभृत ४५, त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित पर्व ७, सर्ग २७, वसुदेव हिण्डी प्रथम खण्ड पृ० १८९-१९१ तथा द्वितीय खण्ड पृ० ३५७ आदि मे पाय समान विवरण उपलब्ध होता है। यदि अन्तर भी है तो साधारण सा ही। जिस प्रकार जैन शास्त्रो ने वसु आदि सम्बन्धी उपाख्यान मे थोडा सा अन्तर है, इसी प्रकार हिन्दू पुराणो के उपाख्याना मे साधारण सा अन्तर है। किन्तु हमे यहाँ अन्तर की चर्चा नही करनी है, बल्कि समानता की चर्चा करनी है। अनेकता मे एकता का अनुसधान करना ही हमारा लक्ष्य है।

जैन शास्त्रो का कथानक इस प्रकार है—

राजा अभिचन्द्र की राजधानी मे क्षीरकदम्ब नाम का एक विद्वान् रहता था। उसकी स्त्री का नाम स्वस्ति मती और पुत्र का नाम पर्वत था। क्षीरकदम्ब के पास राजा अभिचन्द्र का पुत्र वसु, नारद और पर्वत पढते थे। एक दिन एक आकाशचारी निमित्तज्ञानी मुनि कहते जा रहे थे कि इन चार व्यक्तियो मे पाप के कारण दो तो नरक मे जायेंगे और दो ऊर्ध्वगति प्राप्त करेंगे। ये वचन सुनकर उपाध्याय क्षीरकदम्ब को बडी चिन्ता हुई। वे समझ गये कि इन तीनो शिष्यों मे वसु और पर्वत ये दोनो अवश्य अधोगति को जायेंगे और नारद उच्च गति प्राप्त करेगा।

एक वर्ष बाद शिष्यो का शिक्षण समाप्त हुआ। तीनो ही शिष्य नाना विषयो के प्रकाण्ड विद्वान् हो गये। वसु तो राजमहलो मे चला गया। उसे यौवनसम्पन्न और योग्य जानकर उसके पिता अभिचन्द्र ने (कही-कही इनका नाम विश्वावसु भी आता है) उसका विवाह कर दिया और उसका राज्याभिषेक करके उन्होने दीक्षा लेली। वसु राजा हो गया। उसने अपना सिंहासन स्फटिक के स्तम्भो के ऊपर बनवाया। वह सिंहासन ऐसा प्रतीत होता था मानो वह आकाश मे अधर रक्खा हो। इससे जनता मे यह प्रसिद्ध हो गया कि राजा वसु के सत्य के प्रभाव से उसका सिंहासन आकाश मे अधर स्थित रहता है। इसी कारण उसका नाम उपरिचर वसु के रूप मे विख्यात हो गया।

नारद कुछ दिनो तक उपाध्याय के घर ही ठहरा रहा। एक दिन नारद और पर्वत दोनो समिधा और पुष्प लाने वन मे गये हुए थे। वहाँ उन्होने देखा कि कुछ मयूर नदी का जल पीकर गये हैं। उनका मार्ग देखकर नारद ने पर्वत से कहा 'वयस्य! ये जो मयूर गए है उन मयूरो मे एक तो मयूर है और सात मयूरी है। पर्वत बोला—'गलत बात है। मैं शर्त लगाता हूँ कि तुम्हारा अनुमान मिथ्या है।' आगे बढने पर मयूरो का झुण्ड मिला। पर्वत को यह देख कर बडा आश्चर्य हुआ कि नारद ने जो कहा था, वह सत्य निकला। वे लोग कुछ दूर ही गये होगे कि नारद बोला—'मित्र! यहाँ से अभी एक हथिनी गई है, वह बाईं आँख से अन्धी है। पर्वत हँस कर बोला—'तुम्हारा एक अनुमान घुणाक्षर न्याय से सत्य निकल गया तो तुम समझते हो तुम्हारे सारे अनुमान सत्य होगे।' पर्वत यो कहकर नारद की बात को ईर्ष्यावश मिथ्या सिद्ध करने के लिए उसी मार्ग का अनुसरण करता हुआ आगे बढा तो उसे एक हथिनी वृक्ष की शीतल छाया मे बैठी हुई दिखाई पडी। उसे देखकर पर्वत को विश्वास करना पडा कि नारद ने जो कहा था वह सत्य है।

इन बातो से पर्वत को बडा दु ख हुआ और वह वापिस आने पर अपनी माता से सम्पूर्ण घटना सुना कर बोला—'पिता जी नारद को जो विद्याये सिखाते हैं मुझे नही बताते।' ब्राह्मणी ने उपाध्याय के आने पर पुत्र द्वारा कही हुई सारी बाते सुन कर उनसे यही शिकायत की। सुनकर उपाध्याय बोले—'देवी ! मैं तो सबको एक सी शिक्षा देता हूँ। किन्तु सबकी बुद्धि भिन्न-भिन्न होती है। नारद कुशाग्र बुद्धि है किन्तु तुम्हारा पुत्र सदा से ही मन्द बुद्धि है। तुम व्यर्थ ही नारद से ईर्ष्या न करो।' यो कहकर उन्होने नारद को बुलवाया और उससे पूछा—'वत्स ! आज तुम्हारा पर्वत से वन मे क्या विवाद हो गया था ?' नारद विनयपूर्वक बोला—'गुरुदेव ! मेरा वयस्य पर्वत से विवाद तो कुछ नही हुआ। हाँ, मैं पर्वत से वन मे विनोद-वार्ता करता हुआ जा रहा था। उस समय जल पीकर मोरो का झुण्ड लौट रहा था। उस झुण्ड मे जो मयूर था, वह पानी ने पूँछ के चन्द्रक भीगकर भारी न हो जायँ, इससे पीछे की ओर पैर करके और मुह आगे की ओर करके लौटा था तथा मयूरियॉ जल से भीग जाने के कारण अपने पख फटकार कर जा रही थी। यह देखकर मैंने अनुमान लगाया कि इनमे एक मयूर होगा तथा शेप सात मयूरी। यही बात मैंने अपने वयस्य पर्वत से कही थी। आगे चलने पर मैने देखा कि चलते समय हस्तिनी के पैर उसी के मूत्र से भीगे है इससे मैने जाना कि यह हस्तिनी होगी। उसके दाई ओर के वृक्ष और लताएँ टूटी हुई थी। इससे मैं समझ गया कि वह बाई आँख से अधी है। उस पर बैठी हुई स्त्री मार्ग की क्लान्ति के कारण उतर कर शीतल छाया मे नदी के किनारे लेटी थी। उसके उदर के स्पर्श से भूमि पर जो चिन्ह बन गये थे, उससे मैंने अनुमान लगाया कि हथिनी पर सवार स्त्री थी और वह गर्भिणी है। उसकी साडी का एक खण्ड किसी झाडी मे उलझा रह गया था। इसे देखकर मैने जाना कि वह श्वेत साडी पहने थी। यह बात अनुमान से मैंने पर्वत से कही थी।

उपाध्याय और ब्राह्मणी दोनो नारद की बाते ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। यह सुनकर उपाध्याय बोले-देवी ! इसमे मेरा क्या अपराध है। मैंने दोनो को समान भाव से अध्ययन कराया है।' सब बाते सुनकर ब्राह्मणी नारद से बहुत प्रसन्न हुई।

तब उपाध्याय ने निमित्त ज्ञानी मुनि की कही हुई बात ब्राह्मणी को बताई और दोनो शिष्यो के भावो की परीक्षा करने का निश्चय किया। उपाध्याय ने आटे के दो बकरे बनाकर नारद और पर्वत को सोपते हुए कहा कि ऐसे एकात स्थान मे जाकर जहाँ कोई देखता न हो चन्दन और माला आदि से इसकी पूजा करना और इसे काटकर (कही-कही कान काटकर) शीघ्र ले आओ। पर्वत एक वन मे पहुँचा और एकान्त देखकर वह बकरे को अथवा बकरे के कानो को काटकर वापिस पिता के पास आ गया और अपने पिता से बोला—'तात ! आपने जैसा आदेश दिया था, मैंने वैसा ही किया है।' उधर नारद सारे दिन वन मे पर्वत पर घूमता फिरा, किन्तु उसे कोई ऐसा स्थान नही मिला जहाँ कोई देख न रहा हो। वह सध्या समय घर लौटा और बडा म्लान मुख होकर बोला—'गुरुदेव ! मुझे कोई ऐसा स्थान नही मिल सका, जहाँ मुझे कोई देख नहो रहा हो। देवता, सिद्ध भगवान, केवली और स्वय मेरी अन्तरात्मा मेरी हर गति बिधि को देख रहे है। दूसरी बात यह है कि शास्त्रो मे नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारो निक्षेपो मे से किसी के द्वारा अभिहित पदार्थो मे हिंसा अथवा पापकारी कार्य करने का निषेध है। इसलिए मैं आटे के इस बकरे के प्रति हिंसा रूप कार्य नही कर सका।'

नारद की बात सुनकर उपाध्याय अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने नारद की प्रशसा करते हुए कहा—'हे पुत्र ! तुमने बहुत विवेकपूर्ण कार्य किया है। फिर वे पर्वत से कहने लगे—'पर्वत ! तूने बडा अविवेकपूर्ण कार्य किया है। तुझे कार्य-अकार्य का भी ज्ञान नही है। तू बिलकुल निर्बुद्धि है।

उपाध्याय को निश्चय हो गया कि पर्वत अवश्य ही नरकगामी है और नारद उर्ध्व गति प्राप्त करेगा। उन्होने पर्वत को बहुत कुछ उपदेश दिया, किन्तु ऊसर भूमि मे बीज बोने के समान सब व्यर्थ रहा।

कुछ दिनो पश्चात् नारद अपने नगर को चला गया। उपाध्याय क्षीरकदम्ब ने प्रव्रज्या लेली। उनके स्थान पर पर्वत गुरु-पद पर आसीन हो गया और वह गुरुकुल का सचालन करने लगा।

बहुत दिन बाद नारद अपने वयस्य पर्वत से मिल और गुरुआणी की पाद वन्दना करने के लिए आया। उस समय पर्वत शिष्यो से घिरा हुआ बैठा था और वह शिष्यो को पाठ पढा रहा था। नारद ने पर्वत को अभिवादन

किया, पर्वत ने भी प्रत्यभिवादन करके नारद की अभ्यर्थना की। नारद ने गुरुआणी की पाद-वन्दना की और बैठ गया। पर्वत उस समय 'अजैर्यष्टव्य' इस वेद-वाक्य की व्याख्या कर रहा था। वह इसका अर्थ इस प्रकार कर रहा था 'इस मत्र मे अज शब्द पशु परक है। इसलिए स्वर्ग के इच्छुक द्विजो को बकरे मे यज्ञ करना चाहिए।' नारद ने इस अर्थ पर आपत्ति करते हुए कहा—'वयस्य पर्वत ! तुम यह निन्दनीय व्याख्या क्यो कर रहे हो ? हम दोनो वर्षो तक एक उपाध्याय से पढे है। तुम्हे यह सम्प्रदाय कहाँ से प्राप्त हुआ है। एक ही गुरु के शिष्यो मे सम्प्रदाय-भेद नही होता। क्या तुम्हे स्मरण नही है, गुरु जी ने यहाँ अज शब्द का यह अर्थ बताया था कि जिसमे अकुर उत्पन्न होने की शक्ति नष्ट हो गई हो, ऐसा पुराना धान्य अज कहलाता है। ऐसे धान्य से यज्ञ करना चाहिए।' किन्तु पर्वत अपने दुराग्रह का त्याग नही कर सका। बल्कि आवेश मे आकर कहने लगा—'नारद ! यदि इस विषय मे मै पराजित हो जाऊँ तो अपनी जिव्हा का छेद करवा लूँगा। चलो, कल इसका निर्णय राजा वसु से कराते है। वह भी हमारा सहाध्यायी रह चुका है।'

नारद तो अपने स्थान पर चला गया। पर्वत अपनी माता के निकट पहुँचा और उसने सारा वृत्तान्त सुना दिया। यह सुनकर माता बडी दुखी हुई। वह कहने लगी—'मूर्ख ! यह तूने क्या किया ! नारद का कथन सत्य है। तेरे पिता ने जो अर्थ बताया था, नारद वही कह रहा है। तेरा कहना मिथ्या है।' प्रात काल होने पर वह राजा वसु के घर गई। वसु ने गुरुआणी की वन्दना की, उच्च आसन दिया और आने का कारण पूछा। स्वस्तिमती ने वसु को सारा वृत्तान्त सुनाकर उसे धरोहर रक्खी हुई गुरु-दक्षिणा का स्मरण दिलाया और याचना की—'पुत्र ! यद्यपि तू तत्त्व और अतत्त्व को भली भाँति जानता है, किन्तु तुझे पर्वत के पक्ष का समर्थन करना है और नारद के पक्ष को दूषित ठहराना है।' गुरु-दक्षिणा का स्मरण दिलाया था, अत वसु ने गुरुआणी की बात स्वीकार करली। स्वस्तिमती भी निश्चिन्त होकर घर वापिस आगई।

प्रात काल राजसभा लगी हुई थी। वसु सिंहासन पर आसीन था, सामन्त गण यथास्थान बैठे हुए थे। तभी अनेक शिष्यो से परिवृत उपाध्याय पर्वत और सर्व शास्त्रो मे पारङ्गत नारद ने राज-सभा मे प्रवेश किया। उपरिचर वसु को आशीर्वाद देकर नारद और पर्वत अपने पक्षधरो और सहायको के साथ निश्चित स्थान पर बैठ गये। उन दोनो विद्वानो का शास्त्रार्थ सुनने के कुतूहलवश अनेक ब्राह्मण विद्वान और वेदपाठी द्विजगण भी सभा मे पधारे थे। जब सब यथास्थान बैठ गए, तब ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध जनो ने राजा वसु से निवेदन किया—

राजन् ! ये नारद और पर्वत विद्वान् वेद के किसी विषय मे विसवाद होने से आपके पास आये है। आप स्वय विद्वान् हैं, न्यायासन पर विराजमान है। आपकी अध्यक्षता मे इन विद्वानो के आगे ये दोनो अपने-अपने पक्ष उपस्थित करें और सत्यासत्य एव जय-पराजय का निर्णय आप करें, हमारी यह प्रार्थना है।

वृद्धजनो की प्रार्थना स्वीकार कर राजा वसु ने पर्वत को पूर्व पक्ष उपस्थित करने की घोषणा की। पर्वत ने अत्यन्त गर्व के साथ अपना पक्ष उपस्थित करते हुए कहा—'अजैर्यष्टव्य स्वर्ग कामै ' इस वेद मत्र मे अज शब्द पशु परक है। अज का प्रसिद्ध अर्थ बकरा होता है। अत इस मत्र का अर्थ 'स्वर्ग के इच्छुक द्विजो को बकरे से यज्ञ करना चाहिए' है। घात करते समय पशुओ को दु ख होगा, यह आशका करना ही व्यर्थ है क्यो कि मत्रो के प्रभाव से वध्य पशु को वध होने पर स्वर्ग के सुख प्राप्त होते हैं।'

इस पक्ष का निराकरण करने के लिए नारद उठा। वह कहने लगा—'सज्जनो ! पर्वत ने जो पक्ष रक्खा है, वह नितान्त दूषित है। वेदो मे शब्दार्थ की व्याख्या अपने अभिप्राय के अनुसार नही होती, गुरु आम्नाय से चली आई व्याख्या ही मान्य होती है। अध्ययन के समान अर्थ-ज्ञान भी गुरु-परम्परा की अपेक्षा रखता है। हमारे पूज्य गुरुदेव ने हम तीनो शिष्यो-वसु, पर्वत और मुझको एक ही अर्थ बताया था, तब विभिन्न शिष्यो का सम्प्रदाय भिन्न कैसे हो सकता है। यहाँ 'अजैर्यष्टव्य' इस मत्र मे अज शब्द ऐसे धान्य का वाचक है, जिसमे उगने की शक्ति नष्ट हो गई हो ऐसे धान्यो से यज्ञ करना चाहिए।

तब शिष्टजनो ने राजा वसु से निवेदन किया—'राजन् ! आपने गुरु-मुख से जो अर्थ सुना हो, वह अर्थ प्रगट कर इस विवाद का निर्णय कीजिए।'

यद्यपि वसु को गुरु-वचनो का अच्छी तरह स्मरण था और वह जानता था कि नारद का पक्ष सत्य है, किन्तु मोहवश वह इस प्रकार कहने लगा—'सभाजनो ! नारद ने जो कहा है, वह बहुत युक्तियुक्त है किन्तु पर्वत ने जो कहा है , वह उपाध्याय द्वारा कहा गया है ।

इतना कहते ही वसु का स्फटिकासन पृथ्वी मे धस गया और पाताल मे जा गिरा । वसु की तत्काल मृत्यु हो गई और वह नरक मे उत्पन्न हुआ । असत्यवादी वसु को सब लोगो ने निन्दा की, पर्वत को नगर से अपमानित करके निकाल दिया तथा यथार्थवादी नारद को ब्रह्म रथ पर आरुढ करके उसे नगर में निकाला और सार्वजनिक सम्मान किया । वसु और पर्वत को असत्य का फल तत्काल मिल गया ।

मत्स्य पुराण में यज्ञो के विकास का इतिहास—हिन्दू धर्म मे मान्य 'मत्स्य पुराण' मे इस सम्बन्ध मे जो कथा दी हुई है, उससे वसु के चरित्र, यज्ञो के प्रारम्भिक रूप और परिवर्तित रूप पर पर्याप्त प्रकाश पडता है । कथा इस प्रकार है—

'त्रेतायुग के प्रारम्भ मे इन्द्र ने विश्व-युग नामक यज्ञ किया। वहुत से महर्षि उसमे आये । किन्तु जव उन्होने यज्ञ मे पशु-बध होते देखा तो उन्होने उसका घोर विरोध किया । उन्होने स्पष्ट कहा—'नाय धर्मो ह्यधर्मोऽय, न हिंसा धर्म उच्यते ।' अर्थात् यह धर्म नही है, यह तो वास्तव मे अधर्म है । हिंसा धर्म नही कहलाता । उन्होने यह भी कहा कि पूर्वकाल मे यज्ञ पुराने धानो से किया जाता रहा है । मनु ने भी ऐसा ही विधान किया है । किन्तु इन्द्र नही माना । इस पर एक विवाद उठ खडा हुआ । अन्त मे इस विवाद का निपटारा कराने के लिए वे चेदि नरेश वसु के पास पहुँचे । उसने विना सोचे विचारे कह दिया कि यज्ञ स्थावर और जगम दोनो प्रकार के प्राणियो से हो सकता है । इस पर ऋषियो ने वसु को शाप दे दिया ।

महाभारत मे वसु का चरित्र—राजा वसु घोर तपस्या मे लीन थे । इन्द्र को शका हुई कि यदि यह इसी प्रकार तपस्या करता रहा तो यह एक दिन मेरा इन्द्र पद ले लेगा । यह सोच कर इन्द्र उसे तपस्या से विरत करने के लिये वसु के पास आया और उसे चेदि विषय का राज्य दे दिया तथा उसे स्फटिकमय गगनचारी विमान दिया[1] ।

वसु उस गगनचारी विमान मे आकाश मे विहार करने लगा । इस कारण लोक मे वह उपरिचर वसु के नाम से विख्यात होगया । एक बार वसु ने अश्वमेघ यज्ञ किया । उस यज्ञ मे पशु-वध नही किया गया । बल्कि वन मे उत्पन्न होने वाले फलमूलादि का ही हविष्य दिया गया । इससे देवाधिदेव भगवान उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने यज्ञ मे प्रगट होकर वसु को साक्षात् दर्शन दिये तथा अपने लिये अर्पित हविष्य ग्रहण किया[2] ।

एक बार यज्ञ मे दिये जाने वाले हविष्य के सम्बन्ध मे देवताओ और ऋषियो मे विवाद उत्पन्न हो गया । देवगण ऋषियो से कहने लगे—'अजर्यष्टव्यम्' इस श्रुतिवाक्य मे अज का अर्थ बकरा है । इसका आशय यह है कि बकरो द्वारा यज्ञ करना चाहिए ।' किन्तु इसका विरोध करते हुए ऋषि बोले—'देवगण ! वैदिक श्रुति का अर्थ यह नही है । इसका अर्थ तो 'वीजो द्वारा यज्ञ करना चाहिये' यह है । अज का अर्थ यहाँ वकरा नही, किन्तु वीज हैं । अत बकरे का वध करना उचित नही है । इस सत्य युग मे पशु-वध कैसे किया जा सकता है ।'

जिस समय देवताओ और ऋषियो मे यह विवाद चल रहा था, तभी आकाश मे विचरण करते हुए राजा वसु उस स्थान पर पहुँच गये । उनका सहसा आगमन देखकर वे ऋषि देवताओ से बोले—'देवताओ ! ये राजा वसु हम लोगो के सशय को दूर कर देंगे । ये स्वय यज्ञ करने वाले है, सर्वभूतहित-निरत है । ये शास्त्र के विरुद्ध वचन नही कहेंगे ।'

दोनो ने राजा वसु से अपने पक्ष कह दिये । तब वसु ने देवताओ के पक्ष का समर्थन करते हुए कहा—'अज का अर्थ बकरा है । अत बकरे के द्वारा ही यज्ञ करना उचित है ।'

---

१ महाभारत, आदिपर्व, अध्याय ६३, श्लोक १-१७

२ महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ३३६, श्लोक १-१३

इतना सुनते ही ऋषि क्रुद्ध होकर कहने लगे—'राजन् ! तुमने यह जानते हुए भी कि यहाँ अज का अर्थ बकरा नही , अन्न है, तुमने देवताओ के पक्ष का समर्थन किया है। अत तुम आकाश मे नीचे गिर जाओ। आज से आकाश मे विचरण करने की तुम्हारी शक्ति नष्ट होजाय। हमारे शाप से तुम पृथ्वी को भेद करके पाताल मे प्रवेश करोगे। राजन् ! यदि तुमने वेद और सूत्रो के विरुद्ध वचन बोले हो तो हमारा शाप तुम पर लगेगा। यदि हमने विरुद्ध वचन बोले हो तो हमारा पतन हो।'

ऋषियो के इस प्रकार कहते ही उपरिचर वसु उसी समय आकाश से नीचे आगिरे और भूमि के विवर मे प्रविष्ट होगये।[1]

---

१ महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ३३७, श्लोक १-१७

चतुर्विंशतितम परिच्छेद

भगवान नमिनाथ

पूर्व भव

भरत क्षेत्र के वत्स देश मे कौशाम्बी नगरी का राजा पार्थिव था। वह इक्ष्वाकु वशी था। उसके शौर्य की गाथाये सारे देश मे विख्यात थी। शत्रुदल उसके नाम से ही कापता था। उसकी महारानी सुन्दरी से सिद्धार्थ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। एक दिन मनोहर उद्यान मे परमावधिज्ञान के धारक मुनिराज मुनिवर पधारे। राजा उनके दर्शनो के लिये गया और उनसे धर्म का स्वरूप पूछा। मुनिराज ने धर्म का यथार्थ स्वरूप बतलाया। उसे सुनकर राजा को ससार असार लगने लगा। वह विचार करने लगा—ससार मे प्राणी मरण रूपी मूलधन लेकर मृत्यु का कर्जदार होरहा है और प्रत्येक जन्म मे उसका यह कर्ज निरन्तर बढता जारहा, है जिसके कारण वह नाना प्रकार के कष्ट भोग रहा है। जबतक यह प्राणी रत्नत्रय रूपी धन का उपार्जन कर मृत्यु रूपी साहूकार को व्याज सहित ऋण नही चुकाता तब तक इसके दु खो का अन्त कैसे होसकता है। यह विचार करके उसने अपने पुत्र को राज्य सोपकर मुनिराज मुनिवर से प्रव्रज्या ग्रहण करली। सिद्धार्थ न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा।

एक दिन राजा सिद्धार्थ ने अपने पिता पार्थिव मुनिराज के समाधिमरण का समाचार सुना। इस समाचार से उसके मन मे भारी निर्वेद होगया। उस समय मनोहर उद्यान मे महाबल नामक केवली भगवान विराजमान थे। उनका उपदेश सुनकर राजा ने अपने पुत्र श्रीदत्त को राज्य-भार देकर केवली भगवान से दिगम्बर मुनि की दीक्षा लेली। परिणाम विशुद्धि के कारण उसे तत्काल क्षायिक सम्यग्दर्शन होगया। उसने ग्यारह अगो का अध्ययन करके सोलह कारण भावनाओ का निरन्तर चिन्तन किया। फलत उसे तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया। अन्त मे समाधिमरण करके अपराजित नामक अनुत्तर विमान मे अतिशय ऋद्धि का धारक अहमिन्द्र हुआ।

गर्भ कल्याणक—वङ्ग देश मे मिथिला नगरी थी। वहाँ के शासक इक्ष्वाकुवशी काश्यप गोत्री, महाराज विजय थे। उनकी महारानी का नाम वप्पिला था। जब उक्त अहमिन्द्र की आयु मे छह मास शेष रह गये तबसे देवो ने इन्द्र की आज्ञा से महाराज विजय के महलो मे रत्नवर्षा प्रारम्भ कर दी। जब अहमिन्द्र की आयु पूर्ण हुई उस दिन अर्थात् आश्विन कृष्णा द्वितीया के दिन अश्विनी नक्षत्र मे रात्रि के पिछले पहर मे सुख निद्रा मे सोई हुई महारानी को तीर्थ कर प्रभु के गर्भावतरण के सूचक सोलह शुभ स्वप्न दिखाई दिये। उसी समय उन्होने मुख मे प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा। तभी अहमिन्द्र के जीव ने महारानी के गर्भ मे अवतार लिया।

स्वप्नो के देखने के पश्चात् महारानी की निद्रा भग होगई। वे आवश्यक कृत्यो से निवृत्त होकर मगल वस्त्राभूषण धारण करके महाराज के निकट पहुँची और देशावधि ज्ञान के धारक महाराज से देखे हुए स्वप्नो का वर्णन करके उनका फल पूछा। राजा ने विस्तार से स्वप्नो का फल बताकर कहा—देवी! तुम्हारे गर्भ मे तीर्थकर प्रभु ने अवतार लिया है। उसी समय इन्द्रो और देवो ने आकर तीर्थकर प्रभु का गर्भकल्याणक महोत्सव किया।

जन्म कल्याणक—वप्पिला महादेवी ने आषाढ कृष्णा दशमी के दिन स्वाति नक्षत्र के योग मे समस्त लोक के स्वामी महाप्रतापी पुत्र को जन्म दिया। देवो और इन्द्रो ने उसी समय आकर भगवान का जन्म कल्याणक

महोत्सव किया। बालक को सुमेरु पर्वत पर लेजाकर उनका क्षीरसागर के जल से जन्माभिषक किया। सौधर्मेन्द्र ने बालक का नाम नमिनाथ रखा।

भगवान नमिनाथ की आयु दस हजार वर्ष की थी। उनका शरीर पन्द्रह धनुष ऊँचा था। शरीर की कान्ति स्वर्ण के समान थी। उनका चिन्ह नील कमल था। उनकी आयु के ढाई हजार वर्ष कुमार काल मे व्यतीत हुए। उसके पश्चात् पिता ने उनका राज्याभिषेक कर दिया। उन्होने ढाई हजार वर्ष पर्यन्त राज्य शासन किया।

एक दिन आकाश मेघाच्छन्न था। शीतल पवन वह रही थी। मौसम सुहावना था। ऐसे समय भगवान नमिनाथ हाथी पर आरूढ होकर वन विहार के लिये निकले। वहाँ आकाश मार्ग से दा देव आये और भगवान को नमस्कार करके हाथ जोडकर अपना परिचय देते हुए अपने आने का प्रयोजन कहने लगे—

दीक्षा कल्याणक देव! हम दानो पूर्व जन्म मे धातकोखण्ड द्वाप मे रहते थे। वहा हमने तपस्या को। फलत हम सौधर्म स्वर्ग मे उत्पन्न हुए। उत्पन्न होने के दूसरे दिन पूर्व विदेह क्षेत्र मे स्थित वत्सकावती देश की सुसीमा नगरी मे भगवान अपराजित तीर्थंकर के केवलज्ञान कल्याणक की पूजा के लिये अन्य देवो के साथ हम दोनो भी गये। वहाँ समवसरण मे प्रश्न हुआ कि इस समय भरत क्षेत्र मे भी क्या कोई तीर्थकर है? तव सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान अपराजित ने उत्तर दिया—'वग देश की मिथिला नगरी मे अपराजित स्वर्ग से अवतरित होकर नमिनाथ हुए है। उन्हे जल्दी ही केवलज्ञान उत्पन्न होगा और वे धर्म तीर्थ की स्थापना करेगे। इस समय ग्रहस्थ अवस्था मे राज्य लक्ष्मी का भोग कर रहे है।' भगवान के वचन सुनकर कुतूहलवश हम लोग आपके दर्शनो के लिये आये है।'

देवो की वात सुनकर भगवान नगर मे लौट आये। उन्होने अवधिज्ञान से जाना कि अपराजित तीर्थकर और मेरा जीव पिछले भव मे अपराजित विमान मे देव थे। उन्होने मनुष्य भव पाकर जन्म-मरण की श्रृखला का नाश करने का उद्योग किया, जिसमे वे सफल हुए और उन्हे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। किन्तु मैं अनादिकाल के सस्कारवश अभी तक राग-द्वेष के इस प्रपच मे पडा हुआ हूँ। मेरा कर्तव्य इस प्रपच को समाप्त करना है। मुझे अव उसी का उद्योग करके शुद्ध आत्म स्वरूप की उपलब्धि करना है।

भगवान के मन से राग की वासना क्षण मात्र मे तिरोहित हो गई और भोगो के प्रति उनके मन मे निर्वेद भर उठा। भगवान की वैराग्य-भावना होते ही सारस्वत आदि लौकान्तिक देवो ने आकर भगवान की पूजा और भगवान के विचारो की सराहना की तथा वे अपने स्थान को लौट गये। भगवान ने अपने पुत्र सुप्रभ को राज्य-भार सौंप दिया। तभी देवो और इन्द्रो ने आकर भगवान का दीक्षाभिषेक किया। फिर भगवान उत्तर कुरू नामक पालकी मे आरूढ होकर चैत्रवन मे पहुँचे। वहाँ उन्होंने वेला का नियम लेकर आषाढ कृष्णा दशमी के दिन अश्विनी नक्षत्र मे सायकाल के समय सम्पूर्ण आरम्भ और परिग्रह का त्याग करके एक हजार राजाओ के साथ जैनेन्द्री दीक्षा लेली। दीक्षा लेते ही उन्हे मन पर्यय नामक ज्ञान प्राप्त हो गया।

केवलज्ञान कल्याणक—भगवान पारणा के लिए वीरपुर नामक नगर मे पधारे। वहाँ राजा दत्त ने परमान्न का आहार देकर अक्षय पुण्य का लाभ लिया।

भगवान ग्रामानुग्राम विहार करते हुए नाना प्रकार के कठोर तप करते रहे। इस प्रकार नौ वर्ष तक उन्होने आत्म-साधना मे विताये। तब वे विहार करते हुए अपने दीक्षा-वन मे पहुँचे। वहाँ वे एक वकुल वृक्ष के नीचे वेला का नियम लेकर ध्यानारूढ हो गये। यही पर इन्हे मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के दिन सायकाल के समय समस्त लोकालोक के सम्पूर्ण द्रव्यो और पर्यायो का युगपत् ज्ञान करने वाला निर्मल केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इन्द्रो और देवो ने उसी समय आकर केवलज्ञान कल्याणक का उत्सव किया। इन्द्र की आज्ञा से कुवेर ने दिव्य समवसरण की रचना की, जिसमे गन्धकुटी मे सिंहासन पर विराजमान होकर भगवान ने जगत् का कल्याण करने वाला उपदेश देकर धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन किया। भगवान का उपदेश सुनकर अनेक मनुष्यो ने सकल सयम धारण किया, अनेक मनुष्यो और तिर्यंचो ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये, अनेक मनुष्यो, तिर्यंचो और देवो ने सम्यग्दर्शन धारण किया।

भगवान का चतुर्विध संघ—भगवान के चतुर्विध संघ में सुप्रभार्य आदि सत्रह गणधर थे। ४५० मुनि समस्त पूर्वो के ज्ञाता, १२६०० व्रती शिक्षक मुनि, १६०० अवधिज्ञानी, १६०० केवलज्ञानी, १५०० विक्रियाऋद्धिधारी, १२५० मन पर्ययज्ञानी और १००० वादो मुनि थे। इस प्रकार समस्त मुनियो की सख्या २०००० थी। मगिनो आदि ४५००० आर्यिकाये थी। १००००० श्रावक और ३००००० श्राविकायें थी। उनके, भक्तो मे सख्यात तिर्यंच और असख्यात देव-देवियाँ थी।

भगवान ने सम्पूर्ण आर्यक्षेत्र में विहार करके समीचीन धर्म का उपदेश दिया। जव उनकी आयु मे एक माह शेप रह गया, तव उन्होनें विहार वन्द कर दिया और सम्मेद शिखर पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होने एक हजार मुनियो के साथ प्रतिमायोग धारण कर लिया और वैशाख कृष्णा चतुर्दशी के दिन रात्रि के

निर्वाण कल्याणक— अन्तिम प्रहर मे अश्विनी नक्षत्र मे अघातिया कर्मो का क्षय करके अक्षय पद प्राप्त किया। वे सिद्ध परमेष्ठी वन गये। देवो और इन्द्रो ने आकर नमिनाथ स्वामी का निर्वाण कल्याणक महोत्सव किया।

यक्ष-यक्षिणी—भगवान नमिनाथ के सेवक यक्ष का नाम भ्रकुटि और यक्षिणी का नाम चामुण्डी था।

जयसेन चक्रवर्ती—

ऐरावत क्षेत्र के श्रीपुर नगर मे वसुन्धर नामक राजा शासन करता था। वह वड़ा प्रतापी और न्यायवान था। दैव-दुर्विपाक से उसकी स्त्री पद्मावती का असमय निधन हो गया। वह अपनी इस रानी से वड़ा प्रेम करता था। अत. उसके मरण से राजा को वहुत दु.ख हुआ। उसका मन राज्य और परिवार से

पूर्व भव विरक्त हो गया। तभी मनोहर उद्यान मे वरचर्म नामक केवली भगवान पधारे। राजा उनके दर्शनो के लिए गया और उनका उपदेश सुनकर उसनें मुनि-दीक्षा लेने का निश्चय किया। उसनें अपने पुत्र विनयन्धर को राज्य-भार सौप कर केवली भगवान के पाद मूल मे दैगम्बरी दीक्षा लेली। वह घोर तप करने लगा। आयु के अन्तिम समय मे समाधि द्वारा मरण किया। मरकर वह महाशुक्र स्वर्ग मे महर्द्धिक देव हुआ। वहाँ उसकी सोलह सागर की आयु थी। वह महा विभूतिसम्पन्न था। दिव्य भोगो को भोगते हुए उसने यह काल आनन्दपूर्वक विताया।

ग्यारहवां चक्रवर्ती—वत्स देश की कौशाम्वी नगरी का अधिपति इक्ष्वाकुवशी राजा विजय प्रभावशाली नरेश था। उसकी पट्टमहिषी प्रभाकरी की कुक्षि से एक कान्तिमान पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम जयसेन रक्खा गया। उसकी जन्म-लगन और लक्षणो को देखकर ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की कि यह बालक सम्पूर्ण भरतक्षेत्र का अधिपति चक्रवर्ती बनेगा।

जयसेन बचपन से ही तेजस्वी था। उसकी लीलायें और चेष्टायें असाधारण थी। वचपन से ही शासन करने की उसकी प्रकृति थी। बड़े-बडे अभिमानी और उद्दण्ड व्यक्ति भी उसकी भगिमा देखते ही विनीत बन जाते थे। ऐसा था उसका प्रभाव।

जयसेन की आयु तीन हजार वर्ष की थी। उसकी अवगाहना साठ हाथ की थी। उसके शरीर की कान्ति तप्त स्वर्ण के समान थी। कुमार काल बीतने पर पिता ने उसे राज्य का भार सौप दिया। कुछ दिनो के वाद उसके शस्त्रागार मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। अब महाराज जयसेन ने दिग्विजय करने का विचार किया। वह चारो दिशाओ मे गया। उसकी शक्ति और तेज के आगे सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के राजाओ का दर्प चूर-चूर हो गया और सबनें उसकी आधीनता स्वीकार की। जब जयसेन सम्पूर्ण भरतक्षेत्र की विजय करके अपनी नगरी कौशाम्बी वापिस लौटा

तो समस्त राजाओ और प्रजा ने मिलकर चक्रवर्ती पद पर उसे अभिषिक्त किया। वह ग्यारहवाँ चक्रवर्ती कहलाया। वह चौदह रत्न और नौ निधियो का स्वामी था। दस प्रकार के भोग उसे प्राप्त थे। वह इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान नमिनाथ के तीर्थ मे हुआ था।

उसे भोग भोगते हुए जब बहुत समय बीत गया, तब एक दिन उसने देखा कि आकाश से उल्कापात हुआ है। उसे देखते ही उसके मन मे चिन्तन की एक कोमल धारा प्रवाहित होने लगी—यह प्रकाश-पुँज ऊपर आकाश मे स्थित था, किन्तु वह नीचे आ गिरा और अन्धकार मे विलीन हो गया। 'मेरा तेज भी बहुत ऊँचा है' इस प्रकार का अभिमान जो मनुष्य करता है, उसका तेज भी इस उल्का-पुँज के समान अधोगति को प्राप्त होता है।

यह विचार कर चक्रवर्ती ने साम्राज्य त्यागकर दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। उसने युवराज को राज्य देना चाहा, किन्तु उसने राज्य न लेकर दीक्षा लेने की इच्छा की। तब उसने क्रम से अन्य पुत्रो को यह भार स्वीकार करने के लिए कहा, किन्तु सबका एक ही उत्तर था—'यदि आप राज्य-भोग मे सुख मानते है तो आप ही इसका त्याग क्यो कर रहे है। आप हमारे शुभाकाँक्षी है। आप तपस्या करके सुख प्राप्त करना चाहते है तो हमे भी उसी मार्ग पर चलने की अनुमति दीजिए।'

पुत्रो का यह उत्तर सुनकर चक्रवर्ती निरुत्तर हो गया। अन्त मे उसने छोटे पुत्र को राज्य-भार स्वीकार करने के लिए सहमत कर लिया और उसका राज्याभिषेक करके जयसेन अपने पुत्रो और अनेक राजाओ के साथ वरदत्त नामक केवली भगवान के पास समस्त बाह्य और आभ्यन्तर आरम्भ और परिग्रह का त्याग करके प्रव्रजित हो गये। उन्होने विविध तप करना प्रारम्भ किया। अल्प समय मे ही उन्हे ऋद्धियाँ प्राप्त हो गयी। अन्त मे प्रायोपगमन सन्यास मरण करके सम्मेदशिखर के चारण नामक शिखर से जयन्त नामक विमान मे अहमिन्द्र हुए।

पंचविंशतितम परिच्छेद

भगवान नेमिनाथ

पश्चिम विदेह क्षेत्र मे सीतोदा नदी के उत्तर तट पर सुगन्धिला नामक देश था। उस देश मे सिंहपुर नगर का स्वामी अर्हद्दास था। उसकी महारानी का नाम जिनदत्ता था। राज-दम्पति आनन्दपूर्वक राज्य-सुखो का भोग कर रहे थे। एक बार अष्टान्हिका पर्व मे भगवान जिनेन्द्र की महा पूजा कराई। पूजा के पश्चात्

पूर्व भव

महारानी ने मन मे यह इच्छा की कि मैं कुलगौरव पुत्र प्राप्त करूँ। उसी रात्रि को महारानी ने स्वप्न मे सिंह, हाथी, सूर्य, चन्द्रमा और लक्ष्मी का अभिषेक देखा। स्वप्न देखने के बाद ही महारानी के गर्भ मे पुण्यात्मा जीव अवतीर्ण हुआ। नौ माह व्यतीत होने पर रानी ने अति बलवान पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के जन्म के बाद उसके पुण्य प्रताप से राजा अर्हद्दास को कोई शत्रु पराजित नही कर सका। इसलिये पुत्र का नाम सोच समझकर अपराजित रक्खा गया।

बालक अत्यन्त रूपवान और बलवान था। गुणो के साथ बढता हुआ वह यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। एक दिन राजोद्यान मे विमलवाहन तीर्थंकर पधारे। राजा परिजनो और पुरजनो के साथ उनके दर्शनो के लिये गया। राजा ने वहाँ जाकर भगवान के दर्शन करके तीन प्रदक्षिणाएं दी, अष्ट द्रव्य से पूजन की और यथास्थान बैठकर उनका दिव्य उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसके मन मे भोगो से निर्वेद हो गया। वहाँ से लौट कर उसने पुत्र अपराजित का राज्याभिषेक करके पाच सौ राजाओ के साथ सयम ग्रहण कर लिया।

अपराजित ने भी अणुव्रत धारण कर लिये। यद्यपि वह राज्य-शासन करता था, किन्तु उसका मन धर्म मे लगा हुआ था। एक दिन उसे समाचार मिला कि भगवान विमलवाहन और पिता मुनि अर्हद्दास गन्धमादन पर्वत मे मुक्त होगये। समाचार सुनते ही उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं भगवान विमलवाहन के दर्शन नही कर लूंगा, तब तक भोजन नही करूँगा। मन्त्रियो और परिवार के लोगो ने समझाया कि भगवान मुक्त होचुके है, उनके दर्शन किस प्रकार सभव है, ऐसी असभव प्रतिज्ञा करने से क्या लाभ है। किन्तु राजा ने किसी की बात नही सुनी, वह अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहा। इस प्रकार उसे निराहार रहते हुए आठ दिन बीत गये। तब सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने भगवान विमलनाथ का दिव्य रूप बनाकर राजा को दर्शन कराये। राजा ने गद्‌गद होकर भक्तिभाव से उनका पूजन किया, तब भोजन किया।

एक दिन राजा अपराजित अष्टान्हिका पर्व मे पूजन करने के पश्चात् बैठा हुआ था। तभी आकाश से दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आकाश मार्ग से विहार करते हुए वहाँ पधारे। राजा ने उठकर बडी विनयपूर्वक उनकी पाद-वन्दना की, उनका धर्मोपदेश सुना। तदनन्तर राजा हाथ जोडकर बोला—'पूज्य ! मैंने आपको कही पहले भी देखा है।'

ज्येष्ठ मुनि कहने लगे—'राजन् ! तुम यथार्थ कह रहे हो। तुमने हम दोनो को देखा है। किन्तु इस जन्म मे नही, पूर्व जन्म मे देखा है।' राजा को यह सुनकर बडा विस्मय हुआ। वह पूछने लगा—'प्रभु ! कहाँ देखा है, यह

जानने की मुझे जिज्ञासा है।' तब मुनि कहने लगे—'पुष्करार्ध द्वीप के पश्चिम सुमेरु की पश्चिम दिशा मे महानदी के उत्तर तट पर गन्धिल नामक एक देश है। उसके विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी मे सूर्यप्रभ नगर का स्वामी राजा सूर्यप्रभ राज्य करता था। उसकी रानी का नाम धारिणी था। उसके तीन पुत्र थे—चिन्तागति, मनोगति और चपलगति। उसी विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी मे अरिन्दमपुर नगर का शासक अरिंजय था। अजितसेना उसकी रानी और प्रीतिमती पुत्री थी। पुत्री ने प्रतिज्ञा की थी कि जो विद्याधर मेरु पर्वत की तीन प्रदक्षिणा देने मे मुझे जीत लेगा उसे ही मैं वरण करूँगी। इस प्रतियोगिता मे चिन्तागति ने उसे जीत लिया। किन्तु उसे जीतकर चिन्तागति कहने लगा—'तू मेरे लघु भ्राता को स्वीकार करले।' किन्तु प्रीतिमती ने उत्तर दिया—'मेरी प्रतिज्ञा है कि जो मुझे जीत लेगा, उसे ही वरण करूँगी। तुमने मुझे जीता है। तुम्हे छोडकर मैं अन्य को किस प्रकार वरण कर सकती हूँ।' चिन्तागति बोला—'तूने उसे प्राप्त करने की इच्छा से ही उसके साथ गति-स्पर्द्धा की थी, अत तू मेरे लिये त्याज्य है।'

चिन्तागति का उत्तर सुनकर प्रीतिमती अत्यन्त निराश हो गई। उसे ससार से ही विरक्ति होगई और उसने विवृता नामक अर्जिका के पास जाकर आर्यिका दीक्षा लेली। राजकुमारी के इस साहस से प्ररित होकर उन तीनो भाइयो ने भी दमवर नामक मुनिराज के पास जाकर मुनि-दीक्षा लेली। वे तप करने लगे और मरकर चौथे स्वर्ग मे सामानिक जाति के देव हुए। आयु पूर्ण होने पर दोनो छोटे भाई पूर्व विदह क्षेत्र के पुष्कलावती देश मे विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी मे गगनवल्लभ नगर के राजा गगनचन्द्र और रानी गगनसुन्दरी के हम दोनो अमितगति तथा अमित-तेज नामक पुत्र हुए। हम तीनो प्रकार की विद्याओ से युक्त थे। एक दिन हम दोनो पुण्डरीकिणी नगरी मे स्वयप्रभ तीर्थंकर के दर्शनो के लिये गये। हमने भगवान से अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त पूछे तथा यह भी पूछा कि हमारा बडा भाई इस समय कहाँ उत्पन्न हुआ है। भगवान ने बताया कि वह इस समय सिंहपुर नगर मे अपराजित नाम का राजा है। हम लोगो ने भगवान के समीप ही दीक्षा ले ली। हम लोग पूर्व जन्म के स्नेहवश तुम्हारे पास आये है। तेरी आयु केवल एक माह की शेष है। इसलिये तू आत्म कल्याण कर।

राजा ने मुनिराज से अपने जन्म का वृत्तान्त सुनकर उनकी वन्दना की और निवेदन किया—'भगवन्! यद्यपि आप वीतराग निर्ग्रन्थ है। फिर भी आपने पूर्व जन्म के स्नेहवश मेर बडा उपकार किया है।

मुनि-युगल वहाँ से विहार कर गया। राजा ने अपने पुत्र प्रीतिंकर को राज्यारूढ करके सन्यास ले लिया और प्रायोपगमन सन्यास धारण कर लिया। आयु पूर्ण होने पर वह सोलहवे स्वर्ग के सातकर नामक विमान मे देव हुआ। बाईस सागर की उसकी आयु थी।

कुरुजागल देश मे हस्तिनापुर के राजा श्रीचन्द्र की श्रीमती रानी थी। वह देव आयु पूर्ण होने पर रानी के गर्भ मे आया और सुप्रतिष्ठ नामक पुत्र हुआ। कुमार अवस्था पूर्ण होने पर उसका विवाह सुनन्दा के साथ हो गया। सुयोग्य जानकर पिता ने उसे राज्य सोप दिया और सुमन्दर नामक मुनि के पास दीक्षा लेली। सुप्रतिष्ठ कुशलता पूर्वक राज्य शासन करने लगा। एक दिन सुप्रतिष्ठ ने यशोधर नामक मुनिराज को नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। आहार निरन्तराय समाप्त हुआ। देवो ने पचाश्चर्य किये। राजा ने मुनिराज से अणुव्रत धारण किये और सम्य-ग्दर्शन की विशुद्धि की। एक दिन राजा राजमहलो के ऊपर बैठा हुआ प्रकृति का सौन्दर्य निहार रहा था। निकट ही रानियाँ बैठी हुई थी। तभी आकाश मे उल्कापात हुआ। उसे देखकर राजा के मन मे भावनाऐं उद्वेलित होने लगी और उसे ससार की क्षणभगुरता का विचार हो आया। उसे राज्य, भोग सब कुछ निस्सार जचने लगे। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुदृष्टि का राज्याभिषेक कर दिया और सुमन्दर नामक जिनेन्द्र के निकट मुनि दीक्षा लेली। उसने ग्यारह अगो का अभ्यास किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओ का निरन्तर चिन्तन किया, जिससे सातिशय पुण्य वाले तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध कर लिया। आयु का अन्त निकट जानकर एक माह का सन्यास ले लिया, जिससे वह जयन्त नामक अनुत्तर विमान मे महर्द्धिक अहमिन्द्र हुआ। उसकी आयु तेतीस सागर की थी।

हरिवंश की उत्पत्ति—

कौशाम्बी नगरी का राजा सुमुख प्रतापी राजा था। उस नगर मे व्यापारिक कारणो से वीरक नामक एक सेठ अपनी स्त्री वनमाला के साथ आकर रहने लगा। एक दिन राजा सुमुख वन-विहार के लिये गया। उसकी दृष्टि वन मे भ्रमण करती हुई सुन्दरी वनमाला पर पडी। उसे देखते ही वह वनमाला पर आसक्त हो गया। उसने किसी उपाय से वीरक सेठ को व्यापार के बहाने विदेश भेज दिया और प्रच्छन्न रूप मे वनमाला को अपने महलो मे बुलाकर उसके साथ भोग करने लगा। बारह वर्ष पश्चात् सेठ वीरक विदेश से लौटा। जब उसे अपनी स्त्री का पापाचार ज्ञात हुआ तो वह शोकाकुल होकर पागलो के समान इधर उधर फिरने लगा। फिर एक दिन विरक्त होकर प्रोष्ठिल मुनि के पास जाकर मुनि बन गया और मरकर सौधर्म स्वर्ग मे चित्रागद नामक देव हुआ।

हरिवंश की स्थापना

कुछ काल पश्चात् सुमुख और वनमाला ने धर्मसिंह नामक मुनिराज को आहार दिया। उस समय दोनो के मन मे अपने कृत्य के प्रति भारी आत्मग्लानि और पश्चाताप के भाव थे। दूसरे दिन बिजली गिरने से दोनो की मृत्यु हो गई। सुमुख का जीव भोगपुर के राजा प्रभजन का पुत्र सिंहकेतु हुआ और वनमाला का जीव वस्वालय नगर के नरेश वज्रचाप की विद्युन्माला पुत्री हुई। विद्युन्माला का विवाह सिंहकेतु के साथ हो गया। एक दिन पति पत्नी वन विहार के लिए गए। उन्हे चित्रागददव ने देखा। देखते ही उसे पूर्व जन्म के वैर का स्मरण हो आया। उसने मन मे निश्चय कर लिया कि 'मै इन्हे मारूगा। यह विचार कर वह उन्हे उठाकर ले चला। मार्ग मे सूर्यप्रभ नामक एक देव ने उसका अभिप्राय जान लिया। सूर्यप्रभ पूर्व जन्म मे राजा सुमुख का प्रिय मित्र रघु था। उस देव ने चित्राङ्गद को समझाया-'भद्र ! इन दोनो का वध करने से तेरा क्या हित होगा। तू व्यर्थ ही पाप बन्ध क्यो करता है।' यह सुनकर चित्रागद को भी दया आ गयी और उन्हे छोडकर चला गया। तब सूर्यप्रभ देव ने दोनो को आश्वासन दिया और उन्हे ले जाकर चम्पापुर के वन मे छोड दिया। इसका कारण यह था कि वह भविष्य मे इनको मिलने वाले सुख को जानता था। दैवयोग से उसी समय चम्पापुर का राजा चन्द्रकीर्ति बिना पुत्र के मर गया था। राज्य-परम्परा अक्षुण्ण रखने के लिए मन्त्रियो ने विचार कर किसी योग्य पुरुष की तलाश करने के लिए एक समझदार हाथी को छोड दिया। वह हाथी घूमता हुआ वन मे पहुँचा और सिंहकेतु तथा विद्युन्माला को अपने कन्धे पर बैठाकर नगर मे पहुँचा। मन्त्रियो ने बडे आदर के साथ सिंहकेतु का अभिषेक किया और उसे राज सिंहासन पर बैठाया। तब मन्त्रियो ने उससे परिचय पूछा। उत्तर मे सिंहकेतु ने कहा—'मेरे पिता का नाम प्रभजन है और माता का नाम मृकण्डू है। कोई देव पत्नी सहित मुझे लाकर यहाँ वन मे छोड गया है।' उसका परिचय सुनकर लोग बडे प्रसन्न हुए और मृकण्डू का पुत्र होने के कारण उसका नाम मार्कण्डेय रख दिया। वह चिरकाल तक राज्य सुख का भोग करता रहा। ये दोनो भगवान शीतलनाथ के तीर्थ मे हुए।

इन दोनो के हरि नामक पुत्र हुआ। यौवन अवस्था को प्राप्त होने पर पिता ने उसे राज्य-भार सोप दिया। हरि बड़ा प्रतापी और वीर था। उसने बाहुबल द्वारा अनेक राजाओ को पराजित करके अपने राज्य का बहुत विस्तार किया। उसकी ख्याति सम्पूर्ण लोक मे फैल गई। इसी से 'हरिवश' की प्रसिद्धि हुई।

हरिवश की परम्परा

राजा हरि के महागिरि नामक पुत्र हुआ। महागिरि का हिमगरि, हिमगरि का वसुगिरि, वसुगिरि का गिरि हुआ। इस प्रकार इस वश मे अनेक राजा हुए। फिर सुमित्र हुए। सुमित्र के बीसवे तीर्थ कर मुनिसुव्रतनाथ हुए। मुनिसुव्रतनाथ के सुव्रत, सुव्रत के दक्ष, दक्ष के ऐलेय पुत्र हुआ। उसने इलावर्धन, ताम्रलिप्ति, माहिष्मती, नामक नगर बसाये। ऐलेय के कुणिम पुत्र हुआ। उसने कुण्डिन नगर बसाया। कुणिम के पुलोम पुत्र हुआ। उसने पुलोमपुर बसाया। पुलिम के पौलोम और चरम नामक पुत्र हुए। उन्होने रेवा के तट पर इन्द्रपुर नगर बसाया। चरम ने जयन्ती तथा वनवास्य नगरियाँ बसाई। पौलोम के महीदत्त और चरम के सजय पुत्र हुए। महीदत्त ने कल्पपुर बसाया। उसके अरिष्ट-

नेमि और मत्स्य नामक पुत्र हुए। मत्स्य हस्तिनापुर मे रहने लगा। मत्स्य के अयोधन, अयोधन के मूल, मूल के शाल, शाल के सूर्य नामक पुत्र हुआ। सूर्य ने शुभ्रपुर नगर वसाया। सूर्य के अमर पुत्र हुआ। उसने वज्र-पुर वसाया। अमर के देवदत्त, देवदत्त के हरिषेण, हरिषेण के नभसेन, नभसेन के शङ्ख, शङ्ख के भद्र और भद्र के अभिचन्द्र नामक पुत्र हुआ। अभिचन्द्र ने विन्ध्याचल के ऊपर चेदि राष्ट्र की स्थापना की और शुक्तिमती नदी के किनारे शुक्तिमती नगरी वसाई। अभिचन्द्र से वसु हुआ। वसु का पुत्र वृहद्ध्वज हुआ जो मथुरा मे जाकर रहने लगा। वृहद्ध्वज के सुवाहु, सुवाहु के दीर्घवाहु, दीर्घवाहु के वज्रवाहु, वज्रवाहु के लब्धाभिमान, लब्धाभिमान के भानु, भानु के ययु, ययु के सुभानु और सुभानु के भीम नामक पुत्र हुआ। इस प्रकार अनेक राजा होते रहे। फिर इसी वश मे इक्कीसवे तीर्थ कर भगवान नमिनाथ हुए। आगे चलकर इसी वश मे यदु नामक राजा हुआ। यह वडा प्रतापी था। इससे 'यदुवश' चला। राजा यदु के नरपति, नरपति के शूर और सुवीर नामक पुत्र हुए। वीर अथवा सुवीर मथुरा मे शासन करने लगा और शूर ने कुशद्य देश मे शौर्यपुर नगर वसाया और वही शासन करने लगा। शूर के अन्धकवृष्णि और सुवीर के भोजकवृष्णि पुत्र हुए। अन्धकवृष्णि के १० पुत्र हुए—१ समुद्रविजय २ अक्षोभ्य, ३ स्तिमित सागर, ४ हिमवान, ५ विजय, ६ अचल, ७ धारण, ८ पूरण, ६ अभिचन्द्र, और १० वसुदेव, इनके अतिरिक्त दो पुत्रियाँ हुई—कुन्ती और माद्री। भोजक वृष्णि के उग्रसेन, महासेन और देवसेन नामक पुत्र हुए।

वसु की वंश-परम्परा मे जरासध

राजा वसु का एक पुत्र सुवसु था जो कुञ्जरावर्त नगर (नागपुर) मे रहने लगा था। सुवसु के वृहद्रथ पुत्र हुआ। वह मागधेशपुर मे जाकर राज्य करने लगा। वृहद्रथ के दृढरथ दृढरथ के नरवर, नरवर के दृढरथ, दृढरथ के सुखरथ, सुखरथ, के दीपन, दीपन के सागरसेन, सागरसेन के सुमित्र, सुमित्र के वप्रथु, वप्रथु के विन्दुसार, विन्दुसार के देवगर्भ, देवगर्भ के शतधनु पुत्र हुआ। इसी प्रकार इस वश मे अनेक राजा हुए। फिर इस वश मे निहतशत्रु हुआ। उसके शतपति, शतपति के वृहद्रथ और वृहद्रथ के जरासन्ध पुत्र हुआ। वह राजगृह नगर का स्वामी था। वह अर्धचक्री था। उसने भरत क्षेत्र के तीन खण्डो पर विजय प्राप्त करके अर्धचक्री का विरुद पाया था। वह नौवाँ प्रतिनारायण था। कालिन्दसेना उसकी पटरानी थी। कालयवन आदि नीतिज्ञ पुत्र थे। अपराजित आदि अनेक वीर भाई थे।

जरासन्ध ने दक्षिण श्रेणी के समस्त विद्याधरो, उत्तरापथ और दक्षिणापथ के समस्त राजाओ, पूर्व पश्चिम समुद्र के तटवर्ती नरेशो और मध्य देश के सम्पूर्ण शत्रुओ को जीत लिया था।

महाराज समुद्र विजय का राज्याभिषेक—

एक वार शौर्यपुर के उद्यान मे सुप्रतिष्ठ नामक मुनिराज प्रतिमायोग से ध्यानारूढ थे। एक यक्ष ने उनके ऊपर भयानक उपसर्ग किये। किन्तु मुनिराज अपने ध्यान मे अचल रहे और उन भयानक उपसर्गो के कारण उनके मन की शान्ति और समता भाव तनिक भी भग नही हुए। वल्कि वे आत्मा मे स्थित रहकर सञ्चित कर्मो का शुक्ल ध्यान द्वारा क्षय करने लगे। वे श्रेणी आरोहण करके उस स्थिति को प्राप्त हो गये, जहाँ ध्यान, ध्याता, और ध्येय, चैतन्य भाव, चैतन्य कर्म और चैतन्य की क्रिया अभिन्न एकाकार हो जाती है। उसी समय उन्होने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन घातिया कर्मो का विनाश कर दिया। तभी उनकी आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान की अनन्त आभा से आलोकित हो उठी। तभी चारो जाति के इन्द्र और देव भगवान सुप्रतिष्ठ की वन्दना के लिए आये। महाराज अन्धकवृष्णि भी परिजन-पुरजनो के साथ भगवान के दर्शनो के लिये आये। आकर उन्होने भगवान की वन्दना और पूजा की और यथास्थान वैठ गये। तभी भगवान का लोक हितकारी उपदेश हुआ। उपदेश सुनकर अन्धकवृष्णि के मन मे सासारिक भोगो के प्रति सवेग उत्पन्न होगया। उन्होने शौर्यपुर के राज सिहासन पर कुमार समुद्रविजय का राज्याभिषेक करके उनका पट्टवन्ध किया और कुमार वसुदेव के सरक्षण का भार भी उन्हे सोप दिया। अन्धकवृष्णि ने भगवान सुप्रतिष्ठ के निकट जाकर सम्पूर्ण आरम्भ परिग्रह का त्याग करके मुनि दीक्षा अगीकार कर ली। उधर भोजक वृष्णि ने भी मथुरा मे मुनि व्रत धारण कर लिये। महाराज समुद्रविजय ने महारानी शिवादेवी को पट्टवन्ध करके पटरानी घोषित किया। महाराज समुद्रविजय ने यौवन प्राप्त होने पर अपने आठो अनुजो का सुन्दर राज कन्याओ के

साथ विवाह कर दिया । अक्षोभ्य का धृति के साथ, स्मिमित सागर का स्वयप्रभा के साथ, हिमवान का सुनीता के साथ, विजय का सिता के साथ, अचल का प्रियालापा के साथ, धारण का प्रभावती के साथ, पूरण का कालिंगी के साथ और अभिचन्द्र का सुप्रभा के साथ विवाह हो गया । सब भाई आनन्दपूर्वक रहने लगे । सभी भाइयो में परस्पर मे अत्यधिक स्नेह था । कुमार वसुदेव सभी के प्रिय और स्नेहभाजन थे ।

वसुदेव की कुमार- लीलाए—कुमार वसुदेव यौवन मे पदार्पण कर रहे थे । वे शौर्यपुर नगर मे देव कुमारो के समान इच्छानुसार क्रीडा करते थे । वे कामकुमार थे । रूप, लावण्य, सौभाग्य और चतुरता मे वे जन-जन के प्रिय थे । कभी वे लोकपालो का वेष रखकर नगर मे निकल जाते थे । उनका शरीर सूर्य के समान तेजस्वी और मुख चन्द्रमा के समान सौम्य था । उनके अनिन्द्य सौन्दर्य को देखने के लिए स्त्रियां घरो मे बाहर निकल आती थी और उन्हे देखकर काम विह्वल हो जाती थी । कुमार के रूप मे अद्भुत मोहिनी थी ।

एक दिन मात्सर्यवश कुछ वृद्धजन सघबद्ध होकर राज-परिषद मे पहुँचे और महाराज समुद्रविजय को नमस्कार करके निवेदन करने लगे—'प्रभो ! आपके राज्य मे सम्पूर्ण प्रजाजन आनन्दपूर्वक और निर्भय होकर रह रहे है । आपके पुण्य प्रभाव से यहा की भूमि शस्य श्यामला बन गई है । वणिक् वर्ग समृद्ध और सुसम्पन्न है । गाय-भैंस क्षीरवर्षी है । प्रजा के सभी वर्गों को सब प्रकार का आनन्द है, किन्तु थोडा-सा दु ख भी है । किन्तु उसे हम लोग प्रगट भी नही कर सकते ।

यह सुनकर महाराज समुद्रविजय प्रजाजनो से बोले—'भद्रजनो ! मेरे राज्य मे प्रजाजनो को कष्ट हो, यह मेरे लिये गौरव की बात नही है । आप लोग निर्भय होकर अपना कष्ट बताइये । मै उसे प्राणपण से भी दूर करूँगा ।

वृद्धजन महाराज से आश्वासन पाकर कहने लगे—'प्रभो ! हमारे अविनय को क्षमा करें । कुमार वसुदेव धीर-वीर, शील शिरोमणि और शुद्ध हृदय वाले है । किन्तु जब वे नगर मे निकलते हैं तो उनका रूप लावण्य देखकर नगर की कुल स्त्रियां रागान्ध होकर अपने तन बदन की सुधबुध भूल जाती है । वे सारा कार्य छोडकर घर से बाहर दौड पडती है । नगरवासियो का चित्त उद्भ्रान्त हो जाता है । हम लोगो ने अपनी मनोव्यथा निवेदन कर दी । अब जो करणीय हो, वह आप कीजिये ।

महाराज प्रजाजनो की बात सुनकर विचारमग्न हो गये । कुछ समय पश्चात् प्रजाजनो को आश्वासन देकर विदा किया । प्रजाजन भी सन्तुष्ट होकर अपने घरो को लौट गये । तभी कुमार वसुदेव नगर-भ्रमण के बाद लौटे । आकर उन्होने महाराज को प्रणाम किया । महाराज ने बडे प्रेमपूर्वक आलिंगन किया और बालक के समान उन्हे अपनी गोद मे बैठाकर मस्तक सूंघा और स्नेहसिक्त स्वर मे बोले—'कुमार ! तुम वन-भ्रमण से परिश्रान्त हो गये हो । देखो तो, तुम्हारा मुख कैसा मुरझा गया है । तुम्हे भ्रमण के चाव में अपने शरीर की भी सुध नही रहती । अब भविष्य मे तुम्हे स्नान और भोजन के समय का अतिक्रमण नही करना है । अब अन्त पुर के उद्यान मे ही तुम क्रीडा किया करो ।

इस प्रकार अपने प्रिय अनुज को समझाकर महाराज समुद्रविजय उनका हाथ पकड कर अपने प्रासाद मे ले गये । उन्होने वसुदेव के साथ ही स्नान और भोजन किया । उन्होंने इस प्रकार कौशल से व्यवस्था कर दी कि कुमार बाहर न जा पावे और कुमार को प्रतिबन्ध का अनुभव भी न हो । कुमार भी अन्त पुर के उद्यान में विविध क्रीडाये करने लगे ।

एक दिन एक कुब्जा दासी महारानी शिवादेवी के लिये विलेपन लिये जा रही थी कि कुमार ने विनोद मे उससे विलेपन छीन लिया । दासी रुष्ट होकर बोली—'कुमार ! तुम ऐसी ही हरकतो के कारण कारागार मे डाले गये हो ।' दासी की बात सुनकर कुमार सशंकित हो उठे और पूछने लगे—'कुब्जे ! तूने यह क्या कहा ? मुझे कैसा कारागार ?' तब दासी ने कुमार को सब सत्य बात सुना दी । सुनकर वे गम्भीर हो गये और सोचने लगे-निश्चय ही मेरे साथ धोका हुआ है । वे इस बात पर विचार करते रहे और अन्त मे एक निर्णय पर पहुँचने का उन्हें सन्तोष हुआ । वे चुपचाप राजप्रासाद और नगर को त्यागकर चल दिये एक लक्ष्यहीन दिशा की ओर । वे

अपने साथ एक विश्वस्त अनुचर को साथ ले गये और नगर के श्मसान मे जा पहुँचे और नौकर को एक स्थान पर वैठाकर उससे कहा—'मै मत्र सिद्ध करता हूँ। जव मैं आवाज दूँ, तभी तुम उत्तर देना।' इस प्रकार कहकर वे कुछ दूर चले गये। वहाँ एक चिता जल रही थी तथा एक शव पडा हुआ था। कुमार ने अपने आभूषण उस शव को पहना कर उसे जलती चिता मे रख दिया और जोर से कहा—'पिता के समान राजा और चुगली करने वाले नागरिक सुख से रहे। मैं तो अग्नि-प्रवेश करता हूँ।' इस प्रकार कहकर और दौडने का अभिनय करके, मानो वे अग्नि मे प्रवेश कर रहे हो, वे अन्तर्हित हो गये। अनुचर ने सुना तो वह दौडकर आया और चिता मे कुमार के दग्ध शव को देखकर वडी देर तक विलाप करता रहा। फिर वह अत्यन्त शोकाकुल होकर राजमहलो को वापिस लौट गया। वहाँ जाकर उसने सम्पूर्ण घटना महाराज को सुना दी। यह हृदय विदारक घटना सुनकर सारे राज कुल और नगरवासियो मे शोक छा गया। महाराज समुद्रविजय तत्काल वन्धु-वाधवो, नगरवासियो और राज्याधिकारियो को लेकर श्मसान पहुँचे। वहाँ शव की भस्म के साथ कुमार के आभूषणो को देखकर सवको निश्चय हो गया कि कुमार अवश्य ही अग्नि मे भस्म हो गये हैं। यह विश्वास होने पर सभी करुण विलाप करने लगे। राजा समुद्रविजय को घोर पश्चाताप हुआ और अपने प्रिय अनुज की मृत्यु से उन्हे हार्दिक दुःख हुआ। उन्होने शोक सन्तप्त हृदय से मरणोत्तर क्रियाये की और सव लोग नगर मे वापिस लौट आए।

कुमार वसुदेव निश्चिन्त मन से पश्चिम दिशा की ओर चल पडे। उन्होने एक ब्राह्मण कुमार का वेप धारण कर लिया। चलते-चलते वे विजयखेट नगर मे पहुँचे। उस नगर मे सुग्रीव नामक एक गन्धर्वाचार्य रहता था। उसकी दो पुत्रियाँ थी सोमा और विजयसेना। दोनो ही अपूर्व सुन्दरी थी। गन्धर्वाचार्य ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो गन्धर्व विद्या मे मेरी पुत्रियो को जीतेगा, वही इनका स्वामी होगा। किन्तु आज तक उन दोनो को कोई पराजित नही कर सका था। किन्तु वसुदेव ने उन्हे थोडे समय मे ही पराजित कर दिया। सुग्रीव ने दोनो पुत्रियो का विवाह, कुमार वसुदेव के साथ कर दिया। वे वही पर सुखपूर्वक रहने लगे। कुछ काल के पश्चात् विजयसेना ने पुत्र प्रसव किया, जिसका नाम अक्रूर रखा गया।

अनेक कन्याओ के साथ विवाह—

एक दिन कुमार गुप्त रूप से वहाँ से भी निकल गये। भ्रमण करते हुए वे एक अटवी मे पहुँचे। वहाँ एक सुन्दर सरोवर को देखकर वे उसमे वहुत देर तक जलक्रीडा करते रहे और हथेलियो से जल को वजाने लगे। उस आवाज से तट पर सोया हुआ एक हाथी जाग गया। वह क्रुद्ध होकर कुमार के ऊपर झपटा। कुमार वडी चपलता से उसके दातो को पकड कर उसके मस्तक पर आरूढ हो गये और मुष्टिका प्रहारो से उस गजेन्द्र को अपना वशवर्ती वना लिया। उसी समय दो विद्याधर कुमार आये और कुमार को हाथी के मस्तक से अपहरण करके विजयार्ध पर्वत के मध्य मे स्थित कुजरावर्त नगर मे ले गये और कुमार को उस नगर के वाह्य उद्यान मे छोड दिया। कुमार एक अशोक वृक्ष के नीचे सुखपूर्वक वैठ गये, तव उन दोनो विद्याधर कुमारो ने आकर उन्हे नमस्कार किया और निवेदन किया—'स्वामिन्! आप यहाँ विद्याधर नरेश अशनिवेग की आज्ञा से लाये गये है। आप उन्हे अपना श्वसुर समझे। मेरा नाम अर्चिमाली है और यह दूसरा वायुवेग है।' यो कहकर उनमे से एक तो नगर की ओर चला गया और दूसरा वही सुरक्षा के निमित्त रह गया। नगर मे जाकर उसने नरेश को यह शुभ सवाद सुनाया कि हाथी के मान का मर्दन करने वाला सुदर्शन कुमार लाया जा चुका है। सुनकर नरेश वहुत हर्पित हुआ और उसे पुरस्कृत करके नरेश ने मगलाचार पूर्वक कुमार वसुदेव का नगर प्रवेश कराया और शुभ मुहूर्त मे नरेश ने अपनी रूपवती कन्या श्यामा का विवाह कुमार के साथ कर दिया। निमित्तज्ञानियो ने भविष्यवाणी की थी कि जो व्यक्ति गजेन्द्र का मान मर्दन करेगा, वही राजपुत्री का पति वनेगा। इसीलिए नरेश ने दो युवको को गजेन्द्र के निकट पहरा देने के लिए नियुक्त कर दिया था। निमित्तज्ञानियो की भविष्यवाणी पूरी हुई। कुमार राजकन्या के साथ सुखपूर्वक भोग भोगते हुए कुछ काल पर्यन्त वही रहे और वहाँ रहकर गन्धर्वविद्या का अध्ययन किया।

एक दिन श्यामा का चचेरा भाई अगारक रात्रि के समय सोते हुए कुमार का अपहरण कर ले गया। वह आकाश मार्ग से जा रहा था। तभी श्यामा की नीद खुल गई। वह भी हाथो मे शस्त्रास्त्र लेकर विद्या-बल

से आकाश में पहुँची। वहाँ अंगारक और श्यामा का भयानक युद्ध हुआ। कुमार ने शत्रु की छाती पर मुष्टिका प्रहार किया जिससे वह व्याकुल होकर कुमार को छोडकर भाग खडा हुआ। कुमार चपानगरी के एक सरोवर मे गिरे। वहाँ से निकलकर नगर मे गये। वहाँ उन्हे ज्ञात हुआ कि इस नगर के कुवेर चारुदत्त की पुत्री गन्धर्वसेना के लिए आज गायन-वाद्य प्रतियोगिता होने वाली है। श्रेष्ठी-पुत्री ने नियम किया है कि जो मुझे गान-वाद्य विद्या मे पराजित कर देगा, वही मेरा पति होगा। इस समाचार को सुनकर कुमार भी प्रतियोगिता सभा मे पहुँचे और वीणावादन और गायन कला में कुमार ने उस मानवती का मान भग करके विजय प्राप्त की। श्रेष्ठी कन्या ने हर्ष से वरमाला उनके गले मे डालकर उनका वरण किया। श्रेष्ठी ने विधिपूर्वक दोनो का विवाह कर दिया। चिर-काल तक कुमार ने वहाँ रहकर आनन्दपूर्वक भोग भोगे।

एक दिन रात्रि मे एक वैताल कन्या ने आकर कुमार वसुदेव को जगाया और बलात् वह उन्हे श्मसान मे ले गई। वहाँ उसने नीलयशा नामक एक सुन्दरी कन्या को दिखाया और कहा कि यह कन्या आपके प्रेम में ग्रस्त है और आपसे विवाह की इच्छुक है। यह असित पर्वत नगर के राजा सिंहदष्ट्र की पुत्री है। कुमार ने उससे विवाह करने की स्वीकृति दे दी। तब विद्याधरियाँ कुमार को आकाशमार्ग से असित पर्वत नगर ले गई। वहाँ शुभ मुहूर्त मे कुमार के साथ नीलयशा का विवाह हो गया। कुमार वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार कुमार वसुदेव ने विभिन्न स्थानो पर अनेक कन्याओ के साथ विवाह किया। उनके रूप-गुण और वीरता पर मुग्ध होकर अनेक राजाओ ने उन्हे अपनी कन्यायें प्रदान की। उनके आकर्षक व्यक्तित्व पर मुग्ध होकर अनेक कन्याओ ने उन्हे स्वेच्छा से वरण किया। अनेक कन्याओ को विभिन्न प्रतियोगिताओ मे उन्होने जीता। गिरितट नगर वासी ब्राह्मण पुत्री सोमश्री, अचलगाम की श्रेष्ठी पुत्री वनमाला, वेदसामपुर की कपिला, शालगुहा नगर की पद्मावती, भद्रिलपुर की राजकुमारी चारुहासिनी, जयपुर की राजकन्या, इलावर्धन नगर की श्रेष्ठी-पुत्री रत्नवती तथा राजकुमारी सोमश्री, विद्याधर-कन्या मदनवेगा, वेगवती, गगनवल्लभपुर की राजकन्या वालचन्द्रा, श्रावस्ती की श्रेष्ठी-पुत्री बन्धुमती, और राजपुत्री प्रियगुसुन्दरी, विद्याधर पुत्री प्रभावती, कुण्डपुर की राजकुमारी, चम्पानगरी के मत्री की कन्या, म्लेच्छराज की कन्या जरा, अवन्तिसुन्दरी, शूरसेना, जीवद्यशा आदि अनेक कन्याओ के साथ कुमार वसुदेव का विवाह हुआ। तथा जरत्कुमार, पौण्ड्र आदि अनेक पुत्र हुए।

इस बीच मे राजगृह नरेश जरासन्ध को निमित्तज्ञानियो ने यह बताया कि जो पुरुष जुए मे एक करोड मुद्राय जीतकर वही सब बाट देगा, वह तुम्हे मारने वाले पुत्र को जन्म देगा। निमित्तज्ञानियो के वचनानुसार जरासन्ध ने ऐसे पुरुष की खोज करने के लिए चर नियुक्त कर दिए। एक बार दुर्घटनावश कुमार वसुदेव राजगृह नगर मे पहुँचे। वहाँ वे जुए मे एक करोड मुद्रायें जीत गये और उन्होने वे सब मुद्रायें वही बाट दी। चरो ने आकर कुमार को पकड लिया और उन्हे चमडे की एक भाथडी मे बन्द करके पर्वत के ऊपर से पटक दिया, जिससे वे मर जायें। किन्तु जब वे गिरे, तभी विद्याधरी वेगवती ने वेग से आकर उन्हे बीच मे ही थाम लिया। इस प्रकार वे बच गये।

रोहिणी की प्राप्ति—देशाटन करते हुए कुमार वसुदेव अरिष्टपुर नगर मे आये। वहाँ उन्होने राजपथो पर मनुष्यो की भारी भीड और कोलाहल को देखकर एक नागरिक से कुतूहलवश पूछा—'भद्र! यह मनुष्यो का कैसा समुदाय है? ये सब लोग कहाँ जा रहे है?' उस नागरिक ने ,उत्तर दिया—'आर्य! इस नगर के महाराज रुधिर की सुलक्षणा कन्या रोहिणी का स्वयवर है। यह मनुष्य-समुदाय वही पर जा रहा है।'

वसुदेव यह समाचार सुनकर कुतूहलवश स्वयवर देखने की इच्छा से स्वयवर मण्डप मे पहुँचे। वहाँ उन्होने देखा कि मण्डप मे जरासन्ध, समुद्रविजय आदि अनेक नरेश आये हुए है और मणिजटित महार्घ्य आसनो पर विराज-मान है। सबके मुखो पर दर्प और आशामिश्रित भाव है। कुमार ने उस समय पणव बाजा बजाने वाले का वेष धारण कर रखा था, जिससे उन्हे उनके बन्धुजन भी न पहचान सके। उनके हाथ मे भी पणव नामक वाद्य यन्त्र था तथा जहाँ पणव वाद्य बजाने वाले बैठे हुए थे, वे वही जाकर बैठ गये।

तभी रूप और शोभा की आगार, सौन्दर्य मे रति को लज्जित करने वाली राजकुमारी रोहिणी ने धाय के

साथ स्वयवर-मण्डप मे प्रवेश किया । तभी शखो और तूर्यो का मगल-निनाद हुआ । राजाओ ने कुमारी रोहिणी के अनिंद्य सौन्दर्य की प्रशसा भर सुनी थी । अब अनर्घ्य वस्त्रालकारो से सुसज्जित मूर्तिमती लक्ष्मी के समान रोहिणी की रूपछटा देखकर विस्मयविमुग्ध होकर देखने लगे । सबके मन मे उस लालित्य मूर्ति की प्राप्ति की आशा की किरण प्रस्फुटित हो रही थी ।

वाद्यो का तुमुल रव शान्त हुआ । धाय कुमारी रोहिणी को साथ मे लेकर यथाक्रम सब राजाओ का परिचय देने लगी—हे पुत्रि ! ये श्वेत छत्रधारी त्रिखण्डाधिपति महाराज जरासन्ध है, ये जरासन्ध के प्रतापी पुत्र है, ये मथुरा के तेजस्वी नरेश उग्रसेन है, ये शौर्यपुर के स्वामी महा बलवान समुद्रविजय है । यदि तेरी रुचि हो तो इनमे से किसी के गले मे वरमाला डाल दे । किन्तु धाय ने देखा कि इनमे से किसी के ऊपर कन्या का अनुराग प्रतीत नही होता, तब उसने आगे बढकर महाराजा पाण्डु, विदुर, दमघोष, दत्तवक्त्र, शल्य, शत्रुजय, चन्द्राभ, कालमुख, पौण्ड्र, मत्स्य, सजय, सोमदत्त, भूरिश्रवा, अशुमान, कपिल, पद्मरथ, सोमक, देवक, श्रीदेव आदि राजाओ के वश, शौर्य आदि गुणो का परिचय देते हुए कहा—हे सौम्य वदने ! इन नरेशो मे से जो तुम्हारे चित्त को हरण करने वाला हो, उसके सौभाग्य को प्रकाशित कर ।

किन्तु राजकुमारी ने उत्तर दिया —हे मात ! आपने उचित ही कहा है । किन्तु आपके द्वारा बताये हुए इन राजाओ मे से किसी के प्रति मेरा मन अनुरक्त नही है ।

तभी राजबाला के कर्णकुहरो मे पणव की मधुर ध्वनि पडी । कन्या ने मुडकर उस ओर देखा । तभी उसे राजलक्षणो से युक्त कुमार वसुदेव दृष्टिगोचर हुए । उन्हे देखते ही रोहिणी का सम्पूर्ण शरीर हर्ष से रोमांचित हो उठा । वह राजहसी के समान मन्थर गति मे आगे बढी और कुमार वसुदेव के गले मे वरमाला डाल दी । कामदेव और रति के समान इस सुदर्शन युगल को देखकर कुछ राजाओ ने हर्ष से कहा—जिस प्रकार रत्न और सुवर्ण का सयोग होता है, उसी प्रकार इन वर-वधू का सयोग हुआ है । इस रत्न पारखी कन्या को धन्य है ।

किन्तु कुछ राजा मात्सर्यवश कहने लगे—यह तो घोर अन्याय है । एक पणववादक को वर कर राजकन्या ने सम्पूर्ण नरेश मण्डल का अपमान किया है । इस अपमान का प्रतिकार होना ही चाहिए । यदि प्रतिकार नही किया गया तो इससे कुल मर्यादा भग हो जाएगी । यदि यह व्यक्ति कुलीन है तो अपना कुल बतावे, अन्यथा इसे यहाँ से निष्कापित करके यह कन्या किसी राजपुत्र को दे देनी चाहिए ।

राजाओ का यह अनर्गल प्रलाप सुनकर धीर वीर वसुदेव बोले—राजागण हमारे वचन सुने । स्वयवर मे आई हुई कन्या अपनी इच्छा के अनुरूप किसी का वरण करने के लिए स्वतत्र है । उसमे कुलीन-अकुलीन का कोई प्रश्न नही है । यदि कन्या ने मुझ अपरिचित का सौभाग्य प्रगट किया है तो इस विषय मे आप लोगो को कुछ नही कहना चाहिए । इतने पर भी पराक्रम के अहकारवश कोई शान्त नही होता है तो मैं कान तक खीचकर छोडे हुए बाणो से उसे शान्त कर दूँगा ।

इस दर्पयुक्त धमकी को सुनकर जरासन्ध कुपित होकर बोला—इस उद्दण्ड और वाचाल पुरुष को तथा पुत्र सहित राजा रुधिर को पकड लो । चक्रवर्ती की आज्ञा पाते ही मात्सर्यदग्ध राजा युद्ध के लिए उद्यत हो गये । कुछ राजा तटस्थ होकर अपनी सेना लेकर अलग जा खडे हुए । जो राजा रुधिर के पक्ष के थे, वे अपनी सेना लेकर वहाँ आ पहुँचे । राजा रुधिर का पुत्र स्वर्णनाभ रोहिणी को अपने रथ पर आरूढ कर खडा हो गया । वसुदेव अपने श्वसुर से बोले—'पूज्य ! मुझे अस्त्र शस्त्रो से भरा हुआ रथ दे दीजिये । ये दम्भी क्षत्रिय एक अज्ञात कुलशील व्यक्ति के बाणो की तीक्ष्णता का अनुभव करे ।' राजा रुधिर ने तत्काल अस्त्र-शस्त्रो से भरा हुआ तीव्रगामी अश्वो से युक्त महारथ मगवा दिया । तभी दधिमुख विद्याधर कुमार के पास आकर बोला—'आप मेरे रथ मे आरूढ होकर शत्रु दल का सहार कीजिये । मैं आपका सारथी बनूँगा । कुमार ने वैसा ही किया । राजा रुधिर की सेना कुमार के चारो ओर एकत्रित हो गई । उस सेना मे दो हजार रथ थे, छह हजार हाथी, चौदह हजार घोडे और एक लाख पदाति थे ।

प्रतिपक्ष की सेना का कोई पार नही था । दोनो सेनाओ ने आमने-सामने मोर्चा जमा लिया । शख, तुरही

आदि के तुमुलनाद के होते ही दोनो सेनाये एक दूसरी से जूझ पडी। मनुष्यो की लाशो से मैदान पट गया। घोडो और हाथियो की भयकर चीत्कारो से आकाश पट गया। वाणो की अजस्र वर्षा से सूर्य तक ढक गया। तलवार, चक्र, गदा, परशु और नाना अस्त्र-शस्त्रो के प्रहारो से रुधिर की नदो वहने लगी। कुमार वसुदेव के हस्त-लाघव और शस्त्र-सचालन की निपुणता ने शत्रु-पक्ष के महावीरो को हतप्रभ कर दिया। तव उन्होने मिलकर एक साथ वसुदेव पर आक्रमण किया। किन्तु कुमार ने वडी कुशलता से उनका सामना किया। कुछ न्यायप्रिय राजाओ ने कहा कि एक व्यक्ति के ऊपर अनेक वीरो का आक्रमण करना घोर अन्याय है। तव जरासन्ध ने आज्ञा दी कि अव एक-एक राजा इस युवक के साथ युद्ध करे। जरासन्ध का आदेश पाकर एक-एक राजा क्रम से कुमार के साथ युद्ध करने लगा। किन्तु कुमार के असह्य वाणो के प्रहार के आगे टिक नही सके।

तव राजा समुद्रविजय की वारी आई। वे रथ मे आरूढ थे। रथ वेग से वसुदेव की ओर वढा। वसुदेव ने अपने पूज्य अग्रज को देखकर सारथी दधिमुख से कहा—'दधिमुख! ये मेरे पिता के तुल्य है। इनकी सुरक्षा का ध्यान रखते हुए मुझे युद्ध करना है।' जव दोनो रथ आमने-सामने आगये तो उस युवक को देखकर समुद्रविजय सारथी से बोले—'भद्र! इस सौम्य युवक को देखकर मेरा मन स्नेहाकुल हो रहा है। मेरी दाहिनी आख और भुजा भी फडक रही है। इसका फल तो वन्धु-मिलन है। किन्तु युद्ध भूमि मे यह कैसे सभव हो सकता है?' सारथी वोला—'स्वामिन्! यह शत्रु अजेय है। आप इसे जीतकर यश के भागी वनेंगे। तव वन्धु-समागम भी होगा।

समुद्रविजय कुमार से वोले—'प्रिय! तुमने अव तक कौशल का प्रदर्शन किया है। अव भी वही कौशल दिखाना। ध्यान रहे, मैं समुद्रविजय हूँ।' कुमार वेष वदले हुए थे ही, आवाज भी वदल कर वोले—'तात! चिन्ता न करे। वही कौशल अव भी दिखाऊँगा। आप समुद्रविजय है तो मैं सग्रामविजय हूँ। पहले वाण आप चलावे।'

समुद्रविजय ने वाण सन्धान किया, किन्तु कुमार ने उसे मार्ग मे ही अपने वाण से काट दिया। समुद्रविजय ने जितने वाण चलाये, सवको कुमार ने काट दिया तव क्रोध मे भरकर समुद्रविजय ने दिव्यास्त्र चलाना प्रारम्भ किया। कुमार ने भी उनका उसी प्रकार उत्तर दिया। इतना ही नही, उन्होने समुद्रविजय के रथ, सारथी, और घोड़ो को भी आहत कर दिया। तव समुद्रविजय ने भयानक रौद्रास्त्र चलाया, कुमार ने ब्रह्मशिर नामक दिव्यास्त्र से उसे भी काट डाला। कुमार के रण कौशल और हस्तलाघव को देखकर शत्रु पक्ष के योद्धा भी उनकी प्रशसा करने लगे। दोनो ही वीर अप्रतिम थे। जव वहुत समय युद्ध करते हुए व्यतीत हो गया, तव कुमार ने अपने नाम से अकित एक वाण अपने वडे भ्राता के पास भेजा। वाण के साथ एक सन्देश भी सलग्न था। वाण मन्थर गति से चलकर समुद्रविजय के पास पहुँचा। समुद्रविजय ने सन्देश पढा। उसमे लिखा था—जो अज्ञात रूप से निकल गया था, वही मैं आपका अनुज वसुदेव हूँ। आज सौ वर्ष पश्चात् पुन आत्मीय जनो के निकट आया हूँ। मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ।'

सन्देश प्राप्त होते ही समुद्रविजय रथ से कूदकर भुजा पसारे हुए अपने छोटे भाई की ओर दौडे। वसुदेव भी रथ से उतर कर आगे वढे और अपने आदरणीय अग्रज के चरणो मे गिर पडे। वडे भाई ने उन्हे उठाकर अपने अक मे भर लिया। दोनो की आखो से आनन्दाश्रु वहने लगे। उनके अन्य भाई भी आ गये। सभी गले लगकर मिले। जरासन्ध आदि राजा भी वसुदेव का परिचय पाकर वडे सन्तुष्ट हुए। फिर शुभ वेला मे वसुदेव का रोहिणी के साथ विवाह हो गया।

विवाह के वाद महाराज जरासन्ध, समुद्रविजय आदि नरेश और वसुदेव एक वर्ष तक राजा रुधिर के अतिथि रहे। एक दिन देवी रोहिणी सुख शैया पर सो रही थी। उन्होने रात्रि के अन्तिम प्रहर मे चार शुभ स्वप्न देखे। प्रथम स्वप्न मे गर्जन करता हुआ श्वेत गज देखा। द्वितीय स्वप्न मे उन्होने उन्नत लहरो वाला गर्जन करता हुआ समुद्र देखा। तृतीय स्वप्न मे षोडशकलायुक्त पूर्ण चन्द्र देखा और चतुर्थ स्वप्न मे उन्होने मुख मे प्रवेश करता हुआ श्वेत सिंह देखा। प्रात काल जागने पर उन्होने अपने पति से स्वप्नो का वर्णन करते हुए उनका फल पूछा। स्वप्न सुनकर वसुदेव

बलभद्र बलराम का जन्म

अत्यन्त हर्षित होकर वोले—'प्रिये ! तुम्हारे ऐसा पुत्र होगा जो अत्यन्त धीर, वीर, अजेय, पृथ्वी का स्वामी और प्रजाबल्लभ होगा'। स्वप्नो का फल जानकर देवी रोहिणी भी वहुत सन्तुष्ट हुई। महाशुक्र स्वर्ग से च्युत होकर एक महासामानिक देव रोहिणी के गर्भ मे आया।

नौ माह पूर्ण होने पर शुभ नक्षत्र मे पुत्र-जन्म हुआ। राजा रुधिर ने दौहित्र का धूम-धाम से जन्मोत्सव मनाया और बालक का नाम 'राम' रक्खा।

एक दिन राज-मण्डप मे सव लोग बैठे हुए थे। एक विद्याधरी आकाश मार्ग मे मण्डप मे आई और आकर वसुदेव से वोली—'देव ! आपकी पत्नी वेगवती और हमारी पुत्री वालचन्द्रा आपके चरणो के दर्शनो के लिए व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रही है। पुत्री वालचन्द्रा ने आपको अपने मन मे वरण कर लिया है। इसलिए उसके साथ विवाह करके उसके प्राणो की रक्षा कीजिए।' विद्याधरी के वचन सुनकर व्यवहारज्ञ वसुदेव ने अपने अग्रज समुद्र विजय की ओर देखा। समुद्रविजय वोले—'वत्स ! तुम्हे वहाँ अवश्य जाना चाहिये।' वसुदेव भ्राता की आज्ञा मिलने पर गगनवल्लभपुर गये और अपनी प्रिया वेगवती से मिले तथा बालचन्द्रा के साथ विवाह किया। इधर जरासन्ध और समुद्रविजय आदि नरेश भी अपने-अपने नगरो को लौट गये। राजा रुधिर ने सवका यथोचित सत्कार कर उन्हे विदा किया। कुमार वसुदेव भी गगनवल्लभपुर से अपनी दोनो स्त्रियो को लेकर और विभिन्न नगरो से अपनी सभी पत्नियो को लेकर शौर्यपुर पहुँच गये। राजा और जनता ने चिर वियोग के पश्चात् कुमार को पाकर वडा हर्षोत्सव मनाया और उनका अभिनन्दन किया।

कस का जन्म और वसुदेव द्वारा वचन-दान—वसुदेव भाइयो के आग्रह को मानकर शौर्यपुर मे रहने लगे और राजकुमारो को शस्त्र-विद्या सिखाने लगे। उनके शिष्यो मे कस नामक एक कुमार भी था। एक दिन वसुदेव अपने कस आदि शिष्यो के साथ सम्राट जरासन्ध से मिलने राजगृह गये। वहाँ पहुँच कर उन्होने एक राजकीय घोषणा सुनी—'जो व्यक्ति सिंहपुर के स्वामी सिंहरथ को जीवित पकडकर सम्राट् के समक्ष उपस्थित करेगा, सम्राट् उसका वडा सम्मान करेगे, अपनी अद्वितीय सुन्दरी पुत्री जीवद्यशा का विवाह उसके साथ करेगे और उसे इच्छित देश का राज्य देगे।'

वसुदेव ने भी यह राज-घोषणा सुनी। उन्होने कस से प्रेरणा करके पताका उठवाई, जिसका अर्थ था कि वह सम्राट् के इस कार्य को करने के लिए तैयार है और सेना लेकर सिंहरथ से लडने के लिए चल दिये। सिंहपुर के बाहर मैदान मे दोनो ओर की सेनाये आ डटी। सिंहरथ केवल नाम से ही सिंहरथ नही था, उसके रथ मे वास्तव मे जीवित सिंह जुते हुये थे। वसुदेव ने क्रीडा मात्र मे अपने वाणो द्वारा सिंहो की रास काट दी। सिंह स्वतन्त्र होकर भाग गये। उसी समय वडी फुर्ती से वसुदेव की आज्ञा से कस ने सिंहरथ को बाँध लिया। वसुदेव अपने शिष्य के इस शौर्य और फुर्ती को देखकर बडे प्रसन्न हुये। उन्होने प्रसन्न होकर कस से कोई वरदान मागने के लिए कहा। कस वडा चालाक था। वह विनयपूर्वक बोला—'देव ! अभी वरदान को मेरी धरोहर समझकर अपने पास ही रखिये। मुझे जब आवश्यकता होगी, मैं आपसे माँग लूँगा।' वसुदेव ने भी उससे कह दिया—'तथास्तु।'

वसुदेव और कस शत्रु को लेकर राजगृह पहुँचे और जरासन्ध से मिले। जरासन्ध वसुदेव की वीरता पर प्रसन्न होकर बोला—'कुमार ! जीवद्यशा पुत्री का मैं तुम्हे अर्पित करता हूँ।' किन्तु कुमार ने उसे बीच मे ही टोक कर वडी विनय के साथ कहा—'आर्य ! शत्रु को कस ने पकडा है, मैंने नही।' तब जरासन्ध ने कस से उसका कुल, गोत्र पूछा। कस बोला—मेरी माता मजोदरी कौशाम्बी मे रहती है और मदिरा बनाने का काम करती है। जरासन्ध कस के रूप और शौर्य को देखकर विचार करने लगा 'यह वीर युवक मदिरा बनाने वालो का पुत्र नही हो सकता।' उसने तत्काल कुछ सैनिक कौशाम्बी भेजकर वहाँ से मजोदरी को बुलवा लिया। सम्राट् ने उससे कस के कुल, गोत्र का सत्य समाचार बताने की आज्ञा दी। मजोदरी बोली—एक दिन मैं यमुना तट पर गई हुई थी। वहाँ मैंने एक मजूषा वहती देखी। उसे मैंने निकाल लिया। उसमे एक शिशु का देखकर मुझे दया आई और उसे निकाल कर मैं पालने लगी। जब यह किशोर अवस्था मे पहुँचा तो इसकी उद्दण्डता बढने लगी। साथी बालको को यह मारता-पीटता था। इससे नित्य ही उलाहने और शिकायते आने लगी। तब दुखित होकर मैंने इसे घर से निकाल दिया। ज्ञात हुआ कि यह कही शस्त्र-विद्या सीखने लगा। काँस की मजूषा मे निकला था, इसलिए इसका नाम कस

रख दिया था। वास्तव मे मैं उसकी माता नही हूँ। वह मजूषा यह है।' यह कहकर उसने मंजूषा सम्राट् को देदी। जरासन्ध ने मजूषा खोलकर देखी तो उसमे एक मुद्रिका तथा लेख मिला। लेख में लिखा था—यह राजा उग्रसैन और रानी पद्मावती का पुत्र है। जब यह गर्भ मे था, तभी से यह उग्र था। अत अनिष्टकारी समझकर उसे त्याग दिया है।

जरासन्ध को अब कोई सन्देह नही रहा कि यह राजपुत्र है। उसने अपनी पुत्री जीवद्यशा का विवाह प्रसन्नतापूर्वक कस के साथ कर दिया। कस को अपने पिता के ऊपर अत्यन्त क्रोध आया। प्रतिशोध लेने का सकल्प करके उसने जरासन्ध से मथुरा का राज्य मांगा। जरासन्ध ने उसे स्वीकार कर लिया। तब कस विशाल सेना लेकर मथुरा आया और अपने पिता उग्रसैन से युद्ध करके उन्हे कौशल से बाध लिया। इतना ही नहीं, उसने अपने पिता को नगर के मुख्य द्वार के ऊपर कारागार मे डाल दिया। अब वह मथुरा का शासक हो गया।

वसुदेव-देवकी का विवाह—कस अपने विद्या-गुरु वसुदेव के उपकारों को भूला नही था। उसने उन्हे अत्यन्त आग्रह और सम्मान के साथ मथुरा बुलाया और गुरु-दक्षिणा के रूप मे अपनी बहन देवकी का विवाह उनके साथ कर दिया। वसुदेव उसके आग्रह को मानकर वही पर रहने लगे।

एक दिन अतिमुक्तक नामक एक निर्ग्रन्थ मुनि आहार के समय राज मन्दिर पधारे। कस-पत्नी जीवद्यशा ने उन्हे देवकी का आनन्द-वस्त्र दिखाकर उनसे उपहास किया। इससे मुनि को क्षोभ आ गया। उन्होने क्रोध मे कहा—'मूर्ख! तू शोक के स्थान मे आनन्द मान रही है। इसी देवकी के गर्भ से उत्पन्न बालक तेरे पति और पिता का सहार करेगा।' यह कहकर वे वहाँ से विहार कर गये।

इस भविष्यवाणी को सुनकर जीवद्यशा भय मे कापने लगी। उसे विश्वास था कि निर्ग्रन्थ मुनि के वचन कभी मिथ्या नही होते। वह पति के पास पहुची और उसने सब समाचार उसे बता दिये। धूर्त कस ने विचार किया और वह वसुदेव के पास पहुँचा। उसने उन्हे प्रणाम करके बडी विनम्रता से धरोहर स्वरूप रखा हुआ वर-दान देने की प्रार्थना की। वह बोला—'आर्य! आपने मुझे वरदान देने का वचन दिया था। मैं वह वर माँगता हूँ कि बहन देवकी प्रसूति के समय मेरे घर पर रहा करे। वसुदेव को इस समाचार का कुछ ज्ञान नही था, अत उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया।

किन्तु उन्हें शीघ्र ही कस की दुरभिसन्धि का पता चल गया। तब उन्हे बडी चिन्ता हुई। वे देवकी को लेकर वन मे अतिमुक्तक मुनिराज के पास गये। मुनिराज को नमस्कार करके दोनो उनके पास बैठ गये। मुनि-राज ने उन्हे आशीर्वाद दिया। तब वसुदेव ने उनसे पूछा—'भगवन्! मेरा पुत्र इस पापी कस का सहार कैसे करेगा, यह मैं आपसे जानना चाहता हूँ।' अतिमुक्तक मुनिराज अवधिज्ञान के धारक थे। वे बोले—राजन्! इस देवकी का सातवां पुत्र शङ्ख, चक्र, गदा और धनुष का धारक नारायण होगा। वह कस और जरासन्ध आदि शत्रुओ का वध कर अर्धचक्रेश्वर बनेगा। शेष छहो पुत्र चरम शरीरी होगे। रोहिणी का पुत्र रामभद्र बलभद्र है। तुम्हे किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नही है।

वसुदेव और देवकी सन्तुष्ट मन से लौट गये। वसुदेव चूँकि वचन दे चुके थे। अत उन्होने कस के साथ मित्रता तो रक्खी, किन्तु उसमे उपेक्षा आ गई। वे दोनो आनन्दपूर्वक मथुरा मे रहने लगे। कस मृत्यु की शका से शकित हुआ उनकी पहल की अपेक्षा अधिक अभ्यर्थना और सेवा सुश्रूषा करने लगा।

देवकी ने तीन बार गर्भ धारण किये और तीनो बार युगल पुत्र उत्पन्न हुए। इन्द्र की आज्ञा से सुनैगम देव ने प्रत्येक बार देवकी के पुत्रो को सुभद्रिलनगर के सेठ सुदृष्टि की पत्नी अलका के यहाँ और अलका के युगल मृत पुत्रो को देवकी के यहाँ पहुँचा दिया। कस ने उन मृत पुत्रो को शिला पर पछाड दिया। वे छहो पुत्र अलका सेठानी के घर पर रह कर दूज के चन्द्रमा के समान बढने लगे। उनका रूप, लावण्य और पुण्य अद्भुत था। उनके नाम इस प्रकार थे—नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु।

नारायण कृष्ण

एक दिन देवकी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर मे सात शुभ स्वप्न देखे। प्रथम स्वप्न मे उगता हुआ सूर्य, दूसरे मे पूर्ण चन्द्र, तीसरे मे दिग्गजो द्वारा अभिषिक्त लक्ष्मी, चौथे मे आकाश से नीचे उतरता हुआ विमान, पाचवे मे ज्वालाओ से युक्त निर्धूम अग्नि, छठे मे रत्नो की किरणो से दीप्त देव-ध्वज और सातवें स्वप्न मे अपने मुख मे प्रवेश करता हुआ सिंह देखा। प्रात काल उठकर उन्होने पतिदेव से अपने स्वप्नो का वर्णन करके उनका फल पूछा। वसुदेव स्वप्नो का हाल सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—'देवी! तुमने जो स्वप्न देखे हैं, उनका फल यह है कि तुम्हारे ऐसा प्रतापी पुत्र होगा जो समस्त पृथ्वी का स्वामी होगा। वह सूर्य के समान प्रतापी, चन्द्रमा के समान सर्वजन प्रिय, दिग्गजो द्वारा अभिषिक्त लक्ष्मी के समान अतुल राज्य लक्ष्मी का स्वामी, स्वर्ग से अवतरित होकर, अत्यन्त कान्ति युक्त, स्थिर प्रकृति और सिंह के समान निर्भय वीर होगा।

कृष्ण-जन्म

स्वप्नो का फल सुनकर देवकी को अपार हर्ष हुआ। उसी दिन देवकी ने गर्भ धारण किया। गर्भ धीरे धीरे वढने लगा। कुटिल कस अलक्ष्य रूप से गर्भ के महीनो और दिनो की गिनती करता हुआ पूर्ण देख रेख कर रहा था। अन्य वालक नौ माह पूर्ण होनें पर उत्पन्न हुए थे। परन्तु कृष्ण का जन्म श्रवण नक्षत्र मे भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को सातवें माह मे हो गया। सद्य जात वालक के शरीर पर शख, चक्र आदि शुभ लक्षण थे। शरीर का वर्ण और कान्ति नीलमणि के समान थी। उनकी कान्ति से प्रसूति गृह प्रकाशित हो उठा। वालक के पुण्य प्रभाव से वन्धु वान्धवो के घरो मे शुभ शकुन होने लगे और शत्रुओ के घरो मे अशुभ शकुन होने लगे।

सात दिनो से आकाश मेघाच्छन्न था। काली अधियारी सारे नगर पर छाई हुई थी। घनघोर वर्षा हो रही थी। वसुदेव और वलराम ने परामर्ष करके निश्चय किया कि वालक को यथाशीघ्र नन्दगोप के घर पहुँचा देना चाहिये, वही इसका पालन पोषण होगा। उन्होने अपनी योजना देवकी को भी वता दी। वलराम ने वालक को गोद मे उठा लिया, वसुदेव नें उस पर छत्र लगा लिया और वे उस घोर अधियारी रात मे वर्षा मे ही चल दिये। सारा नगर वेसुध सो रहा था। अन्धेरे मे राह नही सूझती थी। किन्तु वालक के असीम पुण्य के प्रभाव से नगर देवता वैल का रूप धारण करके आगे-आगे चलने लगा। उसके सीगो पर दो रत्न-दीप जल रहे थे, जिससे रास्ते मे प्रकाश विकीर्ण हो रहा था। गोपुर के द्वार वन्द थे किन्तु वालक का चरण स्पर्श होते ही द्वार खुल गये। तभी पानी की एक वूद वालक की नाक मे घुस गई, जिससे उसे छीक आ गई। छीक का शव्द विजली के समान गम्भीर था। उस गोपुर के ऊपरी भाग मे कस के पिता महाराज उग्रसेन वन्दी थे। छीक के शव्द को सुनकर वोले—'तू निर्विघ्न रूप से चिरकाल तक जीवित रह' पिता-पुत्र इस आशीर्वचन को सुनकर वडे प्रसन्न हुए और कहनें लगे—'पूज्य! रहस्य की रक्षा की जाय। देवकी का यह पुत्र ही आपको वन्धन-मुक्त करेगा।' यो कहकर वे नगर के वाहर निकल गये।

बरसात की यमुना घहराती हुई प्रवल वेग से वह रही थी। किन्तु कृष्ण के पुण्य से यमुना ने दो भागो मे विभक्त होकर उन्हे मार्ग दे दिया। यमुना पारकर वे अपने विश्वासपात्र नन्दगोप के घर की ओर जा रहे थे। तभी उन्होने देखा—नन्दगोप सद्य जात एक बालिका को लिये हुए आ रहे हैं। वसुदेव ने उनसे पूछा-'नन्द! तुम यह वालिका कहाँ लिये जा रहे हो?' नन्द बोले-'कुमार! मेरी स्त्री ने देवी देवताओ की वडी मनौती मनाई थी कि सन्तान हो जाय। किन्तु जव यह कन्या उत्पन्न हुई तो वह कहने लगी-'ले जाओ इस कन्या को। मुझे नही चाहिये। उन्ही देवताओ को दे आओ। उसके कहने से मैं इस कन्या को लिये जा रहा हूँ।' नन्दगोप की बात सुन कर वसुदेव वडे प्रसन्न हुए और बोले-'मित्र! यह कन्या तुम मुझे दे दो और इसके वदले तुम यह पुत्र ले लो और अपनी पत्नी को यह कहकर सोप दो कि देवताओ ने तुम्हारी प्रार्थना सुनकर स्वीकार करली है और पुत्री के वदले यह पुत्र दे दिया है।' इसके बाद उन्होने अपने उस विश्वासपात्र मित्र नन्दगोप को सारा वृत्तान्त सुना कर कहा-

मित्र ! इस रहस्य की तुम प्राण पण से रक्षा करना। मैं इस भावी अर्धचक्री को तुम्हे सोप रहा हूँ। इसको तुम अपना ही वालक मानकर पालन पोपण करना।'

नन्दगोप ने जव उस राजीव लोचन श्याम सलोने कामदेव के समान सुन्दर वालक को देखा तो हर्ष से उनका रोम-रोम खिल उठा। वे वालक को लेकर चल दिये। वसुदेव और वलराम भी वालिका को लेकर उसी रहस्यमय ढग से वापिस गये, जिस प्रकार वे आये थे और ले जाकर देवकी को सोप दिया।

जव कस को वहन की प्रसूति का समाचार ज्ञात हुआ ता वह प्रसूति-गृह मे घुस गया। जव उसने वहन के वगल मे कन्या देखी तो उसके मन मे से भय दूर हो गया। फिर भी उसने सोचा-कदाचित् इसका पति मेरा शत्रु हो सकता है। यह विचार कर उसने कन्या को उठा लिया और उसकी नाक मसल कर उसे चपटी कर दिया। उसे यह भी विश्वास हो गया कि अव देवकी के सन्तान होना वन्द हो गया है। अत वह निश्चित मन से वापिस लौट गया।

उधर यथासमय नन्दगोप के घर पर वालक का जात सस्कार हुआ और उसका नाम 'कृष्ण' रक्खा गया।

कृष्ण का वाल्य-जीवन—कृष्ण धीरे धीरे वढने लगे। वालक की अद्भुत वाल-क्रीडाओ को देख देख कर नन्द और यशोदा फूले नही समाते थे। वह वालक माता पिता की आखो का तारा था। उसका रूप मोहक था। गाव की गोपिकाये वालक को खिलाने के वहाने वहाँ आती और उसे घण्टो तक अपलक नेत्रो से निहारती रहती। यही दशा वहाँ के गोपो की थी। नन्द का घर दिन रात इन गोप-गोपिकाओ से सकुल रहता था और वे वालक की एक झलक पाने के लिये व्याकुल रहते थे।

कृष्ण द्वारा देवियो का मान-मर्दन—एक दिन वरुण नामक एक निमित्तज्ञानी ने कस से निवेदन किया—'राजन् ! तुम्हारा घातक शत्रु उत्पन्न हो गया है और वह छद्म रूप मे वढ रहा है। तुम उसका पता लगाओ।' निमित्तज्ञानी की वात सुनकर कस को चिन्ता होने लगी। उसने तीन दिन का उपवास किया। उससे उसके पूर्वजन्म की हितैषी सात देवियाँ आई और वे वोली—'हम तुम्हारे पूर्व भव मे किये हुए तप से सिद्ध हुई हैं। आपका हम क्या प्रिय कार्य कर सकती है।' कस वोला—'देवियो ! मेरा शत्रु कही उत्पन्न हो चुका है। तुम उसका पता लगाओ और उसका विनाश कर दो।'

कस की आज्ञा पाते ही वे सातो देवियाँ चल दी। एक देवी भयकर पक्षी का रूप धारण करके कृष्ण के पास पहुची और अपनी तेज चोचो से उन पर प्रहार करने लगी। किन्तु वालक कृष्ण ने उसकी चोच इतनी जोर से दबाई कि वह प्राण बचाकर भागी। दूसरी देवी पूतना का रूप धारण कर बालक को विषमय स्तन पिलाने लगी। कृष्ण ने स्तन इतनी जोर से चूसा कि वह भी भयभीत होकर भाग गई। तीसरी पिशाची शकट का रूप धारण करके कृष्ण के सन्मुख आई किन्तु कृष्ण ने उसे लात मारकर भगा दिया।

वालक कृष्ण अव कुछ वडे हो गये। उनकी शरारते दिनो दिन वढती जाती थी। वे निगाह बचते ही मक्खन चुराकर खाजाते थे। परेशान होकर माता यशोदा ने एक दिन कृष्ण को उखली से बाँध दिया। तभी दो देवियाँ जमल और अर्जुन वृक्ष का रूप धारण करके कृष्ण को मारने आयी। किन्तु कृष्ण ने उन्हे धराशायी कर दिया। एक दिन एक देवी मत्त बैल का रूप बनाकर आई। वह वैल गोपो की बस्ती मे भयकर शब्द करता हुआ फिरने लगा। फिरता हुआ वह घोर गर्जना करता हुआ कृष्ण की ओर झपटा। कृष्ण यमराज के समान उस भयकर बैल को आते देखकर जरा भी विचलित नही हुए। उन्होने बैल की गर्दन जोरो से पकड कर मरोड दी। बेचारी देवी अपने प्राण वचाकर भागी। जब वे छह देवियाँ असफल होकर लौट गईं तो सातवी देवी को भयकर क्रोध आया। उसने गोकुल के ऊपर पाषाण और जल की भयकर वर्षा प्रारम्भ कर दी। गोकुल वासी सम्पूर्ण गोप और गाये व्याकुल होकर इधर उधर भागने लगे। तब कृष्ण ने सबको एक जगह गोवर्धन पर्वत के ऊपर एकत्रित किया और सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। इस प्रकार उन्होने सारे गोवर्धन का भार उठा लिया अर्थात् गोवर्धन पर्वत पर रहने वाले गोपो और गायो की रक्षा का दायित्व उन्होने अपने ऊपर ले लिया और सफलतापूर्वक उसे पूरा किया।

कुछ लोगो का विश्वास है कि कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठा लिया और सम्पूर्ण गोप और गाये उसके नीचे इन्द्र के प्रकोप से सुरक्षित रहे। हिन्दू पुराणो के इस आलकारिक वर्णन का रहस्य न समझ कर कुछ लोग उनके शब्दो को पकड लेते हैं। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दू पुराणो मे आलकारिक वर्णन प्राय मिलता है। जैसे द्रोणाचल पर जाने पर हनुमान सजीवनी बूटी नही पहचान सके तो वे द्रोणाचल को ही उठा लाये। साधारण जनता ने इसका अर्थ यही निकाला कि वे वास्तव मे पर्वत को उठा लाये। किन्तु क्या पर्वत को उठा लाना सभव है, इस पर विचार नही किया। जैसे किसी नौकर को किसी ने साग लाने के लिये कुछ रुपये दिये। नौकर अपनी इच्छा और बुद्धि से दस पाच तरह के साग खरीद लाया। तब सागो को देखकर मालिक बोला अरे! तू तो सारा बाजार ही उठा लाया। इसका अर्थ यह नही है कि वह बाजार की सारी चीजे ले आया, बल्कि इसका आशय वस्तुओ की बहुलता है। इसी प्रकार गोवर्धन पर्वत को कृष्ण ने उठा लिया, इसका आशय यह नही है कि उन्होने पर्वत को पकड कर ऊपर उठा लिया। पर्वत को ऊपर उठाना सभव भी नही है। इसका आशय यह है कि कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत पर रहने वाले गोपो और गायो की जिम्मेदारी उठाई। जैसे बोलचाल मे कहते हैं—घर का सारा भार मेरे ऊपर है। इसका अर्थ यह नही है कि घर का सारा सामान और मकान वह अपने ऊपर लिये फिरता है, बल्कि इसका आशय यह है कि घर की सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। ऐसे ही कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाया अर्थात् उन्होने गायो और ग्वालो को गोबर्धन पर्वत के किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाकर हिन्दू पुराणो के अनुसार इन्द्र के प्रकोप से से अर्थात् वर्षा आदि से रक्षा की।

गोवर्धन पर्वत उठाने का रहस्य

कृष्ण की वीरता की गाथाये वसुदेव और देवकी के कानो तक पहुँची। देवकी का मातृ-हृदय अपने पुत्र से मिलने के लिये आतुर हो उठा। वह व्रत का बहाना करके पुत्र को देखने के लिये गोकुल पहुँची। वहाँ वह पीनस्तनी गायो और हृष्ट-पुष्ट गोप-बालको को देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। वह यशोदा से मिलने उसके घर पहुँची। नन्द और यशोदा अपनी स्वामिनी एव सखी को देखकर बडे प्रसन्न हुए और उन्होने उसका बडा आतिथ्य किया। तभी बालक कृष्ण वहाँ आये। वे उस समय पीताम्बर धारी थे। सिर पर मोर-पखो का मुकुट धारण कर रक्खा था। गले मे नील कमल की माला धारण कर रक्खी थी। कानो मे स्वर्णाभरण धारण किए हुए थे। कलाइयो मे स्वर्ण के कडे सुशोभित थे। माथे पर दुपहरिया के फूल लटक रहे थे। उनके साथ अनेक बाल गोपाल थे। देवकी अपने पुत्र के इस अद्भुत परिधान और मनभावन रूप को अपलक देखती ही रह गई। यशोदा के कहने पर कृष्ण ने देवकी को प्रणाम किया। देवकी ने उसे अक मे भर लिया। पुत्र-वात्सल्य के कारण उसके स्तनो से दूध झरने लगा। बुद्धिमान बलदेव ने रहस्य खुल जाने के भय से दूध के घडे से माता का अभिषेक कर दिया और शीघ्र ही माता को लेकर मथुरा पहुँचा दिया।

देवकी का पुत्र से मिलन

कृष्ण को शस्त्र विद्या का शिक्षण—वसुदेव ने अपने पुत्र कृष्ण की सुरक्षा और देख-भाल के लिये अपने बडे पुत्र बलदेव को नियुक्त कर दिया। रहस्य प्रगट न हो जाय, इसलिये बलदेव भी यदा-कदा जाकर अपने अनुज को देख आते थे और वहाँ जाकर वे कृष्ण को राजकुमारोचित अस्त्र-शस्त्र-सचालन की शिक्षा देते थे। कृष्ण अत्यन्त मेधावी थे। उन्होने अल्पकाल मे ही अस्त्र-शस्त्र-सचालन मे पूरी निष्णता प्राप्त कर ली। वे मल्ल-विद्या मे भी पारङ्गत हो गये।

चाणूर और कस का बध—कृष्ण की शौर्य गाथायें नाना रूप मे लोक मे फैल रही थी। उन्हे सुन-सुन कर कंस को विश्वास होने लगा कि मेरा शत्रु छद्म रूप मे बढ रहा है। उसने कृष्ण को मारने के लिये नानाविध उपाय किए, किन्तु वे सब व्यर्थ हो गये। तब ऐसी दशा मे उसका चिन्तित होना स्वाभाविक था। उसके अत्याचारो को वसुदेव मौन होकर देख रहे थे क्योकि वे वचनबद्ध थे।

एक दिन अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना हो गई। कंस के यहाँ सिंहवाहिनी नागशय्या, अजितजय नामक

धनुष और पाञ्चजन्य नामक शख ये तीन अद्भुत शस्त्र उत्पन्न हुए।[1] ये शस्त्र असाधारण थे। देव लोग इनकी रक्षा करते थे। कस द्वारा इन शस्त्रो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे पूछने पर वरुण ज्योतिषी ने कहा—'राजन्'! जो व्यक्ति नागशय्या पर चढकर धनुष पर प्रत्यचा चढादे और पाञ्चजन्य शङ्ख को फूंक दे, वही तुम्हारा शत्रु है।' ज्योतिषी के वचन सुनकर कस की चिन्ता और भी बढ गई। उसने शत्रु का पता लगाने के लिये नगर मे घोषणा करा दी—'जो कोई यहाँ आकर नागशय्या पर चढकर एक हाथ से पाञ्चजन्य शख बजावेगा और दूसरे हाथ से धनुष पर डोरी चढा देगा, वह पराक्रमी माना जाएगा। महाराज कस उसका बहुत सम्मान करेंगे और अपनी पुत्री उसे देंगे।'

घोषणा अन्य नगरो मे भी प्रचारित की गई। उसे सुनकर अनेक देशो के राजा मथुरापुरी आने लगे। राजगृह से कस का साला स्वर्भानु अपने पुत्र भानु के साथ बडे वैभव के साथ आ रहा था। मार्ग मे वह व्रज के गोधावन के एक सरोवर के तट पर ठहरने का उपक्रम करने लगा। इस सरोवर मे भयकर सर्पो का निवास था। उसे ठहरते देखकर ग्वाल बालो ने उससे कहा-यहाँ ठहरना असभव है। इस सरोवर से कृष्ण के अतिरिक्त कोई व्यक्ति पानी नही ले सकता।' यह सुनकर स्वर्भानु ने अन्यत्र अपनी सना का पडाव डाल दिया और कृष्ण को अपने निकट बुलाकर बात करने लगा। कृष्ण के पराक्रम की बातो को सुनकर वह बडा प्रभावित हुआ और उन्हे स्नेह-वश अपने साथ मथुरापुरी ले गया।

मथुरा पहुँचने पर वे लोग कस से मिले। उन्होने उन लोगो को भी देखा, जिन्होने नागशय्या पर चढने का प्रयत्न किया था किन्तु असफल रहे। यह देखकर साहसी कृष्ण आगे बढे। उन्होने भानु को पास ही खडा कर लिया और देखते-देखते उस नागशय्या पर साधारण शय्या के समान चढ गये, जिसके ऊपर भयकर सर्पो के फण लहरा रहे थे। तब उन्होने एक हाथ से अजितजय धनुष की प्रत्यचा चढाकर दूसरे हाथ से शख को पकडकर फूंका। इसके बाद स्वर्भानु का सकेत पाकर कृष्ण वहाँ से चल दिये। कृष्ण के लोकोत्तर प्रभाव को देखकर बलदेव को दुष्ट कस से आशका हो गई। अत उन्होने कृष्ण को अकेला नही जाने दिया, बल्कि एक विजयी योद्धा के समान उनके साथ अनेक आत्मीय जनो को भी भेजा।

इधर समारोह से विजयी योद्धा के अन्तर्धान होने से नाना भाँति की चर्चा होने लगी। किसी ने कहा—यह महान् कार्य राजकुमार भानु ने किया है। किसी ने कहा—यह कार्य भानु ने नही, अन्य राजकुमार ने किया है। यह सुनकर कस ने कहा—'कौन राजकुमार था वह, उसका नाम, धाम पता लगाना होगा। मुझे उसके लिये अपनी कन्या देनी है।' जब नन्द गोप को पता लगा कि यह असाध्य काम मेरे पुत्र ने किया है तो वे स्त्री-पुत्र और गायो को लेकर कस के भय से भाग गये।

यद्यपि कस को ज्ञात हो गया था कि यह कार्य कृष्ण ने किया है, किन्तु उसने अपना सदेह प्रगट नही किया और उन्हे मारने का उपाय सोचने लगा। उसने विचार करके गोपो को आदेश दिया—'नाग हृद के सहस्रदल कमल की मुझे आवश्यकता है। तुम लोग उस सरोवर से मुझे कुछ कमल लाकर दो।' कस का यह आदेश सुनकर कृष्ण निर्भय होकर उस सरोवर मे घुस गये। तभी वहाँ के साँपो का अधिपति मणिधारी कालिय नाग भयकर फण फैला-कर कृष्ण की ओर तीव्र वेग से आया। किन्तु कृष्ण ने क्रीडा मात्र मे उस विषधर का मान मर्दन कर दिया। समस्त गोप उस सर्प की भयकर आकृति को देखकर ही भयभीत हो गये थे, किन्तु जब उन्होने देखा कि कृष्ण ने उस सर्प का वध कर दिया है तो वे हर्ष के मारे उनकी जय-जयकार करने लगे। पीताम्बरधारी कृष्ण कमल तोडकर ज्यो ही सरोवर से निकले, नीलाम्बरधारी बलभद्र ने उन्हे प्रगाढ आलिंगन मे भर लिया।

समस्त गोप सहस्र दल कमल लेकर कस के पास पहुँचे और उसके समक्ष उन कमलो का ढेर लगा दिया। यह देखकर कस ईर्ष्या से दग्ध हो गया। उसने तत्काल आदेश दिया—'नन्द गोप के पुत्र और समस्त गोप मल्लयुद्ध के लिये तैयार हो जाये। उन्हे हमारे मल्लो के साथ युद्ध करना है।'

---

१ उत्तर पुराण के अनुसार मथुरा मे जैन मन्दिर के समीप पूर्व दिशा मे दिक्पाल के मन्दिर मे ये तीनो शस्त्ररत्न उत्पन्न हुए थे।

वसुदेव क्रूर कस के दुष्ट अभिप्राय को समझ गये। उन्होने अपने अनावृष्टि नामक पुत्र से परामर्श किया और उसे शौर्यपुर अपने सब भाईयो को बुलाने भेज दिया। समाचार मिलते ही महाराज समुद्रविजय और उनके आठो भाई रथ, घोडे, हाथी और पदाति सेना लेकर चल दिये और मथुरा जा पहुँचे। जब कस को उनके आगमन की सूचना मिली तो उसका हृदय शकित हो उठा। किन्तु उसे आश्वस्त कर दिया गया कि ये लोग चिरकाल से वियुक्त अपने भाई वसुदेव से मिलने आये है, तब वह उनके स्वागत के लिये पहुँचा और सबको सम्मानसहित नगर मे लाया, उन्हें उत्तम भवनो मे ठहराया और सब प्रकार का उचित आतिथ्य किया।

समय अनुकूल समझ कर बलभद्र कृष्ण को लेकर नदी पर स्नान करने गये और वहाँ उन्हें कस की दुरभिसन्धि, कृष्ण के जन्म से पूर्व कस द्वारा देवकी के सभी पुत्रो की तथाकथित हत्या, समय से पूर्व कृष्ण का जन्म और छिपाकर नन्द गोप के घर पहुँचाने आदि के समाचार विस्तार से बताये। साथ ही अतिमुक्तक मुनि की भविष्यवाणी सुनाते हुये कहा—'कस मल्ल विद्या के बहाने तुम्हारा वध करना चाहता है। उसने इस प्रकार के कई प्रयत्न किये है।' कृष्ण बलभद्र से अपने वास्तविक वश, माता-पिता-बन्धु और दुष्ट कस के समाचार सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। फिर दोनो भाई तैयार होकर गोपो के साथ मथुरा की ओर चले।

वे लोग नगर मे प्रवेश करते हुए जब द्वार पर पहुँचे तो शत्रु की योजनानुसार चम्पक और पादाभर नामक दो हाथी उन लोगो की ओर हूल दिये गये। वे लोग पहले से ही सावधान थे। तुरन्त ही बलभद्र ने चम्पक को घर दबाया और कृष्ण पादाभर से जूझ गये। उन मत्त गयन्दो ने अपने दात, सूड और पैरो के प्रहार से उन दोनो नरसिंहो को चूर-चूर करना चाहा, किन्तु सिंह के समान उन दोनो वीरो ने अपनी मुष्टिका और पाद-प्रहारो से उन गजो का मद विगलित कर दिया और वे उनके कठिन प्रहारो से चीत्कार करने लगे।

शत्रु की योजना को इस प्रकार विफल करके दोनो वीर भ्राता गोपमण्डली के साथ रगभूमि मे पहुँचे। वहाँ पहुचते ही बलभद्र ने सकेत से कृष्ण को समझा दिया कि यह है शत्रु कस और ये है शत्रु-पक्ष के लोग। ये सामने अपने पुत्रो सहित समुद्रविजय आदि बन्धु बैठे है।

वहाँ मल्ल-युद्ध देखने के लिए अनेक नगरवासी, नगर के अधिकारी और राजा लोग एकत्रित थे। कस की आज्ञानुसार मल्ल-युद्ध प्रारम्भ हुआ। मल्लो के कई जोड़े रगभूमि मे आये और अपने-अपने कौशल दिखाकर चले गये। तब कस ने कृष्ण से युद्ध करने के लिये अपने राजकीय मल्ल चाणूर को भेजा। उसने सकेत से मुष्टिक मल्ल को भी कृष्ण के ऊपर टूट पड़ने का सकेत कर दिया।

कृष्ण और चाणूर दोनों मुष्टि-युद्ध मे जुट गये। अवसर देखकर मुष्टिक मल्ल आकर पीछे से कृष्ण पर प्रहार करना ही चाहता था, तभी विद्युत् गति से बढ़कर 'बस-बस ठहर' कहते हुए बलभद्र ने मुष्टिक के जबडो और सिर पर भारी मुष्टिका प्रहार करके उसे प्राणरहित कर दिया। उधर कृष्ण के साथ विशाल आकारधारी दैत्य सम चाणूर जूझ रहा था। कृष्ण ने चाणूर को अपने वक्ष स्थल से लगाकर इतनी जोर से दबाया कि उसके मुख से रुधिर की धारा बह निकली और गतप्राण हो गया। जब कस ने अपने दोनो मल्लो को प्राणरहित देखा तो वह क्रोध से नथुने फुलाता हुआ तलवार लेकर उन्हे मारने दौड़ा। कृष्ण ने सामने आते हुए शत्रु के हाथ से तलवार छीन ली और मजबूती से उसके बाल पकड़ कर उसे पृथ्वी पर पटक दिया। तत्पश्चात् उसके पैरो को पकड़कर उसे पत्थर पर पछाड़ कर मार डाला। कस को मारकर कृष्ण हँसने लगे।

राजा की हत्या से क्षुब्ध होकर कस की सेना शस्त्र सभाले आगे बढ़ी। बलभद्र ने क्रोधवश मच का एक स्तम्भ उखाड़ लिया और उसी से सेना पर बज्र तुल्य प्रहार करने लगे। उन्होने कस को सेना का अल्पकाल में ही परास्त कर दिया। तब कस की सेवा में नियुक्त जरासन्ध की सेना आगे आई। उस सेना को बढ़ते देखकर यादवों का सेना उस पर टूट पड़ा और शत्रु-सैनिकों को समाप्त करने में उन्हें विशेष समय नही लगा।

माता-पिता से कृष्ण का मिलन—बलभद्र और कृष्ण दोनों भाई अनावृष्टि के साथ रथ में आरुढ़ होकर अपने पिता के घर गये। वहाँ पर महाराज समुद्रविजय और उनके सभी भाई पहले ही पहुँच चुके थे। दोनों भाइयों ने जाकर समुद्रविजय आदि गुरुजनों को नमस्कार किया। गुरुजनों ने उन्हें आशीर्वाद दिया। अपने चिर वियुक्त पुत्र

को पाकर वसुदेव और देवकी के हर्ष का पार नही था। आज उन्होंने पहली वार अपने पुत्र का मुख निःशंक रूप से देखा था।

इसके वाद सबने मिलकर राज्य के भविष्य के बारे मे निर्णय किया। तदनुसार कृष्ण ने कारागार मे पडे हुए महाराज उग्रसेन को वहाँ से मुक्त किया तथा राजसिंहासन पर लेजाकर बैठाया। फिर सबने मिलकर कस आदि का अन्तिम सस्कार किया। कस की पत्नी जीवद्यशा रुदन करती हुई तथा क्रोध मे भरी हुई वहा से चलकर अपने पिता राजगृह नरेश जरासन्ध के पास पहुँच गई।

सत्यभामा और रेवती का विवाह—एक दिन यादववशी नरेश गण राजसभा मे बैठे हुए थे, तभी विजयार्ध-पर्वत की दक्षिण श्रेणी के नगर रथनूपुर चक्रवाल के नरेश सुकेतु का दूत सभा मे आया। उसने वडे आदर और विनय के साथ शत्रुओं का सहार करने वाले श्रीकृष्ण से कहा—'हे देव! विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे रथनूपुर चक्रवाल प्रसिद्ध नगर है। वहाँ के अधिपति महाराज सुकेतु ने मुझे आपकी सेवा मे भेजा है। उन्होने सिंहवाहिनी नागशय्या पर आरोहण, पाचजन्य शख को फूकने और अजितजय धनुष के सन्धान से आपकी परीक्षा करके यह निवेदन किया है कि आप मेरी सुलक्षणा पुत्री सत्यभामा को अगीकार करलें। इससे विद्याधर लोक का गौरव बढेगा।' दूत के वचन सुनकर प्रसन्न चित्त से कृष्ण ने अपनी सहमति देदी।

सहमति प्राप्त होते ही दूत वहाँ से रथनूपुर पहुँचा और वहाँ अपने स्वामी सुकेतु से कृष्ण और वलभद्र भाइयो की प्रशसा करके कार्य सिद्ध होने की सूचना दी। दूत-मुख से यह हर्ष-समाचार सुनकर राजा सुकेतु और उसका भाई रतिमाल अपनी-अपनी कन्याओं को लेकर चल दिए। सुकेतु की कन्या का नाम सत्यभामा था और वह रानी स्वयप्रभा की पुत्री थी। रतिमाल की कन्या का नाम रेवती था। मथुरा पहु'च कर उन्होंने वडे समारोह के साथ विवाह-मण्डप तैयार कराया। उसमे रतिमाल ने अपनी पुत्री रेवती बलभद्र के लिए अर्पित की और सुकेतु ने अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह कृष्ण के साथ कर दिया। इस विवाह-सम्बन्ध से समस्त यादव, विशेषत माता रोहिणी और देवकी अत्यन्त सन्तुष्ट थी।

यादवो के प्रति जरासन्ध का अभियान—कस की स्त्री जीवद्यशा जब गिरिव्रज पहुँची और जरासन्ध के आगे करुण विलाप करते हुए उसने यादवों का नाश करने के लिए अपने पिता को भडकाया तो जरासन्ध भी अपनी पुत्री और दामाद के प्रति यादवो द्वारा किये गये अनुचित कार्य से क्षुब्ध हो उठा। उसने पुत्री को सान्त्वना देकर यादवों के विनाश का निश्चय किया। उसने अपने महारथी पुत्र कालयवन को चतुरगिणी सेना के साथ यादवो का समूल विनाश करने के लिये भेजा।

इधर श्रीकृष्ण ने उग्रसैन को कारागार से मुक्त करके उन्हे मथुरा का राज्य सोप दिया तथा अपने पिता नन्द तथा अपने वालसखा गोपालो का धन आदि से उचित सम्मान करके उन्हे आदर सहित विदा कर दिया। सब कार्यो से निवृत्त होकर वे शौर्यपुर नगर चले गये और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे।

कालयवन विशाल सेना लेकर चला। दूतो द्वारा समाचार जानकर यादव लोग भी सेना सजाकर शत्रु का प्रतिरोध करने आगे बढे। मार्ग मे दोनो सेनाओ का सामना हुआ और भयकर युद्ध हुआ। कालयवन को श्रीकृष्ण के हाथो करारी पराजय मिली और उसे रणभूमि छोडकर भागना पडा। किन्तु वह पुन सेना लेकर जा चढा। इस प्रकार उसने सोलह वार आक्रमण किया और प्रत्येक वार उसे पलायन करना पडा। सत्रहवी वार अतुल मालावर्त पर्वत पर यादवो के साथ उसकी करारी मुठभेड हुई किन्तु इस युद्ध मे श्रीकृष्ण के द्वारा उसकी मृत्यु हो गई।

अपने पुत्र की मृत्यु के दारुण समाचार सुनकर जरासन्ध को यादवो पर भयकर क्रोध आया और उसने अप्रतिम वीर भ्राता अपराजित को यादवो से बदला लेने के लिये भेजा। उसने तीन सौ छयालीस वार यादवो के साथ युद्ध किया। अन्त मे श्रीकृष्ण के वाणो ने उसे भी कालयवन के निकट पहुँचा दिया।

भगवान का गर्भ कल्याणक—तीर्थंकर प्रभु शौर्यपुर मे माता शिवादेवी के गर्भ मे आने वाले है। यह बात अवधिज्ञान से जानकर इन्द्र ने छह माह पूर्व कुबेर को रत्नवर्षा की आज्ञा दी। कुबेर ने भगवान के जन्म पर्यन्त-पन्द्रह माह तक महाराज समुद्रविजय के महलो मे प्रतिदिन तीन वार साढे तीन करोड़ रत्नो की एक बार के हिसाब से

वर्षा की। महाराज समुद्रविजय इस धन को याचको मे वितरित कर देते थे। इन्द्र के आदेश से छप्पन दिक्कुमारियाँ माता की सेवा करती थी।

एक दिन माता शिवादेवी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर मे सोलह शुभ स्वप्न देखे। उसी दिन कार्तिक शुक्ला षष्ठी को जयन्त विमान से अहमिन्द्र का जीव चलकर माता के गर्भ मे अवतरित हुआ। प्रात काल वन्दीजनो की मागलिक विरुदावलियो और भेरियो की ध्वनि सुनकर माता शिवादेवी शय्या छोडकर उठ बैठी और मगल स्नान किया, वस्त्राभरण धारण किये और बडी विनय के साथ अपने पति के निकट जाकर अर्धासन पर आसीन हो गई। पश्चात् उन्होने रात को देखे हुए स्वप्न सुनाकर उनका फल पूछा। महाराज ने स्वप्न सुनकर उनका फलादेश बताते हुए कहा—देवी! तुम्हारे गर्भ मे तीन लोक के स्वामी तीर्थंकर अवतीर्ण हुए है। स्वप्न फल सुनकर रानी अत्यन्त हर्षित हुई। उसी समय इन्द्रो ने चिन्हो से तीर्थंकर का गर्भावतरण जान लिया और उन्होने देवो के साथ आकर भगवान का गर्भ कल्याणक महोत्सव किया।

जन्म कल्याणक—भगवान त्रिलोकीनाथ गर्भ मे थे, इसलिये माता को किसी प्रकार का कष्ट नही होता था। देवागनाओ द्वारा सपादित अमृतमय आहार करने के कारण उनका शरीर कृश होने पर भी सुवर्ण को कान्ति जैसा देदीप्यमान हो गया था। महाराज समुद्रविजय का यश-वैभव भी निरन्तर वृद्धिगत हो रहा था। इस प्रकार गर्भ के नौ मास आनन्दपूर्वक व्यतीत हुए।

नौ माह पश्चात् वैशाख शुक्ला त्रयोदशी की शुभतिथि मे जब चन्द्रमा का चित्रा नक्षत्र के साथ सयोग था और शुभग्रह अपने उच्च स्थान पर थे, तब शिवादेवी ने अतिशय सुन्दर बालक को जन्म दिया। बालक तीन ज्ञान—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान से युक्त था, उसका शरीर एक हजार लक्षणो से युक्त था और नील कमल की आभा का धारक था। प्रसूतिगृह मे मणिमय दीपको की कान्ति उस बालक के तेज से और भी अधिक उद्योत को प्राप्त हो गई।

भगवान के जन्म लेते ही उनके पुण्य-प्रभाव से भवनवासी देवो के लोक मे स्वय ही शखो का जोरदार शब्द होने लगा, व्यन्तर लोक मे पटह बजने लगे, ज्योतिष्क लोक मे सिंहनाद होने लगा और कल्पवासी देवो के विमानो मे घण्टे बजने लगे। सभी इन्द्रो के मुकुट और सिंहासन चचल हो उठे। तब चारो निकाय के समस्त इन्द्र देवो के साथ भगवान का जन्म कल्याणक मनाने चल पडे। अहमिन्द्र यद्यपि अपने-अपने स्थान पर ही रहे, किन्तु उन्होने अपने सिंहासनो से सात कदम सामने जाकर वही से जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार किया था।

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क तथा प्रथम स्वर्ग से लेकर सोलहवे स्वर्ग तक के कल्पवासी देव और उनके इन्द्र वहाँ आये। इन सबमे सौधर्मेन्द्र की शोभा अद्भुत थी। वह इन्द्राणी के साथ ऐरावत गजराज पर बैठा हुआ था। गजराज के दातो पर अप्सरायें नृत्य कर रही थी। इन्द्र के पीछे उसकी सात प्रकार की देवसेना चल रही थी। सबसे आगे पदाति थे। फिर अश्व-सेना थी। उसके पीछे बैलो की सेना थी। तदनन्तर रथो की सेना थी। फिर हाथियो की सेना चल रही थी। इसके बाद गन्धर्व-सेना थी जिसने मधुर मूर्छना से कोमल वीणा, उत्कृष्ट बासुरी और ताल के शब्द से मिश्रित सातो प्रकार के आश्रित स्वरो मे मध्यलोक को व्याप्त कर दिया था और सबके अन्त मे थी नर्तकियो की सेना जो नृत्य द्वारा रस-सृष्टि कर रही थी। इन सेनाओ मे प्रत्येक की सात कक्षाये थी। प्रथम कक्षा मे चौरासी हजार घोडे, इतने ही हाथी, रथ आदि थे। इससे आगे की कक्षाओ मे क्रम से दूने-दूने होते गये थे।

ये देव और इन्द्र शौर्यपुर मे आये, तब तक दिक्कुमारी देवियो ने भगवान का जात कर्म निष्पन्न किया। रत्नाभरण धारण करने वाली विजया, वैजयन्ती, अपराजिता, जयन्ती, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्धना और नन्दोत्तरा देवियाँ जल से पूर्ण झारियाँ लिये खडी थी। यशोधरा, सुप्रसिद्धा, सुकीर्ति, सुस्थिता, प्रणिधि, लक्ष्मीमती, चित्रा और वसुन्धरा देवियाँ मणिमय दर्पण लिये हुए थी। इला, नवमिका, सुरा, पीता, पद्मावती, पृथ्वी, प्रवर काचना और चन्द्रिका नामक देवियाँ माता के ऊपर श्वेत छत्र ताने हुए थी। श्री, धृति, आशा, वारुणी, पुण्डरीकिणी, अलम्बुसा, मिश्रकेशी और ह्री देवियाँ चमर लिये खडी थी। कनकचित्रा, चित्रा, त्रिशिरा और सूत्रामणि ये विद्युत्कुमारी देवियाँ भगवान के समीप खडी थी। विद्युत्कुमारियो मे प्रधान रुचकप्रभा, रुचका, रुचकाभा और

रुचकोज्वला तथा दिक्कुमारियो मे प्रधान विजया आदि चार देवियो ने विधिपूर्वक भगवान का जात कर्म सम्पन्न किया।

भगवान के जन्मोत्सव के पूर्व ही कुबेर ने शौर्यपुर को दुलहिन की तरह सजा रक्खा था। उसके महलो पर ऊँची-ऊँची ध्वजाये फहरा रही थी, राज्य पथ और वीथियां बिलकुल स्वच्छ थीं। सारे नगर में तोरणो और वन्दनमालाओ की शोभा अद्भुत थी। चारो निकाय के इन्द्रों और देवो ने नगर की तीन प्रदक्षिणायें दी। फिर इन्द्र ने कुछ देवो के साथ नगर मे प्रवेश किया और इन्द्राणी को सद्योजात बाल भगवान को लाने का आदेश दिया। तब इन्द्राणी ने प्रसूतिका-गृह मे प्रवेश करके आदर पूर्वक जिन-माता को प्रणाम किया और उनकी बगल में मायामय बालक सुलाकर और उन्हे मायामयी निद्रा में सुलाकर जिन बालक को लाकर इन्द्र को सौप दिया। इन्द्र भगवान को ऐरावत हाथी पर विराजमान करके समस्त देवो के साथ सुमेरु पर्वत पर ले चला। उस समय की शोभा अवर्णनीय थी। ऐरावत हाथी के बत्तीस मुख थे। प्रत्येक मुख मे आठ-आठ दात थे। प्रत्येक दात पर एक-एक सरोवर था। प्रत्येक सरोवर मे एक-एक कमलिनी थी। एक-एक कमलिनी मे बत्तीस-बत्तीस पत्र थे। एक-एक पत्र पर अक्षय यौवना अप्सरा नृत्य कर रही थी। इस प्रकार की दैवी विभूति के साथ देव लोग सुमेरु पर्वत के निकट पहुँचे और उसकी प्रदक्षिणा देकर पाण्डुक नामक वन-खण्ड मे पहुँचे। वहां पाण्डुक शिला पर स्थित सिंहासन पर भगवान को विराजमान किया। उस समय देवाङ्गनायें और नृत्यकार देव भक्ति नृत्य कर रहे थे, नगाडे, शख और भेरियो का तुमुलनाद हो रहा था। सुगन्धित धूप घटो मे जल रही थी। सुगन्धित वायु वातावरण को सुवासित कर रही थी। सुमेरु पर्वत और क्षीरसागर के मध्य देदीप्यमान कलश हाथ मे लिये हुए देवो की पक्तियां खडी थी और वे कलश एक हाथ से दूसरे हाथ मे जा रहे थे। इन्द्रो ने और फिर देवो ने भगवान का अभिषेक किया। इन्द्राणी और देवियो ने भगवान का शृगार किया। तब देव लोग भगवान को लेकर शौर्यपुर वापिस लौटे और प्रासाद मे पहुँच कर इन्द्राणी ने बालक को जिन-माता की गोद मे दिया। तब इन्द्र ने आनन्दनाटक और भक्तिपूरित हृदय से ताण्डव नृत्य किया। फिर इन्द्र ने माता-पिता को प्रणाम किया, जिन बालक के दाहिने हाथ के अगूठे मे अमृत निक्षिप्त किया और कुबेर को ऋतु, अवस्था आदि के अनुसार भगवान की सब प्रकार की व्यवस्था करने का आदेश देकर समस्त देवो के साथ वापिस प्रस्थान किया। इस प्रकार भगवान नेमिनाथ का जन्म महोत्सव समस्त इन्द्रो और देवों ने मिलकर मनाया।

यादवों द्वारा शौर्यपुर का परित्याग—अपने पुत्रो और प्राणोपम भ्राता की मृत्यु से जरासन्ध जितना शोकाकुल हुआ, उससे कही अधिक उनका घात करने वाले यादवो पर क्रोध आया। उसने यादवो का समूल विनाश करने का निश्चय कर लिया। उसने अविलम्ब चरो द्वारा मित्र नरेशो और अधीन राजाओं को सन्देश भेज दिये। फलतः नाना देशो के नरेश अपनी-अपनी चतुरगिणी सेना लेकर आ पहुँचे।

यादवो को अपने चतुर चरो द्वारा जरासन्ध की विशाल युद्ध तैयारियों का पता चल गया। अतः युद्ध-स्थिति पर विचार करने और अपनी भावी नीति निर्धारित करने के लिये शौर्यपुर मे शौर्यपुर, मथुरा और वीर्यपुर के वृष्णिवशी और भोजवशी यादवो के प्रमुख लोगो की मत्राणागार मे सभा जुड़ी। मत्रणा का निष्कर्ष इस प्रकार रहा—

जरासन्ध की आज्ञा भरतक्षेत्र के तीन खण्डो मे कभी अतिक्रान्त नही हुई। चक्र, खड्ग, गदा और दण्डरत्न के कारण वह अजेय समझा जाता है। हम लोगो पर वह सदा उपकार करता रहा है किन्तु अब वह अपने भ्राता और पुत्रो के वध के कारण यादवो पर अत्यन्त क्रुद्ध हो रहा है। वह इतना अहकारी है कि हम लोगो के दैव और पुरुषार्थ सम्बन्धी सामर्थ्य को जानता हुआ भी उसे अनदेखा कर रहा है। कृष्ण और बलराम का पौरुष और प्रताप बालकपन से ही प्रगट हो रहा है। इन्द्र और देव भी जिनके चरणो मे नम्रीभूत होते है और लोकपाल जिनके लालन-पालन करने के लिये व्यग्र रहते है, वे नेमिनाथ तीर्थंकर यद्यपि अभी बालक ही है, किन्तु तीर्थंकर के कुल का अपकार करने का सामर्थ्य तीन लोक में किसी में नही है।

फिर भी हमें उसकी असंख्य सेना और अपार बल का सामना करने के लिए शक्ति-सग्रह करना आवश्यक है और उसके लिये हमे कुछ समय के लिये शान्तिपूर्ण अवसर प्राप्त होना चाहिये। इसलिये हमें अभी इस स्थान का परित्याग करके पश्चिम दिशा की ओर किसी सुरक्षित स्थान पर चलना चाहिये। यदि जरासन्ध हमारा

सामना करना चाहेगा तो हम लोग दण्डनीति का आश्रय करके उसे मृत्युलोक मे पहुँचा देंगे। तीर्थंकर नेमिनाथ, नीति विचक्षण कृष्ण और महाबली बलराम के रहते हम लोगो को चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही है।

निर्णय हो गया कि यादवो को अविलम्ब प्रस्थान करना है। कटक मे आदेश प्रचारित कर दिया गया। भेरी-घोष सुनकर वृष्णिवश और भोजवश के समस्त यादव शुभ मुहूर्त मे वहाँ से चल पडे। मथुरा, शौर्यपुर और वीर्यपुर की समस्त प्रजा भी स्वामी के अनुराग से उनकी अनुगत हुई। उस समय अपरिमित धन से युक्त अठारह कोटि यादवो ने वहाँ से प्रस्थान किया।

यादव थोडी-थोडी दूर पर पडाव डालते हुए पश्चिम दिशा की ओर बढ रहे थे। जब वे विन्ध्याचल पर पहुँचे तो चरो द्वारा उन्हे समाचार प्राप्त हुआ कि मार्ग मे जरासन्ध विशाल सेना लेकर शीघ्रता पूर्वक पीछे-पीछे आ रहा है। यादव वीरो ने यह समाचार सुना तो उनकी भुजायें फडकने लगी। जरासन्ध से निबटने के लिये वे लोग उसकी प्रतीक्षा अधीरतापूर्वक करने लगे।

किन्तु प्रकृति को कुछ और ही इष्ट था। जब दोनो सेनाओ मे थोडा ही अन्तर रह गया तो अर्धभरत क्षेत्र मे निवास करने वाली देवियो ने अपनी दिव्य सामर्थ्य से असख्य जलती हुई चिताये बनादी। जब जरासन्ध सेना सहित वहाँ पहुँचा तो उसने चिताओ मे जलती हुई सेना को देखा। जरासन्ध यह देखकर विस्मित रह गया। उसने अपनी सेना वही ठहरा दी। तभी उसकी दृष्टि चिताओ के निकट रोती हुई एक वृद्धा पर पडी। जरासन्ध उसके निकट पहुँचा और पूछने लगा—'वृद्धे! यह किसका कटक जल रहा है और तू यहाँ बैठी क्यो रो रही है? मुझे सच-सच बता।' वह वृद्धा कठिनाई से अपना रुदन रोक कर उच्छ्वसित कण्ठ से बोली—'राजन्! मैं आपको सम्पूर्ण घटना बताती हूँ। आपके समक्ष अपना दुःख निवेदन करने से शायद मेरा दुःख कम हो जाय। सुना है, राजगृह नगर मे जरासन्ध नामक कोई प्रतापी सम्राट है, जिसके प्रताप की अग्नि समुद्र मे भी बडवानल बनकर जलती है। यादव लोग अपने अपराधो के कारण उस सम्राट् से भयभीत होकर अपना नगर छोड़कर भागे जा रहे थे। परन्तु समस्त पृथ्वी में भी उन्हे किसी ने शरण नही दी। तब उन्होने अग्नि मे प्राण विसर्जन करके मरण की शरण को ही उत्तम समझा। मैं यादव-नरेशो की वंश परम्परागत दासी हूँ। मुझे अपने प्राण प्रिय थे, इसलिये मैं नही मर सकी, किन्तु अपने स्वामी के इस कुमरण के दुःख से दुखी होकर यहाँ बैठी रो रही हूँ।'

वह वृद्धा के वचन सुनकर अत्यन्त विस्मित हुआ और यादवो के जल मरने की बात पर उसने विश्वास कर लिया। वह वहाँ से राजगृही को लौट गया। यादव लोग भी वहाँ से चलकर पश्चिम समुद्र के तट पर जा पहुँचे।

द्वारिका नगरी का निर्माण—शुभ मुहूर्त में कृष्ण और बलभद्र स्थान प्राप्त करने के उद्देश्य से तीन दिन के उपवास का नियम लेकर पच परमेष्ठियो का ध्यान करते हुए दर्भासन पर स्थित हो गये। उनके पुण्य से और तीर्थंकर नेमिनाथ की भक्ति से प्रेरित होकर सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से गौतम नामक शक्तिशाली देव ने समुद्र को दूर हटा दिया और कुबेर ने उस स्थान पर द्वारका नामक नगरी की रचना कर दी। यह नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी तथा वज्रमय कोट से युक्त थी। समुद्र उसकी परिखा का काम करता था। उस नगरी मे सुगन्धित कमलो से भरी हुई पुष्करिणी, वापिका, सरोवर और तड़ाग थे, अनेक जाति के फलवाले वृक्ष और पुष्पों वाली लतायें थी, रत्ननिर्मित प्राकार और तोरणो से युक्त जिनालय थे, स्वर्णमय प्राकार और गोपुरों से युक्त अनेक खण्डो वाले प्रासाद थे। उस नगरी के बीचो-बीच समुद्रविजय आदि दसों भाइयो के महल थे और उनके बीच में कृष्ण का अठारह खण्डोवाला सर्वतोभद्र प्रासाद था। इस प्रासाद के निकट अन्तःपुर और पुत्रों आदि के योग्य महलों की पक्तियाँ बनी हुई थी। अन्तःपुर की पक्तियो से घिरा हुआ एवं वापिका, उद्यान आदि से सुशोभित बलभद्र का महल था। इस महल के आगे एक सभामण्डप बना हुआ था। उग्रसेन आदि राजाओ के महल आठ-आठ खण्ड के थे।

नगरी की रचना पूर्ण होने पर कुबेर ने श्रीकृष्ण को इसकी सूचना दी तथा उन्हें मुकुट, उत्तम हार, कौस्तुभ मणि, दो पीत वस्त्र, नक्षत्रमाला आदि आभूषण, कुमुद्वती नामक गदा, शक्ति, नन्दक नामक खड्ग, शार्ङ्ग धनुष, दो तरकश, वज्रमय वाण, दिव्यास्त्रों से युक्त और गरुड़ की ध्वजा वाला दिव्य रथ, चमर और श्वेत छत्र प्रदान किये।

बलभद्र के लिये दो नील वस्त्र, माला, मुकुट, गदा, हल, मूसल, बाणो से भरे दो तरकश, रथ एव छत्र दिये। समुद्र विजय आदि राजाओ का भी कुबेर ने वस्त्राभरणो से सत्कार किया। बाल तीर्थंकर नेमिनाथ का विशेष रीति से कुबेर ने पूजन, सत्कार किया। सबका सत्कार करने पर कुबेर ने प्रार्थना की—आप लोग नगर मे प्रवेश कीजिये। इसके पश्चात् पूर्णभद्र को नगर की सुरक्षा के लिये नियुक्त करके वह स्वर्ग को लौट गया।

यादवो के सघ ने समुद्र के तट पर श्रीकृष्ण और बलभद्र का अभिषेक कर के उनकी जयजयकार की। तब सब यादवो ने प्रसन्न मन से द्वारिका नगरी मे प्रवेश किया। पूर्णभद्र यक्ष ने सबको यथायोग्य स्थान पर ठहराया। तब कुबेर ने समस्त द्वारिका नगरी मे साढे तीन दिन तक अटूट धन-धान्यादि की वर्षा की।

धीरे-धीरे महाराज श्रीकृष्ण का प्रभाव चारो ओर फैलने लगा। इससे पश्चिम के सभी नरेश उनकी आज्ञा मानने लगे।

रुक्मिणी के साथ कृष्ण का विवाह—द्वारिका मे यादवो की सभा हो रही थी। तभी आकाश-मार्ग मे नारद जी पधारे। उनकी जटाएँ, दाढ़ी और मूँछे पीत वर्ण की थी। उनका वर्ण श्वेत था। वे रग-विरगे योगपट्ट से विभूषित थे। वे कौपीन और चादर धारण किये हुए थे। वे तीन लर वाला यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। राजप्रासादो के अन्त पुरो मे उनका अव्याहत प्रवेश था। किन्तु वे कलह-प्रिय, स्वाभिमानी और क्रोधी थे। शिशु वय मे उनका पालन जृम्भक नामक देव ने वैताढ्य पर्वत पर किया था। देव उनसे अत्यन्त स्नेह करते थे। आठ वर्ष की अवस्था मे देवो ने उन्हें जिनागम की विद्या और आकाशगामिनी विद्या प्रदान की थी। वही शिशु नारद नाम से विख्यात हुआ। नारद श्रावक के अणुव्रतो के भी पालक थे।

नारद ने आकर तीर्थंकर नेमि प्रभु, कृष्ण और बलराम को नमस्कार किया। शेष व्यक्तियो ने उन्हे नमस्कार किया। आसन ग्रहण करने पर उन्होने इधर-उधर की चर्चा की। फिर वे अन्त पुर मे पहुँचे। उस समय कृष्ण की महादेवी अपने शृ गार में लीन थी। वह नारद को नही देख पाई। नारद के स्वाभिमान को इससे बहुत ठेस पहुँची। उन्होने मन मे निश्चय किया कि मैं इसकी एक सपत्नी लाकर इसके सौन्दर्य के अहकार को अवश्य चूर-चूर करूँगा। यह निश्चय करके वे वापिस लौट आये और आकाश-मार्ग से वे कुण्डिनपुर जा पहुँचे। वे वहाँ के नरेश भीष्म के अन्त पुर मे पहुँचे। रानियो तथा भीष्म की बहन ने आकर उन्हे नमस्कार किया। वहाँ रति के समान एक रूपवती कन्या को देखकर वे विचार करने लगे—यह कन्या कृष्ण की पट्टमहिषी पद पर अधिष्ठित होने योग्य है। इस कन्या के द्वारा ही मैं गर्विणी सत्यभामा का दर्प चूर्ण करूँगा।

रूप की खान उस कन्या का नाम रुक्मिणी था। उसने विनय और सभ्रम के साथ नारद को नमस्कार किया। नारद ने उसे आशीर्वाद दिया—द्वारिका के स्वामी कृष्ण तुम्हारे पति हो।' रुक्मिणी के पूछने पर नारद ने द्वारिका के वैभव और कृष्ण के प्रभाव, पौरुष का ऐसा सरस वर्णन किया कि रुक्मिणी के मन मे कृष्ण के प्रति तीव्र अनुराग उत्पन्न हो गया।

नारद रुक्मिणी के मन मे प्रेम की ज्वाला सुलगा कर वहाँ से चल दिये। उन्होने एकान्त मे बैठकर चित्र पट पर रुक्मिणी का मनमोहन चित्र अकित किया। वे पुन द्वारिका पहुँचे और कृष्ण को वह चित्रपट दिखाया। कृष्ण उस चित्र को विमुग्ध भाव से निहारते रहे। उन्होने मनोभावो को वाणी का रूप देकर पूछा—'देवर्षि ! कौन है यह कन्या ? क्या यह कोई सुरबाला है अथवा कोई नाग-कन्या है ?' नारद ने किंचित् मुस्कराकर उनका परिचय दिया। परिचय ऐसा सरस था कि कृष्ण के मन मे उसे पाने की तीव्र ललक जागृत हो गई।

उधर रुक्मिणी को एकान्त मे ले जाकर उसकी बूआ बोली —पुत्री ! मेरी बात सुन। एक बार अतिमुक्तक नामक अवधिज्ञानी मुनि यहाँ पधारे थे। उन्होने तुझे देखकर कहा था—'यह सुलक्षणा कन्या त्रिखण्डाधिपति नारायण की सोलह हजार रानियो मे पट्टमहिषी पद से विभूषित होगी। आज देवर्षि नारद ने भी वही आशीर्वाद तुझे दिया है। लगता है, भविष्य दृष्टा मुनि के वचन यथार्थ सिद्ध होगे। किन्तु समस्या यह है कि तेरे प्रतापी सहोदर रुक्मी ने तुझे शिशुपाल को देने का सकल्प किया है। और शिशुपाल आजकल मे यहाँ आने ही वाला है।'

रुक्मिणी बोली—मुनिराज के वचन अन्यथा कैसे हो सकते हैं। इस जीवन मे कृष्ण ही मेरे पति होगे, मेरा

यह सकल्प है। किन्तु मेरे इस सकल्प की सूचना कृष्ण तक पहुँचाने की आप कोई व्यवस्था कर दीजिये।'

बुआ ने तत्काल कृष्ण को एक पत्र लिखा —'महाबली कृष्ण ! पुत्री रुक्मिणी ने जबसे आपका नाम सुना हैं, वह आपमे हृदय से अनुरक्त हो उठी है। वह केवल आपके नाम के सहारे जीवन धारण कर रही है। किन्तु उसके पिता और बन्धुजन उसे शिशुपाल को अर्पित करना चाहते है। यदि आप माघ शुक्ला अष्टमी के दिन उसका अपहरण करके नही ले जाते तो वह शिशुपाल को अर्पित कर दी जायगी। उस दशा मे उसका मरण निश्चित है। वह नागदेव की पूजा के बहाने नगर के बाह्य उद्यान मे स्थित नाग मन्दिर मे उस दिन आपकी प्रतीक्षा करेगी।' इस पत्र को गुप्त रूप से एक विश्वस्त व्यक्ति के द्वारा कृष्ण के पास भेज दिया। पत्र मिलते ही कृष्ण अपने भ्राता बलभद्र के साथ कुण्डिनपुर पहुँच गये। शिशुपाल भी विदर्भ नरेश भीष्म का निमन्त्रण पाकर चतुरगिणी सेना लेकर वहाँ जा पहुँचा।

रुक्मिणी विवाह की धूमधाम मे नाग-पूजा के बहाने अपनी बुआ के साथ नगर के बाह्य उद्यान मे नाग-मन्दिर मे जापहुँची। वहाँ पहुँचकर वह बडी अधीरतापूर्वक कृष्ण की प्रतीक्षा करने लगी। क्षण क्षण का विलम्ब उसे युगो जैसा प्रतीत हो रहा था। उसके प्राण कठ मे अटक रहे थे। कृष्ण-मिलन अथवा मृत्यु-वरण यही उसका सकल्प था। प्रियतम की अक या मृत्यु का आलिंगन, तीसरा कोई विकल्प नही था उसके मन मे।

कृष्ण ने तभी प्रगट होकर रुक्मिणी से कहा—'प्रिये ! मैं आ गया हूँ। जिसकी तुम प्रतीक्षा कर रही हो, वह मैं ही हूँ।' रुक्मिणी ने ये अमृतवर्षी वचन सुने तो उसका रोम-रोम अपूर्व पुलक से भर गया। उसके कमल नयन ऊपर को उठे और लज्जा से फिर अवनत हो गये। कृष्ण ने आगे बढकर उसे आलिंगन मे बाध लिया। प्रेमी-युगल के इस प्रथम मिलन के साक्षी थे पाषाण के नाग देवता। एक बार तो जैसे वे भी सरस अभिष्वग पर मुस्करा दिये।

कृष्ण ने अपनी उस कोमल नव परिणय मुग्धा को हौले से उठाकर रथ मे बैठा दिया। प्रथम स्पर्श-सुख से दोनो ही प्रेमी कुछ समय के लिये अभिभूत हो गये। कुछ क्षण के पश्चात् जब कृष्ण को नाजुक परिस्थिति का बोध हुआ तो उन्होने भीष्म, रुक्मी और शिशुपाल को रुक्मिणी-हरण का समाचार देकर रथ आगे बढा दिया। तभी कृष्ण नें अपना विख्यात पाचजन्य शख और बलभद्र ने सुघोष नामक शख फूँका। समाचार मिलते ही रुक्मी और शिशुपाल रथो मे आरूढ होकर कृष्ण और बलभद्र का सामना करने पहुँच गये। उनके साथ अपार सेना थी। किन्तु कृष्ण निर्भयता और आनन्द के साथ रुक्मिणी से बात करते हुये धीरे-धीरे रथ हाक रहे थे।

रुक्मिणी ने जब अपार सेना के साथ अपने भाई और शिशुपाल को आते हुए देखा तो वह अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगी—'नाथ ! मेरा भाई महाबली रुक्मी और शिशुपाल विशाल अक्षौहिणी लेकर आ रहे है। इस विशाल सेना के साथ एकाकी आप दोनो किस प्रकार युद्ध कर सकेंगे।' कृष्ण नें उसे धैर्य बधाते हुए कहा—'प्रिये ! चिन्ता मत करो। हम दोनो के रहते तुम्हे भय नही करना चाहिये।' उन्होने अपनी भयभीत प्रियतमा को आश्वासन देते हुए अपनी अगूठी के हीरे को लेकर चुटकियो से चूर-चूर कर दिया तथा एक ही बाण से सामने खडे हुए तमाल वृक्ष को काट दिया।' कृष्ण के इस अलौकिक बल को देखकर रुक्मिणी हाथ जोडकर बोली—'नाथ ! युद्ध मे मेरे भाई का कोई अनिष्ट न हो।' कृष्ण नें उसे अपनी स्वीकृति देकर रथ शत्रु-सेना की ओर मोड दिया। कृष्ण शिशुपाल के सामने जा डटे और बलराम नें रुक्मी का सामना किया। कृष्ण के एक बाण से ही शिशुपाल का मस्तक कटकर भूलु ठित हो गया। उधर बलराम ने रुक्मी के रथ और सारथी का विनाश करके रुक्मी को बुरी तरह परास्त कर दिया। सारी सेना उन दोनो वीरो के बाणो से आहत होकर इधर-उधर भाग गई।

दोनो भाई युद्ध मे विजयी होकर आनन्दपूर्वक वहाँ से चल दिये। रैवतक पर्वत पर जाकर कृष्ण नें विधि-पूर्वक रुक्मिणी के साथ विवाह किया और भाई बलराम के साथ बडे वैभव के साथ द्वारकापुरी मे प्रवेश किया। दोनो भाई अपने-अपने महल मे चले गये।

दूसरे दिन कृष्ण ने रुक्मिणी के लिए सब प्रकार की सम्पदाओ और सुविधाओ से युक्त एक पृथक् महल दिया तथा उसे पटरानी का पद प्रदान किया। सत्यभामा को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो वह सापत्न्य-द्वेष से जलने लगी।

अनेक षड्यन्त्र रचे, किन्तु प्रबल पुण्य का स्वामी प्रद्युम्न न केवल हर बार उन षड्यन्त्रों से सुरक्षित रहा, अपितु उनके फलस्वरूप प्रत्येक बार उसे लाभ ही हुआ। एक बार सिद्धायतन के गोपुर के ऊपर भाइयों के कहने से वह चढ गया और वहाँ के रक्षक देव से विद्या, कोष और अनर्घ्य मुकुट प्राप्त हुआ, महाकाल गुफा मे निर्भय होकर प्रवेश किया और वहाँ के देव से छत्र, चमर, ढाल और तलवार का लाभ हुआ। नागगुफा मे प्रवेश करने पर देव ने उसे उत्तम पादपीठ, नागशय्या, आसन, वीणा और भवन निर्मात्री विद्या प्रदान की। एक वापिका मे जाने पर मकर चिन्ह वाली ध्वजा प्राप्त की। मेघाकृति पर्वत में प्रवेश करने पर दो कुण्डल मिले। इस प्रकार भाइयों ने उसे विभिन्न भयानक स्थानो पर जाने के लिए प्रेरित किया और वहाँ से कुछ न कुछ लाभ प्राप्त करके वह वापिस लौटा, इस प्रकार उसे सोलह लाभ प्राप्त हुए।

प्रद्युम्न की दृढ शील-निष्ठा—प्रद्युम्न कुमार मेघकूट नगर मे वापिस आया और अपने पिता कालसवर के दर्शन किये। उसके पश्चात् वह अपनी माता कनकमाला के पास पहुँचा। माता ने बड़े दुलार से उसका मस्तक सू घा और निकट बैठाकर उसके शरीर पर हाथ फेरा। किन्तु उसके कामदेव के समान मोहन रूप को देखकर उसके मन मे कामवासना जागृत हो गई। वह मन मे विचार करने लगी 'उस स्त्री का जन्म सार्थक है, जिसे इसके अ गो का स्पर्श प्राप्त हो।' प्रद्युम्न माता को प्रणाम करके चला गया।

दूसरे दिन माता की अस्वस्थता के समाचार सुनकर प्रद्युम्न उसे देखने आया। किन्तु कनकमाला काम विह्वल होकर काम-चेष्टा करने लगी। प्रद्युम्न उस अप्रत्याशित प्रसग से मर्माहत हो उठा। उसने माता और पुत्र के सम्बन्ध का स्मरण कराते हुए माता को उस प्रकार की चेष्टा से विरत करने का प्रयत्न किया। कनकमाला ने अब उसे सारा वृत्तान्त सुना दिया कि वह भयानक अटवी मे कैसे मिला था। प्रद्युम्न इस बात पर विश्वास न कर सका। किन्तु उसे सन्देह अवश्य हो गया। वह जिनालय पहुँचा, जहाँ मुनिराज सागरचन्द्र विराजमान थे। मुनिराज को नमस्कार करके उनसे अपने सम्बन्ध मे पूछा। अवधिज्ञानी मुनिराज ने उसे उसके पूर्व भव बताकर उसके अपहरण, अटवी मे उसके मिलने आदि का सपूर्ण वृत्तान्त बताया तथा यह भी सूचित किया—'वत्स! अभी तुझे कनकमाला से प्रज्ञप्ति विद्या का लाभ मिलने वाला है।'

प्रद्युम्न वहाँ से पुन कनकमाला के आवास मे पहुँचा। कनकमाला ने समझा कि इसने मेरी मूक प्रार्थना स्वीकार कर ली है। वह बडी प्रसन्न होकर बोली—'कामदेव! मैं तुझे गौरी और प्रज्ञप्ति नामक दो विद्यायें देती हूँ, तू मेरी इच्छा पूरी कर।' प्रद्युम्न ने विनय से माता के चरणो मे सिर झुकाया। कनकमाला ने विधिपूर्वक उसे दोनों विद्याये प्रदान की। प्रद्युम्न ने सिर झुका कर निवेदन किया—'आपने बचपन मे मुझे प्राण-दान दिया था और अब आपने विद्याये देकर विद्या-दान दिया है। अत आप मेरे लिये पूज्य हैं।' यो कहकर वह वहाँ से चला गया।

तभी वहाँ नारद आ गये। प्रद्युम्न ने उन्हे नमस्कार किया और बडा सम्मान किया। नारद ने उसे उसके वास्तविक माता-पिता का परिचय दिया। प्रद्युम्न अपने माता-पिता से मिलने के लिए आतुर हो गया। उसने कालसवर आदि को नमस्कार करके वहाँ से जाने की आज्ञा मागी। उन्होने उसे सहर्ष आज्ञा दे दी। प्रद्युम्न ने बडी प्रसन्नतापूर्वक नारद के साथ विमान मे द्वारका के लिये प्रस्थान किया। जब विमान हस्तिनापुर के ऊपर आया तो उसने देखा कि एक विशाल सेना जा रही है। उसने नारद से उसके बारे मे पूछा। नारद ने सत्यभामा और उसकी माता रुक्मिणी मे हुई शर्त की बात बताकर कहा—'रुक्मिणी के सेवकों ने तुम्हारे जन्म का समाचार श्रीकृष्ण को पहले दिया था और सत्यभामा के सेवक उसके पुत्र भानुकुमार के जन्म की बात बाद मे बता पाये। अत तुम अग्रज घोषित किये गये। किन्तु धूमकेतु असुर तुम्हारा अपहरण करके ले गया। हस्तिनापुर नरेश दुर्योधन ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि मेरे पुत्री हुई और रुक्मिणी या सत्यभामा के पहले पुत्र होगा, उसे मैं अपनी पुत्री दूँगा। वह पुत्री तुम्हे मिलनी थी, किन्तु तुम्हारा अपहरण होने के कारण अब यह भानुकुमार को अर्पण करने सेना के साथ द्वारका जा रही है।'

प्रद्युम्न कुमार का माता-पिता से मिलन

प्रद्युम्न विमान को आकाश मे स्थिर करके भूमि पर उतर गया और कौतुक मात्र मे सेना को जीत कर दुर्योधन-पुत्री उदधिकुमारी का अपहरण करके विमान मे ले गया। विमान द्वारका पहुँचा। वहाँ उसने अनेक कौतुक दिखाये। नारद ने सोलह वर्ष पूर्व प्रद्युम्न के आने पर जिन चिन्हो के प्रगट होने की सूचना दी थी, वे चिन्ह प्रगट हो गये। इससे रुक्मिणी को पुत्र-मिलन की आशा हो गई। तभी प्रद्युम्न विमान से उतरकर नाना प्रकार के कौतुक दिखाता हुआ वेष बदलकर माता रुक्मिणी के प्रासाद मे पहुँचा। उसे देखते ही रुक्मिणी के स्तनो से दूध झरने लगा। उसे विश्वास हो गया कि हो न हो, मेरा पुत्र यही है। यह वेष बदलकर आया है। प्रद्युम्न के मन मे भी माता से मिलने की ललक थी। वह अपने वास्तविक वेष मे माता के समक्ष पहुँचा और उनके चरणो मे नमस्कार किया। माता हर्ष से रोमाचित हो गई, नेत्र हर्षाश्रुओ से पूरित हो गये। सोलह वर्ष का वियोग-जन्य दु ख क्षण मात्र मे सुख के रूप मे परिवर्तित हो गया। मा ने अपने बिछुडे हुए छौना को अ क मे भर लिया। बिछुडे हुए माता-पुत्र का यह मिलन कितना रोमाचक, कितना आल्हादक और कितना मार्मिक था, इसके साथी थे दोनो के नेत्रो से बहते हुए हर्ष के आँसू। रुक्मिणी माता अपने नन्हे मुन्ने को कभी अ क मे कस लेती, कभी वह उसका चुम्बन लेती, कभी उसके सिर को सू घती और कभी वात्सल्य से उसके सारे शरीर पर अपना हाथ फेरती। किन्तु उसे तृप्ति नही हो रही थी। उसके नेत्र हर्ष की वर्षा कर रहे थे, अधर कपित थे, गला अवरुद्ध था। स्तनो से वात्सल्य बरस रहा था।

हर्ष मे बेसुध माता और पुत्र न जाने कितनी देर इसी दशा मे रहे। तब प्रद्युम्न ने माता से ऊपर विमान मे चलने का आग्रह किया। माता ने स्वीकृति दे दी। प्रद्युम्न अपनी माता को लेकर विमान मे पहुँचा। वहाँ रुक्मिणी नारद और उदधिकुमारी से मिली। तभी प्रद्युम्न के मन मे कौतुक जागा। वह आकाश मे स्थिर होकर बोला—'यादवगण सुने। मैं आप लोगो की पटरानी रुक्मिणी का अपहरण करके ले जा रहा हूँ। जिसमे साहस हो, वह छुडा ले।' यो कहकर उसने शख-नाद किया।

समस्त यादव इस चुनौती को सुनकर अपने अस्त्र-शस्त्रो को लेकर निकल पडे। किन्तु प्रद्युम्न ने समस्त यादव-सेना को अपनी विद्या से मूर्च्छित कर दिया। यह देखकर नारायण कृष्ण युद्ध के लिये आये। पिता-पुत्र मे बहुत समय तक नाना प्रकार का युद्ध हुआ। दोनो ही अप्रतिम वीर थे। बालक प्रद्युम्न के आगे श्रीकृष्ण का सारा अस्त्र-कौशल निष्फल हो गया। तब दोनो बाहु-युद्ध के लिए तैयार हुए। श्रीकृष्ण मन मे विचार कर रहे थे—आज मेरी भुजाओ का बल कहाँ चला गया। एक बालक ने समस्त यादव-सेना को निश्चेष्ट कर दिया है। इसे देखकर मेरे मन मे रोष के स्थान मे वात्सल्य क्यो उमड़ रहा है ?

रुक्मिणी पति और पुत्र के इस अकारण युद्ध से चिन्तित थी। वह अनिष्ट की आशका से बार-बार काँप उठती थी। उसने बडे अनुनय के साथ नारद से इस गृह-युद्ध को रोकने की प्रार्थना की। तब नारद ने आकाश मे स्थित होकर कहा—'नारायण! अपने मन मे से ग्लानि दूर कर दो। तुम जिस बालक के साथ युद्ध कर रहे हो, वह तुम्हारा शत्रु नही पुत्र है। वह रुक्मिणी का अपहृत पुत्र प्रद्युम्न कुमार है जो सोलह वर्ष पश्चात् आपके दर्शनो के लिए आया है।'

नारद की यह घोषणा सुनते ही श्रीकृष्ण ने दौडकर अपने चिरवियुक्त पुत्र को गाढ आलिंगन मे भर लिया और प्रद्युम्न ने झुककर अपने पिता के चरण-स्पर्श किये। फिर उसने माया से निद्रित सेना को विद्या द्वारा जागृत कर दिया। पिता और पुत्र ने स्वजनो और परिजनो के साथ हर्ष के साथ नगर मे प्रवेश किया।

महाभारत युद्ध

भगवान ऋषभदेव के काल में कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नगर मे सोमप्रभ और श्रेयान्स दो नररत्न हुए। श्रेयान्स ने भगवान ऋषभदेव को सर्वप्रथम आहार देकर दान तीर्थ की प्रवृत्ति की। सोमप्रभ से सोमवश अर्थात् चन्द्रवश और कुरुवश चला। सोमप्रभ के जयकुमार हुआ जो प्रथम चक्रवर्ती भरत का प्रधान सेनापति था। जयकुमार के कुरु हुआ। इसी प्रकार क्रम से कुरुचन्द्र, शुभकर, धृतिकर आदि हुए। फिर इसी वश मे चतुर्थ चक्रवर्ती सनत्कुमार, सोलहवें तीर्थंकर एव चक्रवर्ती शान्तिनाथ, सत्रहवें कुन्थुनाथ और अठारहवे अरनाथ हुए। इनके पश्चात् महापद्म चक्रवर्ती, उनके विष्णु और पद्म नामक दो पुत्र हुए। इन्ही विष्णुकुमार ने मुनि अवस्था मे बलि आदि मत्रियो द्वारा अकपनाचार्य आदि सात सौ मुनियो पर प्राण-घातक उपसर्ग करने पर वामन रूप धारण कर उपसर्ग दूर किया था। इनके अनन्तर सुपद्म, पद्मदेव, कुलकीर्ति, कीर्ति, सुकीर्ति, कीर्ति, वसुकीर्ति, वासुकि, वासव, वसु, सुवसु, श्रीवसु, वसुन्धर, वसुरथ, इन्द्रवीर्य, चित्र,विचित्र, वीर्य, विचित्र, विचित्रवीर्य, चित्ररथ, महारथ, धृतरथ, वृषानन्त, वृषध्वज, श्रीव्रत, व्रतधर्मा, धृत, धारण, महासर, प्रतिसर, शर, पारशर, शरद्वीप, द्वीप, द्वीपायन, सुशान्ति, शान्तिभद्र, शान्तिषेण हुए। शान्तिषेण के शन्तनु हुए। उनकी रानी का नाम योजनगन्धा था। शन्तनु के धृतव्यास, तदनन्तर धृतधर्मा, धृतोदय, धृततेज, धृतयश, धृतमान और धृत हुए। धृत के धृतराज नामक पुत्र हुआ। उसकी तीन रानियाँ थी—अम्बिका, अम्बालिका और अम्बा। अम्बिका से धृतराष्ट्र, अम्बालिका से पाण्डु और अम्बा से विदुर नामक पुत्र हुए। धृतराज के भाई रुक्मण और उनकी रानी गगा से भीष्म नामक पुत्र हुआ।

कुरुवंश—

धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए। इनमे परस्पर मे बडा प्रेम था। राजकुमार पाण्डु ने यदुवशी समुद्रविजय की बहन कुन्ती के साथ गुप्त रूप से गन्धर्व विवाह किया था। उससे कर्ण नामक पुत्र हुआ। पश्चात् उन दोनो का सार्वजनिक रूप से विवाह हो गया। तब उनके युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक पुत्र उत्पन्न हुए। पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री से नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र हुए। पाण्डु के ये पाचो पुत्र पाण्डव कहलाये। इन पाचो भाइयो मे भी परस्पर मे अत्यन्त स्नेह था। दुर्योधन आदि सौ भाई कौरव कहलाते थे। जब पाण्डु और रानी माद्री का स्वर्गवास हो गया, तब राज्य के अधिकार के प्रश्न पर कौरवो और पाण्डवो मे वैमनस्य हो गया। तब भीष्म, विदुर, मत्री शकुनि आदि ने बीच मे पडकर कुरु राज्य के दो समान भाग कर दिये। एक भाग पाण्डवो को और दूसरा भाग कौरवो को मिला।

दुर्योधन कूटनीति मे निपुण था, जबकि युधिष्ठिर धर्मानुकूल नैतिक मूल्यो के प्रति दृढ निष्ठावान थे। कर्ण को कुन्ती ने अपवाद के भय से जन्म होते ही एक मजूषा मे रखकर नदी मे प्रवाहित कर दिया था। किन्तु उसे एक सूत ने नदी मे से निकाल लिया था। वह बालक बडा होने पर शस्त्रास्त्र-सचालन मे अत्यन्त निष्णात हो गया। दुर्योधन की सूक्ष्म दृष्टि मे वह समा गया और उसने उससे मित्रता करली। दुर्योधन ने अपना बल बढाने के लिए सम्राट् जरासन्ध से भी घनिष्टता बढाली।

राजकुमारो का प्रशिक्षण—कौरवो और पाण्डवो को शस्त्रास्त्र विद्या सिखाने के लिए उस युग के सर्वश्रेष्ठ विद्यागुरु द्रोणाचार्य को नियुक्त किया गया। द्रोणाचार्य भार्गववशी ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज भार्गवाचार्य थे। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ धनुर्वेत्ता थे। भार्गवाचार्य से यह विद्या आत्रेय को प्राप्त हुई। इसी प्रकार क्रमश पुत्र-परम्परा

से यह विद्या कौथुभि, अमरावर्त, सित, वामदेव, कपिष्टल, जगत्स्थामा, सरवर, शरासन, रावण और विद्रावण को मिली, विद्रावण ने यह विद्या अपने पुत्र द्रोण को दी। द्रोणाचार्य की स्त्री का नाम अश्विनी था और उनका पुत्र अश्वत्थामा था। द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र को धनुर्विद्या मे पारगत कर दिया।

द्रोणाचार्य कौरवो एव पाण्डवो को समान रूप से शस्त्र-सचालन का प्रशिक्षण देते थे। किन्तु अपनी प्रतिभा, रुचि और विनय के द्वारा अर्जुन धनुर्विद्या मे अप्रतिम रूप से पारगत होगया। दुर्योधन और भीम गदा-युद्ध मे निष्णात होगये। नकुल और सहदेव ने तलवार सचालन मे दक्षता प्राप्त की। इसी प्रकार अन्य राजकुमार भी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न शस्त्रास्त्र सचालन के विशेपज्ञ वन गये। किन्तु उस युग मे धनुर्विद्या ही प्रभावक और निर्णायक मानी जाती थी। अत अर्जुन की धनुर्विद्या मे निष्णता देखकर दुर्योधन आदि कौरव पाण्डवो से ईर्ष्या करने लगे। उनकी ईर्ष्या के मूल मे वस्तुत उनके मन मे समाया हुआ भय था।

पाण्डवों का अज्ञातवास—कुछ समय पश्चात् कौरव ईर्ष्यावश दोनो पक्षो मे राज्य विभाजन के सम्वन्ध मे हुई सन्धि मे दोप निकालने लगे। उनका तर्क था कि सन्धि दवाव मे आकर हमे करनी पडी थी किन्तु यह सन्धि नितान्त अनुचित है। एक ओर आधे राज्य का भोग केवल पाच पाण्डव कर रहे हैं, जबकि दूसरी ओर हम सौ भाइयो के लिए आधा राज्य मिला है यह अन्यायपूर्ण है। कौरवो की यह वात पाण्डवो के कानो मे भी पहुँची। उससे भीम आदि चारो भाई एकदम क्षुब्ध होउठे किन्तु धीर गम्भीर युधिष्ठिर ने उनको शान्त कर दिया।

किन्तु कौरव अवसर की प्रतीक्षा मे थे। वे पाण्डवो का कण्टक सदा के लिये निकालना चाहते थे। एक दिन दुर्योधन ने योजना वनाकर राजप्रासाद मे सोते हुए पाण्डवो के घर मे आग लगादी। सहसा उनकी नीद खुल गई और पाचो पाण्डव माता कुन्ती को लेकर गुप्त मार्ग द्वारा निकल गए। इस अन्यायपूण घटना से जनता मे रोप छा गया। वह दुर्योधन के विरुद्ध हो गई। जनता के इस उमडते हुए विद्रोह को देखकर बुद्धिमान मत्रियो ने जनता मे प्रचारित कर दिया कि पाण्डवो के महल मे आग स्वत लगी है और पाचो पाण्डव एव उनकी माता उसी मे भस्म हो गये है। उन्होने शीघ्रता से पाण्डवो की मरणोत्तर क्रिया भी सम्पन्न करादी जिससे जनता का विद्रोह शान्त हो जाय।

पाण्डव माता के साथ गगा को पार कर पूर्व दिशा की ओर चल दिये। वे अपना काल स्वय अगीकृत अज्ञातवास मे विताने लगे।

पाण्डवो के दाह का समाचार द्वारका मे पहुँचा। राजा समुद्रविजय, उनके भाई और समस्त यादव अपनी वहन कुन्ती और भागिनेय पाण्डवो को जलाकर हत्या करने की इस अन्यायपूर्ण घटना को सुनकर दुर्योधन के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। इस अन्याय का प्रतिशोध लेने के लिए वे विशाल सेना लेकर हस्तिनापुर को ओर चल पडे। उनके इस अभियान का समाचार चरो द्वारा जरासन्ध को भी ज्ञात हुआ। वह भी सेना लेकर चल दिया। वहाँ पहुँचकर वह यादवो से आदरपूर्वक मिला और उसने दोनो पक्षो मे सम्मानपूर्ण सन्धि करादी।

पाण्डव कौशिक आदि नगरो मे होते हुए ईहापुर पहुँचे। वहाँ प्रजा को अत्यन्त सन्त्रस्त और भयभीत देखकर पाण्डवो ने उसके कारण का पता लगाया। वे जिस गृहपति के आवास मे ठहरे थे, उससे ज्ञात हुआ कि इस नगर मे एक महा भयानक और क्रूर नरभक्षी भृङ्ग नामक राक्षस आता है, वह मनुष्यो की हत्या करता है और उन्हे खाता है। नगरवासियो ने इन हत्याओ से त्रस्त होकर प्रतिदिन एक घर से एक मनुष्य को भेजने की पारी वाध दी है। आज हमारे घर की पारी है। अत हम लोग दुखी है। गृहपति की यह दु खभरी गाथा सुनकर माता कुन्ती को बडी दया आई। उन्होने गृहपति को आश्वासन देकर कहा—'आर्य! आपको दुखी होने की आवश्यकता नही है। आपने हमारा आतिथ्य किया है। हमारा कर्त्तव्य है कि आपके कुछ काम आवें। मेरे ये पाँच पुत्र हैं। आपके स्थान पर मेरा एक पुत्र आज जायगा। आप चिन्ता न करें।' गृहपति यह सुनकर अत्यन्त व्याकुल हो गया। वह हाथ जोड़कर वोला—माता! मुझ जैसा अधम और कौन होगा जो अपने अतिथि को ही स्वेच्छा से मृत्यु के मुख में धकेल दे। मेरे पुण्य के वल से आप यहाँ पधारे और आपके दर्शन हुए। आपके ऊपर मेरे घर में निवास करने के समय कोई संकट आवे, इससे तो मृत्यु श्रेष्ठ है। मैं आपको यह कार्य नहीं करने दूँगा।' कुन्ती

ने उसकी आशका को यह कहकर बडी कठिनता मे दूर किया कि मेरा पुत्र महाबली है, उसके प्राणो को कोई संकट नही है। वह राक्षस को मार कर अभी लौट आवेगा और इस नगर के निवासियो का सकट सदा के लिये दूर कर आवेगा।' बडी कठिनाई से कुन्ती गृहपति को सहमत कर सकी। तब उन्होंने भीम से कहा—'वत्स! हमे गृहपति ने आश्रय दिया और हमारा समुचित आतिथ्य किया है। हमे इनके उपकार के ऋण से मुक्त होने का सुयोग प्राप्त हुआ है। पुत्र! तुम जाओ और उस नराधम के सग्राम मे इन्हे मुक्ति दिलाओ।' महाबली भीम माता का आदेश मिलते ही उन्हे और अपने अग्रज को नमस्कार करके चल दिया और निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा, जहाँ वह नर राक्षस अधीरता पूर्वक अपने भोज्य की प्रतीक्षा कर रहा था। हृष्ट पुष्ट भीम को देखकर वह अट्टहास करता हुआ कहने लगा—'अहा! आज मेरी उदरदरी की तृप्ति होगी। स्थूल शरीर मे मास की अधिकता होती है। कई दिनो से पर्याप्त आहार न मिलने से मेरी क्षुधा शान्त नही हुई थी। तुझे देखकर वह और अधिक उद्दीप्त हो उठी है।' वह नर राक्षस अपने भोज्य को ललचाई आँखो से देख रहा था, उसकी जीभ बार-बार लपलपाने लगती थी।

भीम ने उसके निकट पहुँच कर वज्र निर्घोष स्वर मे कहा—'अरे अधम! देखता क्या है। आज तेरा आहार काल बनकर आया है। यदि तुझमे शक्ति हो तो भक्षण कर।' राक्षस ने सुनकर पुन अट्टहास किया और अपने तीक्ष्ण नाखूनो वाले पजो को फैलाये हुए वह भीम की ओर लपका। भीम भी सावधान था। उसने राक्षस के जबडो पर कसकर मुष्टिका का प्रहार किया, ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वज्रपात हुआ हो। वह दैत्याकार राक्षस एक ही प्रहार मे रक्त वमन करने लगा। भीम ने उसे सावधान होने का अवसर दिये बिना लगातार वज्र तुल्य कई प्रहार किये और उनसे वह प्राणहीन होकर भूमि पर गिर पडा।

जब भीम राक्षस का वध करके लौटा तो नगरवासियो ने सकटमोचक इस देवपुरुष का हर्षपूर्वक जय घोष किया। भीम सबका आदर और अभ्यर्थना ग्रहण करता हुआ अपार जन-समूह के साथ अपने आवास को लौटा। उसने आकर माता और भ्राता के चरण स्पर्श किये। उसके मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर सभी बडे हर्षित हुए।

द्रौपदी-स्वयवर

पाण्डव लोग वेश बदलकर विचरण कर रहे थे। मार्ग मे कौशिक नगर के नरेश वर्ण की पुत्री कुसुमकोमला ने युधिष्ठिर की प्रशसा सुनकर हृदय मे उन्हे ही पति मान लिया था। वसुन्धर पुर के राजा विन्ध्यसेन की पुत्री वसन्तसुन्दरी को युधिष्ठिर को अर्पित करने का सकल्प गुरुजनो ने कर रखा था। किन्तु पाण्डवो के अग्नि-दाह के समाचार सुनकर कन्या निराश होकर श्लेष्मान्तक वन मे एक आश्रम मे तापसी बनकर रहने लगी। त्रिशृङ्ग नगर के नरेश प्रचण्ड वाहन की दस पुत्रियाँ थी—गुण प्रभा, सुप्रभा, ह्री, श्री, रति, पद्मा, इन्दीवरा, विश्वा, आचर्या और अशोका। इन्हे भी युधिष्ठिर को प्रदान करने का सकल्प किया गया था। अग्नि दाह का समाचार सुनकर ये राजकुमारियाँ श्राविका के व्रत लेकर विरक्त जीवन बिताने लगी। इसी प्रकार इसी नगर के श्रेष्ठी प्रियमित्र की कन्या नयनसुन्दरी भी युधिष्ठिर के सम्बन्ध मे अन्यथा समाचार सुनकर उक्त राजकुमारियो के समान अणुव्रत धारण करके रहने लगी।

चलते-चलते पाण्डव चम्पापुरी मे पहुँचे। वहाँ कर्ण शासन करता था। वहाँ एक मदोन्मत्त राजहस्ती नगर में बडा उपद्रव मचा रहा था। भीम ने उसे मुष्टिका प्रहारो द्वारा वश मे कर लिया। भीम की इस वीरता से कर्ण क्षुब्ध हो उठा। तब पाण्डव विदिशा पहुँचे। एक दिन ब्राह्मण वेशधारी भीम भिक्षा के लिए राजमहलो मे पहुँचा। राजा वृषध्वज ने भीम को देखते ही अनुमान लगाया कि छद्म वेश मे यह कोई महापुरुष है। वह अपनी कन्या दिशानन्दा को लेकर भीम के आगे खडा हो गया और बडी विनयपूर्वक बोला—'महाभाग! यह कन्या ही आपके लिये उपयुक्त भिक्षा है, इसलिए आप इसे स्वीकार कीजिए और पाणिग्रहण के लिए हाथ बढाइये।' भीम बोला—'राजन्! यह भिक्षा तो अपूर्व है। किन्तु ऐसी भिक्षा ग्रहण करने के लिए मैं स्वतन्त्र नहीहूँ। यो कहकर भीम वहाँ से वापिस लौट आया। किन्तु कन्या ने मन मे उसे ही अपने पति के रूप मे स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर पाण्डव नर्मदा नदी को पाकर विन्ध्याचल में पहुँचे। वहाँ सध्याकार नगर में हिडम्बवशी राजा सिंहघोष राज्य करता था। उसकी सुदर्शना रानी और हृदयसुन्दरी नामक पुत्री थी। राजकुमारी के सम्बन्ध मे

निमित्तज्ञानियो ने यह बताया था कि जो व्यक्ति विन्ध्याचल पर्वत पर गदा विद्या को सिद्ध करने वाले विद्याधर को मारेगा, वह हृदयसुन्दरी का पति होगा। एक दिन भीम भ्रमण करते हुए विन्ध्याचल पर्वत पर पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि एक व्यक्ति वृक्ष की कोटर मे बैठकर गदा को सिद्ध कर रहा है। देखते ही भीम ने गदा उठाली और उस गदा के एक प्रहार से वृक्ष को धराशायी कर दिया। वृक्ष के साथ विद्याधर की भी मृत्यु हो गई। राजा ने बडे सम्मानपूर्वक हृदयसुन्दरी का विवाह भीम के साथ कर दिया।

वहाँ कुछ दिन रह कर पाण्डव लोग विभिन्न स्थानो पर भ्रमण करते हुए हस्तिनापुर की ओर चल दिये। वे चलते-चलते माकन्दी नगरी मे पहुँचे। वहाँ का राजा द्रुपद था और भोगवती नामक रानी थी। इनके धृष्ट-द्युम्न आदि पुत्र और द्रौपदी नामक पुत्री थी। द्रौपदी अत्यन्त सुन्दरी थी, रूप की खान थी और सौन्दर्य मे रति को भी लज्जित करती थी। अनेक राजाओ और राजकुमारो ने उसकी याचना की। अन्तत राजा द्रुपद ने स्वयवर का आयोजन किया और यह शर्त रक्खी कि जो घूमते हुए चन्द्रक यन्त्र का वेध कर देगा, वही राजकुमारी के हाथो वरमाला धारण करने का अधिकारी होगा।

इसी अवसर पर सुरेन्द्रवर्धन नामक विद्याधर राजा वहाँ आया। उसने राजा द्रुपद की आज्ञा से यह शर्त रख ली कि जो गाण्डीव धनुप पर प्रत्यचा चढा देगा, और उससे चन्द्रक-वेध करेगा, वही राजकुमारी को पा सकेगा।

स्वयवर का निमन्त्रण पाकर दुर्योधन आदि अनेक राजा और राजकुमार वहाँ एकत्रित हुए। पाण्डव भी कुतूहलवश वहाँ पहुँच गये। सब राजाओ ने गाण्डीव धनुष पर प्रत्यचा चढाने का प्रयत्न किया, किन्तु उस दिव्य धनुष को उठाकर कोई झुका भी नही सका। जब सब परास्त हो गये, तब अर्जुन उठा, बडे भ्राताओ के चरणस्पर्श किये, जाकर गाण्डीव धनुष उठाया और लीला मात्र मे उसकी प्रत्यचा चढा दी। दुर्योधन कर्ण आदि राजा अर्जुन के हस्तलाघव को देखकर मन मे विचार करने लगे—अर्जुन तो अग्नि मे भस्म हो गया, दूसरा अर्जुन कौन उत्पन्न हो गया ?

नरेशगण मन मे नाना भाति की कल्पना करने मे लगे हुए थे, तभी अर्जुन ने निरन्तर घूमते हुए चन्द्रक यन्त्र मे स्थित नेत्र की ओर अपने बाण का लक्ष्य साधा और निमिष मात्र मे लक्ष्य वेध कर दिया। तभी लज्जा से अवनतमुखी द्रौपदी दोनो हाथो मे वरमाला लिये हुए आगे बढी और अर्जुन के गले मे डाल दी। उस समय वायु वेग से चल रही थी, चारो भाई अर्जुन के पास खडे हुए थे। गले मे वरमाला डालते समय वह टूट गई और वायु के वेग से उडकर अर्जुन के साथ अन्य चारो भाइयो के ऊपर जा गिरी। किसी रसिक व्यक्ति ने विनोद मे कह दिया कि राजकुमारी ने पाँच कुमारो का वरण किया है। एक क्षणिक विनोद स्थाई किम्वदन्ती बन गया।

पाण्डव वधु वर-वधू को लेकर माता कुन्ती के पास ले चले। किन्तु कुछ मात्सर्यदग्ध नरेश एक अज्ञात कुलशील युवक को वरमाला धारण करते हुए देखकर उत्तेजित हो उठे और वे युद्ध के लिए तैयार हो गये। इधर अर्जुन, भीम और धृष्टद्युम्न ने भी अपने धनुष सभाल लिये। उन्होने अपने बाणो से युद्धलिप्सु नरेशो को रोक दिया। तव अर्जुन ने धृष्टद्युम्न के रथ पर आरूढ होकर अपना नामाङ्कित वाण गुरु द्रोणाचार्य के चरणो मे फेका। द्रोण, अश्वत्थामा भीष्म, विदुर आदि ने अर्जुन का नाम पढ कर पाचो पाण्डवो को पहचान लिया। सभी पाण्डवो को जीवित देखकर बड प्रसन्न हुए। सारा वातावरण ही बदल गया, हर्षनाद होने लगा, शखवादित्रो का तुमुल घोप होने लगा। नीतिविचक्षण दुर्योधन और उसके भाइयो ने बन्धु-समागम पर हर्ष व्यक्त किया और पाण्डवो का अभिनन्दन किया। अर्जुन और द्रौपदी का विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ। दुर्योधन पाँचो पाण्डवो के प्रति प्रेम प्रगट करता हुआ माता सहित उन्हे हस्तिनापुर ले गया और वहाँ कौरव और पाण्डव पूर्व के समान आधे-आधे राज्य का भोग करने लगे।

अज्ञातवास के समय युधिष्ठिर और भीम ने जिन कुल कन्याओ को स्वीकार करने का आश्वासन दिया था, उन्हे बुलाकर उनके साथ विवाह कर लिया। सब लोग आनन्दपूर्वक रहने लगे।

कौरवो और पाण्डवो का समय सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था। किन्तु कुटिल दुर्योधन पाण्डवो के वैभव और उत्कर्ष को देखकर ईर्ष्या से दग्ध रहता था, किन्तु प्रकट मे वह प्रेम प्रदर्शित करता था। एक बार दुर्योधन

पाडवो का पुनः अज्ञातवास

ने अपने भाइयो के साथ मन्त्रणा की कि पाण्डवो को किस प्रकार राज्यच्युत करके उनके राज्य पर अधिकार किया जाय। इस मन्त्रणा मे शकुनि भी सम्मिलित था। वह दुर्योधन का मामा था और अमात्य भी था। वह अत्यन्त धूर्त और कुटिल व्यक्ति था। द्यूत विद्या मे वह पारगत था। उसने परामर्श दिया—युधिष्ठिर धर्मनिष्ठ व्यक्ति है, किन्तु उन्हे द्यूत क्रीडा की वहुत रुचि है। उन्हे प्रेरित करके द्यूत क्रीडा के लिए तैयार करो। शर्त यह रहे कि पराजित पक्ष को वारह वर्ष अज्ञातवास मे रहना होगा। यदि उनका परिचय प्रगट हो जाय तो पुन वारह वर्ष का अज्ञातवास होगा। आप लोग चिन्ता न करे, मेरे कुटिल दाव को युधिष्ठिर समझ भी न पावगे और उन्हे पराजित होना पडेगा। युधिष्ठिर प्रतिज्ञा निभायेगे और उनके भाई उनकी आज्ञा का अतिक्रमण नही कर सकेंगे। इस प्रकार आप लोग निष्कण्टक राज्य भोगना।

धूर्त शकुनि का परामर्श सवको रुचिकर लगा। तदनुसार एक दिन दुर्योधन ने युधिष्ठिर से कहा—धर्मराज! मेरी इच्छा है कि हम दोनो शर्त रखकर द्यूत क्रीडा करे। इससे मनोरजन भी होगा और भाग्य-निर्णय भी होगा। इस क्रीडा मे जो पराजित होगा, उस पक्ष को वारह वर्ष पर्यन्त अज्ञातवास करना होगा। समय से पूर्व प्रगट होने पर पुन वारह वर्ष तक इसी प्रकार अज्ञातवास धारण करना होगा। क्या आप यह चुनौती स्वीकार करने के लिये तैयार हैं?

युधिष्ठिर क्षत्रिय थे। कोई उन्हे चुनौती दे और वे स्वीकार न करे, ऐसा क्या सभव था? उन्होने दुर्योधन की वात स्वीकार कर ली। चौसर विछ गई। दोनो पक्ष आ जुटे। युधिष्ठिर और दुर्योधन द्यूत क्रीडा मे उस युग के प्रख्यात विशेषज्ञ माने जाते थे। शकुनि इस विद्या का मर्मज्ञ था। पासे उसके इच्छानुवर्ती थे। वह इस विद्या के गूढ रहस्यो, कुटिल दावो और वचना-प्रवचनाओ मे कुशल था। ऐसे महारथियो की प्रतिद्वन्द्विता का समाचार चारो ओर फैल गया। कुतूहलवश दर्शक वहुसख्या मे आ जुटे।

पासे फेंके जाने लगे। दाव जीतने पर दर्शक ही नही, क्रीडको, परामर्षको, पक्षधरो के मुख से भी हर्ष-नाद निकल पडता था। वाजी जमी, खूव जमी। पहले युधिष्ठिर की निरन्तर विजय होती रही। युधिष्ठिर इससे उत्साहित होकर लम्वे दाव लगाने लगे। कुटिल शकुनि की यह भी एक चाल थी, वह दाना डालकर चिडिया को फसाना चाहता था।

कुछ समय वाद वाजी वदली। पासे युधिष्ठिर को धोका देने लगे, वे ही दुर्योधन की इच्छानुकूल पडने लगे। कहाँ प्रवचना है, इसे पाण्डव नही समझ पाये। कौरव प्रसन्न थे। शकुनि युधिष्ठिर को वडा दाव लगाने को वार-वार प्रोत्साहित करता। गया हुआ वापिस प्राप्त करने की सभावना से युधिष्ठिर मूढो के समान अधिक-अधिक लगाते गये और हारते गये। अन्त मे सव कुछ दाव पर लगा दिया और सव कुछ चला गया। अव पाण्डवो को वहाँ से चले जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही वचा था। नीतिज्ञ वृद्ध जन कह रहे थे—पाण्डवो के साथ धोका हुआ है, अन्याय हुआ है। चारो भाई भी क्षुब्ध थे, वे अन्याय का प्रतीकार करने को तत्पर थे। किन्तु युधिष्ठिर ने उन्हे शान्त कर दिया। प्रतिज्ञा के अनुसार वे चारो भाइयो को लेकर चल दिये। उनके साथ केवल द्रौपदी ही गई।

पाण्डव चलते-चलते कालाजला अटवी मे पहुँचे। उस वन मे असुरोद्गीत नगर का प्रकीर्णकासुरी का पुत्र सुतार नामक विद्याधर किरात का वेष धारण करके अपनी हृदयवल्लभा कुसुमावली के साथ क्रीडा कर रहा था। अर्जुन भ्रमण करते हुए उधर ही जा निकला। किरात अर्जुन के आगमन से वडा क्रोधित होकर धनुष-वाण लेकर मारने दौडा। अर्जुन ने भी अपना गाण्डीव सम्हाल लिया। दोनों मे भयकर युद्ध होने लगा। फिर बाहु युद्ध हुआ। अर्जुन ने किरात की छाती पर कस कर मुष्टिका-प्रहार किया। इससे वह अस्त-व्यस्त हो गया। पति की दुर्दशा देखकर विद्याधरी दीनतापूर्वक अर्जुन से पति के प्राणों की भिक्षा मांगने लगी। अर्जुन ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके किरात को छोड़ दिया।

तदनन्तर विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते हुए पाण्डव रामगिरि पहुँचे। यह वही पवित्र क्षेत्र था—जहाँ राम, लक्ष्मण और सीता के साथ ठहरे थे और जहाँ उन्होंने सैकड़ों जिनालय बनवाये थे। पाण्डव लोग उन्हीं

जिनालयो मे दर्शन-पूजन करते थे। वह स्थान उन्हे इतना रुचिकर लगा कि वे वहाँ ११ वर्ष तक ठहरे।

पाण्डव विराट नगर मे—वहाँ से वे चलकर विराटनगर पहुँचे। वहाँ विराट नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम सुदर्शना था। पाडवो और द्रौपदी ने वेप वदल कर विराट के यहाँ नोकरी करली। द्रौपदी को सैरन्ध्री का काम मिला। वह रानी के शरीर मे तेल मर्दन और शृगार का कार्य करती थी। उन्ही दिनो रानी सुदर्शना का सहोदर कीचक अपनी वहन से मिलने आया। कीचक वडा वलवान, दुष्ट और क्रूरकर्मा था।

एक दिन उसने द्रौपदी को देख लिया। देखते ही वह उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गया। वह नाना उपायो से द्रौपदी को आकर्षित करने का प्रयत्न करने लगा, किन्तु द्रौपदी ने उसकी ओर एक वार देखा तक नही। जव उसकी चेष्टाये सीमा का अतिक्रमण करने लगी, तव एक दिन अवसर पाकर द्रोपदी ने भीमसैन से उसकी शिकायत कर दी। सुनते ही भीमसैन क्रोध से उवल पडा। उसने द्रौपदी को उपाय वता दिया, जिसके अनुसार द्रौपदी ने कीचक को सायकाल के समय एकान्त स्थान मे मिलने का सकेत कर दिया। यथासमय कीचक उस स्थान पर पहुँचा। द्रौपदी का वेष धारण करके भीमसैन भी उस अन्धकारपूर्ण मिलन-स्थान पर जा पहुँचा। काम विह्वल कीचक ज्यो ही आलिगन के लिए आगे वढा, भीमसैन ने कीचक के गले मे दोनो भुजाये डाल कर ऐसा आलिगन किया कि कीचक भूमि पर जा गिरा। भीम ने उसकी छाती पर चढकर कस कर मुष्टिका प्रहार किये, जिससे उसका अग-अग चूर-चूर हो गया। इस प्रकार उसकी परस्त्री विषयक आकाक्षा का पूर्णकर दयालु भीमसैन ने 'जा पापी तुझे आज छोडे देता हू' यह कहकर छोड दिया। भयकर रूप से दण्डित और अपमानित होने से कीचक को वैराग्य हो गया। उसने मुनि-दीक्षा लेली। मुनि वनकर कीचक घोर तप करने लगे और निरन्तर आत्मा की निर्मलता वढाते रहे। आयु के अन्त मे समस्त कर्मो का नाश करके वे जन्म-मरण से मुक्त हो गये।

जव कीचक के सौ भाइयो को कीचक की दुर्दशा और अपमान का समाचार ज्ञात हुआ तो वे लोग वहाँ आये और सैरन्ध्री को ही इसका कारण समझ कर उसे एक जलती हुई चिता मे डालने का उपक्रम करने लगे। भीम ने वहाँ पहुँचकर उन सवको यमधाम पहुँचा दिया।

दुर्योधन निश्चिन्त नही वैठा था। उसे अपने विश्वस्त चरो द्वारा समाचार प्राप्त हुआ कि एक ही व्यक्ति ने कीचक के महावलवान सौ भाइयो का वध कर दिया है। इस समाचार से उसे सन्देह हो गया कि हो न हो, यह कार्य भीम ने किया है। फिर भी उसने अपने सन्देह की निवृत्ति के लिए एक उपाय किया। उसने एक सेना विराट नगर की ओर भेजी। सेना ने विराट नगर के वाहर राजा विराट की चरती हुई गायो को घेर लिया और उन्हें हाँक कर ले जाने लगी। रोते चिल्लाते ग्वालो ने आकर यह समाचार राजा को दिया। विराट ने तत्काल अपनी सेना भेज दी। यह समाचार अर्जुन के कानो मे भी पडा। वह विराट की पुत्री उत्तरा को नृत्य विद्या सिखाने के कार्य मे नियुक्त था। उसने महाराज से एक रथ और उपयुक्त शस्त्रास्त्र देने की प्रार्थना की। राजा ने वैसा ही किया। अर्जुन रथ मे आरूढ होकर युद्ध स्थल की ओर रवाना हुआ। मार्ग मे उसने एक शमी वृक्ष पर छिपाये हुए अपने गाण्डीव धनुष और शस्त्रास्त्रो को उतारा और जाकर कौरव सेना पर भयकर वेग से आक्रमण कर दिया। नकुल और सहदेव दोनो भ्राता तलवार मे पटु थे। वे भी अपने शस्त्रो से सज्जित होकर मोर्चे पर पहुँचे। उन तीनो भाइयो के हस्तलाघव और वीरता के आगे कौरव सेना युद्ध क्षेत्र और गायो को छोडकर प्राण वचाकर भागी।

अव दुर्योधन को सन्देह का कोई कारण शेष नही रहा। उसे विश्वास हो गया कि पाण्डव विराट नगर मे छद्म वेष मे अज्ञातवास का काल यापन कर रहे हैं। किन्तु अज्ञातवास का काल समाप्त हो गया था। अत पाण्डव पुन, हस्तिनापुर को लौट गये और वहाँ राज्य-शासन करने लगे।

किन्तु कौरव शान्त रहने वाले नही थे। उन्होने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि पाण्डव अज्ञातवास के निश्चित समय से पूर्व आ गये हैं। अत उन्हे वारह वर्ष का अज्ञातवास पुन स्वीकार करना चाहिए। सन्धि की यह शर्त वहुत स्पष्ट है। कौरवो की ये अनर्गल वातें सुनकर भीम आदि चारो भाई उत्तेजित हो जाते, किन्तु

युधिष्ठिर नही चाहते थे कि भाइयो मे परस्पर कटुता उत्पन्न हो। अत उन्होने राज्य का परित्याग करके अपने भाइयो के साथ बाहर जाना ही उचित समझा। अतः वे दक्षिण की ओर चले गये। वे यात्रा करते-करते विन्ध्यवन मे पहुँचे। वहाँ एक आश्रम मे तपस्या करते हुए महामना विदुर मिले। पाण्डवो ने उन्हे सम्मानपूर्वक नमस्कार किया। वहाँ से चलकर वे लोग द्वारिका पुरी मे पहुँचे। उनके आगमन का समाचार सुनते ही समस्त यादव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। महाराज समुद्र विजय आदि दसो भाई, नेमिनाथ, बलभद्र-कृष्ण आदि समस्त यादवप्रमुख पाण्डवो के आगमन पर अत्यन्त हर्षित हुए। यादव और पाण्डव परस्पर प्रेमपूर्वक मिले। स्वागत सम्मान के बाद श्रीकृष्ण ने उन्हे सम्पूर्ण भोगोपभोग सामग्री से युक्त प्रासादो मे पृथक्-पृथक् ठहरा दिया। वहा रहते हुए उनका विवाह पाच यादव राजकुमारियो के साथ हो गया—युधिष्ठिर का लक्ष्मीमती के साथ, भीम का शेषवती के साथ, अर्जुन का सुभद्रा के साथ, नकुल का रति के साथ और सहदेव का विजया के साथ।

पाण्डव द्वारिका मे

एक बार कुछ व्यापारी राजगृह पहुँचे। वे सम्राट् जरासन्ध की राज्य सभा मे पहुँचे और उन्हे अनर्घ्य रत्न अर्पित किये। जरासन्ध ने उन रत्नो को बडे विस्मय से देखा और पूछने लगा—ये बहुमूल्य रत्न तुम्हे कहाँ प्राप्त हुए ? व्यापारियो ने उत्तर दिया—राजन् ! हम लोग सिंहल, स्वर्णद्वीप आदि देशो मे व्यापार के निमित्त भ्रमण करते हुए द्वारिकापुरी पहुँचे। उस नगरी की समृद्धि और सम्पन्नता को देखकर हम विस्मित रह गये। वहाँ महा पराक्रमी श्रीकृष्ण राज्य करते है। जब महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी के तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म हुआ, उससे पन्द्रह मास पूर्व से उस नगरी मे देवो ने रत्न वर्षा की। उन्ही रत्नो मे से कुछ रत्न हम लोग आपकी सेवा मे लेकर आये है। व्यापारियो की यह बात सुनकर और यादवो की सुख-समृद्धि की बात जानकर जरासन्ध अत्यन्त कुपित होकर बोला—मै तो समझता था कि यादव मेरे भय से पलायन करते हुए जलती हुई चिताओ मे जल मरे है। मुझे अब तक ज्ञात ही नही हुआ कि मेरे शत्रु, मेरे दामाद और पुत्रो-बाधवो को मारने वाले अधम यादव अब तक जीवित है और सम्पन्नता का जीवन व्यतीत कर रहे है। क्या अपने चरो की इसी योग्यता के बल पर गिरिव्रज का शासन अपने सम्राट् का शासनादेश स्थिर रख सकेगा। अब तक मेरे अमात्य ही मुझे और स्वय को धोका देते रहे है। जब तक मुझे ज्ञात नही था, तब तक मेरे शत्रु जीवित रहे। अब ज्ञात हो गया है तो वे मेरे विमुख रहकर एक क्षण भी जीवित नही रह सकेगे। अभी मेरे सभी मित्र नरेशो के पास सेना सहित उपस्थित होने की सूचना भेज दी जाय। अभी यादवो के विरुद्ध अभियान करके उन्हे शीघ्र समूल विनष्ट करना है।

यादव कुल के प्रति जरासन्ध का कोप

मत्रियो ने अपने सम्राट् को नेमिनाथ-बलभद्र और श्रीकृष्ण के अजेय बल-विक्रम की बात बताकर निवेदन किया—देव ! यादवो की शक्ति इस समय अजेय है। उनसे सामनीति के अनुसार शान्ति-सन्धि करना अधिक विवेकपूर्ण रहेगा।

जरासन्ध ने मत्रियो के इस परामर्श की उपेक्षा करके अपने मित्र नरेशो के पास सहायता के उद्देश्य से राजदूत भेज दिये तथा एक चतुर दूत द्वारिकापुरी के लिए भी भेज दिया। जरासन्ध का वह राजदूत अजितसेन द्वारिका पुरी पहुँचा और यादवो की राज्य सभा मे पहुँचा। यादवो ने उसका समुचित आतिथ्य करके उपयुक्त स्थान दिया। राजदूत ने अपने प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करके अपने आने का उद्देश्य बताते हुए कहा—राजन्यवर्ग ! समस्त यादवगण सुने। परम भट्टारक चक्रवर्ती सम्राट् जरासन्ध के मन मे यादवो के प्रति कोई दुर्भावना नही है। उनके भय से आप लोग अपनी जन्म-भूमि त्याग कर समुद्र के बीच मे आकर बस गये है। चक्रवर्ती आपको आश्वासन देते है कि यदि आप चाहे तो पुन अपनी जन्म-भूमि मे लौट जाये, उन्हें इसमे कोई आपत्ति नही है। यदि आप लोग यही निवास करना चाहे तो भी चक्रवर्ती की आपके ऊपर कृपा-दृष्टि रहेगी। सम्राट् आप लोगो के हित मे और शान्ति एव सौहार्द के महान प्रयोजनवश केवल यह चाहते है कि आप लोग उन्हे नमस्कार करके अपना सम्राट् स्वीकार कर ले और उनकी छत्रछाया मे निर्बाध राज्य-सुख का भोग करें। यदि सम्राट् की आज्ञा का पालन नही हुआ तो यादव कुल का विनाश अनिवार्य है।

दूत के राजनयिक निवेदन का विपरीत ही प्रभाव पडा। स्वाभिमानी और स्वातन्त्र्य प्रेमी यादव किसी सम्राट् की दासता को अगीकार करने को तत्पर नही थे। महाराज श्रीकृष्ण ने दूत को सबोधन करते हुए उत्तर दिया—'शृगाल की मृत्यु आती है तो वह नगर की ओर जाता है। तुम्हारा वह दम्भी राजा सेना सज्जित करके यादव कुल के विरुद्ध अभियान करना चाहता है, यादव कुल रणभूमि मे आकर उसका स्वागत करेगा और उसके दर्प का समुचित उत्तर देगा। यादव कुल का यह उत्तर अपने राजा से जाकर कह देना।'

यह कह कर उन्होने दूत को वहाँ से विदा कर दिया। दूत ने यादवो का यह उत्तर अपने सम्राट् को निवेदन कर दिया।

इधर यादवो ने परिवर्तित परिस्थिति पर मन्त्रणागार मे मन्त्रणा की। निर्णय हुआ कि यादवो को कुछ अवसर प्राप्त करने के लिये जरासन्ध से कुछ निश्चित अवधि के लिए शान्ति-सन्धि कर लेना उपयुक्त होगा। इस कार्य के लिए कुमार लोहजघ को भार सौपा गया। कुमार लोहजघ शूरवीर, चतुर, व्यवहार कुशल और नीतिज्ञ पुरुष था। वह गिरिव्रज पहुँच कर जरासन्ध से मिला। उसने उसे समझाया कि युद्ध से दोनो पक्षो की ही जन-धन-हानि होगी। यह बुद्धिमत्तापूर्ण होगा कि सम्राट् और यादव कुल मे एक सीमित अवधि के लिए शान्ति सन्धि निष्पन्न हो जाय। अवधि के पश्चात् इसका पुनर्नवीकरण करने अथवा अन्यथा प्रवृत्ति करने का दोनो पक्षो को अधिकार होगा। यादवो के इस नीतिज्ञ राजदूत की तर्कसगत बातो का जरासन्ध पर भी प्रभाव पडा। वह भी तैयारी के लिए कुछ समय चाहता था। अन्त मे दोनो पक्षो की पारस्परिक सहमति द्वारा एक वर्ष की शान्ति सन्धि पर दोना ओर के हस्ताक्षर हो गये।

कुरुक्षेत्र मे महाभारत युद्ध

एक वर्ष की अवधि के पश्चात् जरासन्ध विशाल वाहिनी लेकर कुरुक्षेत्र के विस्तृत मैदान मे जा पहुँचा। श्रीकृष्ण भी अपनी सेना सज्जित करके वहाँ जा डटे। श्रीकृष्ण के पक्ष मे समस्त यादवो के अतिरिक्त पाण्डव, दशार्ह, भोज, पाण्ड्य, इक्ष्वाकु वशी मेरू, राष्ट्रवर्धन, सिंहल, बर्बर, यमन, आभीर, काम्बोज, द्रविड देश के नरेश, शकुनि का भाई चारुदत्त, पद्मरथ, आदि अनेक नरेश थे। इनके पक्ष मे सात अक्षौहिणी सेना[1] थी। दूसरी ओर जरासन्ध के पक्ष मे कौरवो के अतिरिक्त गान्धार, सिन्ध, मध्य देश के नरेश कर्ण आदि नरेश थे। उसकी सेना का सख्या-बल ग्यारह अक्षौहिणी था।

दोनो पक्षो की सेनाये जब आमने-सामने डट गई, तब कुन्ती बडी चिन्तित हो गई। वह युधिष्ठिर आदि पुत्रो की सहमति से कर्ण के पास पहुँची। उसने कर्ण को कण्ठ से लगाकर उसे सम्पूर्ण वृत्तान्त प्रारम्भ से

---

१ अक्षौहिण्यामित्यधिकै सप्तत्या ह्यष्टभि शतै ।
सयुक्तानि सहस्राणि गजानामेकविंशति ॥
एवमेव रथाना तु सख्यान कीर्तित बुधै ।
पञ्चषष्टि सहस्राणि षट्शतानि दशैव तु ॥
सख्यातास्तुरगास्तज्ज्ञैर्विना रथतुरगमै ।
नृणा शतसहस्राणि सहस्राणि तथा नव ।
शतानि त्रीणि चान्यानि पञ्चाशच्च पदातय ॥

—अमरकोश टीका

भारते अक्षौहिणी प्रमाणम्—

अक्षौहिण्या प्रमाण तु खाङ्गाष्टैकद्विकैर्गजै ।
रथैरेतैर्हयैस्त्रिघ्नै पञ्चघ्नैश्च पदातिभि ॥

—एक अक्षौहिणी मे २१८७० हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० अश्व, १०९३५० पदाति सैनिक होते हैं।

माता कुन्ती और कर्ण की भेंट

अन्त तक का सुनाया कि किस प्रकार लोक-लाज के कारण उसने अपने पुत्र को कम्बल मे लपेट कर छोड दिया था। फिर बोली—पुत्र ! मै तेरी अपराधिनी हूँ, किन्तु तू है तो पाण्डु-कुल का ही एक रत्न और युधिष्ठिर आदि पाडवो का अग्रज। वत्स ! चल वहां, जहा तेरे बन्धु-बान्धव है और कुरु-वश का स्वामी तू ही है। तू कृष्ण और बलदेव के लिए प्राणो से भी प्रिय है। चलकर तू अपना राज्य सभाल। युधिष्ठिर तेरे ऊपर छत्र लगायेगा, भीम चवर ढोरेगा, धनजय तेरा मन्त्री बनेगा, नकुल और सहदेव तेरे द्वारपाल होगे। फिर तुम सबकी हितकामना करने वाली तुम्हारी माता तुम्हारे साथ है।'

कर्ण माता के स्नेह रसपूरित वचन सुनकर द्रवित हो उठा, किन्तु जरासन्ध ने उसके प्रति जो उपकार किये थे, उन्हे भूलकर वह कृतघ्न नही बनना चाहता था। अत वह बोला—'ससार मे माता, बन्धु-बाधव दुर्लभ है, यह मैं जानता हूँ, किन्तु युद्ध उपस्थित होने पर स्वामी का कार्य छोडकर बन्धु-बान्धवो का कार्य करना अनुचित होगा। मै वचन देता हूँ कि मैं अपने भाइयो के साथ युद्ध न करके अन्य योद्धाओं के साथ युद्ध करूँगा। यदि युद्ध के पश्चात् हम लोग जीवित रहे तो बन्धुओ के साथ समागम अवश्य होगा।' इतना कहकर उसने माता कुन्ती के चरणो का स्पर्श किया।

व्यूह-रचना—जरासन्ध के पक्ष ने चक्र-व्यूह की रचना की। इस चक्रव्यूह मे सेना की चक्राकार रचना की गई। इस चक्र के एक हजार आरे थे। उसकी रक्षा के लिए एक-एक आरे पर एक-एक राजा अपनी सेना के साथ उपस्थित था। चक्र के मध्य भाग मे जरासन्ध स्थित था। उसकी रक्षा के लिये कर्ण, दुर्योधन आदि सौ भाई, गान्धार, सिन्ध और मध्य देश के राजा सन्नद्ध खडे थे। जरासन्ध ने राजा हिरण्यनाभ को आज का सेनापति नियुक्त किया।

दूसरी ओर वसुदेव ने चक्रव्यूह के उत्तर मे गरुड व्यूह की रचना की। इस व्यूह के मुख पर यादव कुमार नियुक्त किये गये। अतिरथ, बलदेव और श्रीकृष्ण उसके मस्तक पर स्थित हुए। वसुदेव के पुत्र अक्रूर, कुमुद, वीर, सारण, विजय, जय, पद्म, जरत्कुमार, सुमुख, दुर्मुख, दृढमुष्टि, विदूरथ और अनावृष्टि बलदेव और श्रीकृष्ण के रथ की रक्षा करने के लिए पृष्ठरक्षक नियुक्त किये गये। राजा भोज गरुड के पृष्ठ भाग पर स्थित हुआ और धारण, सागर आदि अनेक वीर भोज के पृष्ठरक्षक बनाये गये। महाराज समुद्रविजय गरुड के दाये पक्ष पर स्थित हुए। बलदेव-पुत्र और पाण्डव गरुड के बाये पख पर स्थित हुए। उनके पृष्ठ भाग पर सिहल, बर्बर, कम्बोज, केरल, कोसल और द्रमिल देश के राजा नियत किये गये।

तभी अनेक विद्याधर नरेश अपनी-अपनी सेनाये लेकर वसुदेव के पक्ष मे आ मिले। उनसे यह भी समाचार मिला कि विद्याधरो की एक विशाल सेना जरासन्ध की सहायता करने के लिए आने वाली है। तब मन्त्रणा करके यादव प्रमुखो ने उन्ही विद्याधर नरेशो के साथ प्रद्युम्न, शम्ब आदि पुत्रों सहित वसुदेव को विजयार्ध पर्वत की ओर इस शत्रु विद्याधर सेना का प्रतिरोध करने के लिए भेज दिया।

सभी वीर युद्ध के लिए सन्नद्ध थे। वीरो की भुजाये अपना कौशल प्रस्तुत करने के लिए फडक रही थी। महाबली बलदेव कुबेर द्वारा समर्पित दिव्य अस्त्रो से परिपूर्ण सिह रथ पर आरूढ हुए। महामना श्रीकृष्ण गरुडाकित पताका से सुशोभित दिव्य अस्त्र शस्त्रो से परिपूर्ण गरुड रथ मे विराजमान हुए। भगवान नेमिनाथ इन्द्र द्वारा प्रेषित और मातलि सारथी से युक्त रथ मे जा विराजे। उनकी दिव्य कांति से सम्पूर्ण युद्ध-भूमि प्रभासित थी। तब यादव प्रमुखो ने परामर्श करके वसुदेव के महावीर पुत्र अनावृष्टि को सेनापति बनाकर उसके ललाट पर कुकुम का तिलक लगाया।

युद्ध का भेरी-घोष—दोनो पक्षो मे युद्ध प्रारम्भ करने की सूचना देने वाले शख और भेरियो का तुमुल घोष होने लगा। भेरी-घोष सुनते ही दोनो सेनाये परस्पर जूझ पडी। गज सेना गज सेना के साथ, अश्व सेना अश्व सेना के साथ, रथारोही रथारोहियो के साथ और पदाति पदातियो के साथ भिड गये। वीरो की हुकारो और ललकारो, धनुष की टकारो, हाथी और घोडो की चीत्कारो से दसो दिशाये फटने-सी लगी।

जरासन्ध की सेना ने यादव सेना को दवाना प्रारम्भ कर दिया। यह देख कर नेमिनाथ, अर्जुन और अनावृष्टि श्रीकृष्ण के सकेत पर आगे वढे। भगवान नेमिनाथ ने इन्द्र द्वारा प्रदत्त ऐन्द्र, अर्जुन ने देवदत्त और सेनापति अनावृष्टि ने वलाहक शख फूका। शख-ध्वनि सुनते ही यादव-सेना मे उत्साह भर गया। अनावृष्टि ने चक्रव्यूह का मध्य भाग, नेमिनाथ ने दक्षिण भाग और अर्जुन ने पश्चिमोत्तर भाग क्षणमात्र मे भेद दिया। तव प्रतिपक्ष का सेनापति हिरण्यनाभ अनावृष्टि के साथ, रुक्मी नेमिनाथ के साथ और दुर्योधन अर्जुन के साथ भिड गये। भगवान नेमिनाथ ने भयकर वाणवर्षा से रुक्मी को रथ के नीचे गिरा दिया और असख्य वीरो को तितर-वितर कर दिया। उपयुक्त अवसर पाकर पाँचो पाण्डवो ने कौरवो के साथ भयकर युद्ध किया। युधिष्ठिर शल्य के साथ, भीम दु-शासन के साथ, सहदेव शकुनि के साथ और नकुल उलूक के साथ युद्ध करने लगे। पाण्डवो ने दुर्योधन के अनेक भाइयो को मार डाला, जो जीवित रह गये, उन्हें मृतक के समान कर दिया।

उधर दोनो पक्षो के सेनापतियो का लोमहर्षक द्वन्द्व युद्ध हो रहा था। हिरण्यनाभ ने अनावृष्टि को वाण वर्षा द्वारा सत्ताईस वार आहत किया। उत्तर मे अनावृष्टि ने अपने भयकर वाणो द्वारा सौ व्रण दिये। हिरण्यनाभ ने अनावृष्टि की ध्वजा भग कर दी और अनावृष्टि ने उसके धनुष, छत्र और सारथि को भेद दिया। हिरण्यनाभ ने दूसरा धनुष, सभाल लिया तो अनावृष्टि ने उसका रथ तोड दिया। तव हिरण्यनाभ तलवार हाथ मे लेकर कूद पडा। अनावृष्टि ने भी तलवार और ढाल लेकर उसका सामना किया। दोनो वीरो मे भयानक युद्ध हुआ। अन्त मे अनावृष्टि ने हिरण्यनाभ पर घातक प्रहार किया। उससे उसकी दोनो भुजायें कटकर अलग जा पडी, छाती फट गई और निष्प्राण होकर भूमि पर गिर पडा। सेनापति के गिरते ही शत्रु-सेना प्राण लेकर भागने लगी। यादव-सेना मे हर्ष-नाद होने लगा। वलदेव और श्रीकृष्ण ने चक्रव्यूह का भेदन करने वाले भगवान नेमिनाथ, अर्जुन और सेनापति अनावृष्टि का प्रेमपूर्ण आलिंगन किया। प्रथम दिन के युद्ध मे यादवो की विजय हुई और शत्रु सेना मे शोक छा गया।

श्रीकृष्ण द्वारा जरासन्ध का वध—दूसरे दिन सूर्योदय होते ही मैदान मे दोनो सेनायें आ डटी। व्यूह-रचना पूर्ववत् की गई। तव रथ मे आरूढ जरासन्ध अपने मत्री हसक से बोला—हसक! मुझे यादव पक्ष के महावीरो के नाम, चिन्ह और परिचय वता, जिससे मैं उन्ही का वध करू, अन्य साधारण जनो के वध से क्या लाभ है।

तव हसक अपने स्वामी को शत्रु पक्ष के सेनानियो का परिचय देते हुए कहने लगा—'देव! स्वर्ण शृखलाओ से युक्त श्वेत अश्वो और गरुड ध्वजा वाला श्रीकृष्ण का रथ है। स्वर्ण साँकलो वाला, हरे अश्वो वाला और वृषभ ध्वजा वाला अरिष्टनेमि का रथ है। कृष्ण के दाईं ओर रीठा के समान वर्ण वाले अश्वो और ताल ध्वज वाला वलदेव का रथ है। इसी प्रकार अमात्य ने अनावृष्टि, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, समुद्र विजय, अक्रूर, सात्यकि, भोज, जरत्कुमार, सिंहल, मरुराज पद्मरथ, सारण, मेरुदत्त, विदूरथ आदि महारथियो का परिचय दिया।

सवका परिचय पाकर जरासन्ध ने सारथि को आदेश दिया - 'सारथि! मेरा रथ यादवो की ओर ले चल। तव जरासन्ध और उसके पुत्रो ने यादव सेना पर वाण-वर्षा करके उसे व्याकुल कर दिया। जरासन्ध के पुत्र कालयवन ने अनेक यादव कुमारो के शिर छेद दिये। तव क्रुद्ध होकर सारण आगे वढा और उसने खड्ग के एक ही तीव्र प्रहार मे कालयवन को यमराज के घर भेज दिया। जरासन्ध के अन्य पुत्र प्रतिरोध करने आगे वढे, उन्हे श्रीकृष्ण ने अपने घातक वाणो से सदा के लिए सुला दिया।

पुत्रो की मृत्यु से भयकर क्रोध मे भरकर अपने नेत्रो से आग वरसाता हुआ जरासन्ध श्रीकृष्ण के समक्ष पहुँचा। दोनो अप्रतिम वीरो मे उस समय दारुण युद्ध हुआ। जरासन्ध ने दिव्य नागास्त्र छोडा। कृष्ण सावधान थे। उन्होने गरुडास्त्र छोडकर उसे व्यर्थ कर दिया। तब जरासन्ध ने प्रलयकाल के मेघ के समान वर्षा करने वाला सवर्तक अस्त्र छोडा तो श्रीकृष्ण ने महाश्वसन नामक अस्त्र के द्वारा भयकर आँधी चलाकर उसे दूर कर दिया। इस प्रकार दोनो वीर वायव्य अस्त्र, अन्तरीक्ष अस्त्र, आग्नेय वाण, वारुणास्त्र, वैरोचन अस्त्र, माहेन्द्र अस्त्र, राक्षसवाण, नारायण वाण तामसास्त्र, भास्कर वाण, अश्वग्रीव वाण, व्रह्मशिरस वाण आदि दिव्य शस्त्रास्त्र चलाते और

एक दूसरे को छकाते रहे। जब जरासन्ध के सभी दिव्यास्त्रो को कृष्ण ने निष्प्रभ कर दिया, तो जरासन्ध ने हजार यक्षो द्वारा रक्षित चक्ररत्न को स्मरण किया। स्मरण करते ही चक्ररत्न समस्त दिशाओ को प्रकाशित करता हुआ उसकी उ गली पर आकर ठहर गया। तब उसने वह चक्ररत्न श्रीकृष्ण की ओर फेका। उस प्रकाशमान चक्ररत्न को आते हुए देखकर समस्त यादव सेना मे आतक छा गया। समस्त यादवपक्षी वीर उस चक्ररत्न को रोकने का प्रयत्न करने लगे। सभी वीर भय से अस्थिर हो रहे थे, केवल एक ही व्यक्ति स्थिर और शान्त था और वे थे भगवान नेमिनाथ, वे अवधिज्ञान के द्वारा इसका परिणाम जानते थे। इसलिए वे श्रीकृष्ण के पास शान्त भाव से खडे हुए देख रहे थे। वह कान्तिमान चक्ररत्न धीरे-धीरे बढता हुआ आया। उसने भगवान नेमिनाथ और श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा दी और श्रीकृष्ण के शख, चक्र, अकुश से चिन्हित दाये हाथ पर आकर ठहर गया। उसी समय आकाश मे देव-दुन्दुभि बजने लगी, पुष्प वर्षा होने लगी, यह नौवा नारायण है, इस प्रकार देव कहने लगे। सुगन्धित पवन बहने लगा।

जरासन्ध को अपनी मृत्यु का निश्चय हो गया, किन्तु वह वीर निर्भय होकर बोला—अरे गोप! एक चक्र चला गया तो क्या हुआ, मेरे पास अभी बल और शस्त्रास्त्र सुरक्षित है। तू इसे चला कर देख ले।

स्वभाव से धीर गम्भीर श्रीकृष्ण शान्त भाव से बोले—'अब तो तुम्हे विश्वास हो गया होगा कि मैं नारायण हूँ। यदि अब भी तुम मेरी आधीनता स्वीकार करके मुझे नमस्कार करो तो मे तुम्हे क्षमा कर सकता हूँ।' किन्तु जरासन्ध गर्व से बोला—'इस कुम्हार के चाक को पाकर तुझे व्यर्थ ही अभिमान हो गया है। मैं समस्त यादवो सहित तुझे अभी यमपुर पहुँचाता हूँ।

श्रीकृष्ण ने कुपित होकर घुमाकर चक्ररत्न छोडा। उसने शीघ्र ही जरासन्ध के वक्षस्थल को भेद दिया। जरासन्ध टूटे हुए वृक्ष के समान निष्प्राण होकर भूलु ठित हो गया। चक्ररत्न पुनः लौट कर श्रीकृष्ण के हाथ मे आ गया। श्रीकृष्ण ने अपना पाँचजन्य शख फू का। भगवान नेमिनाथ, अर्जु न और सेनापति अनावृष्टि ने भी अपने-अपने शख फू के। शत्रु-सेना मे अभय घोषणा कर दी गई। सब श्रीकृष्ण के आज्ञाकारी बन गये। दुर्योधन, द्रोण, दु शासन, कर्ण आदि ने विरक्त होकर मुनि-दीक्षा ले ली।

दूसरे दिन जरासन्ध आदि मृत व्यक्तियो का सम्मानपूर्वक दाह सस्कार किया गया। इधर शत्रु-पक्ष तो पराजित हो गया था, किन्तु वसुदेव अपने पुत्रो और पौत्रो के साथ विद्याधरो के प्रतिरोध के लिए गये थे, किन्तु वे अभी तक नही लौटे थे, न कोई समाचार ही मिला था। यादव इसी चिन्ता मे बैठे हुए थे। तभी अनेक विद्याधरियाँ वेगवती, नागकुमारी के साथ आकाश-मार्ग से आई। आकर उन्होने सबको नमस्कार किया और यह शुभ समाचार सुनाया कि विद्याधरो के ऊपर वसुदेव ने विजय प्राप्त कर ली है और सभी विद्याधर उनके आज्ञानुवर्ती बन गये हैं। वे कुछ समय मे आने ही वाले हैं। तभी विमानो मे विद्याधरो के साथ वसुदेव और उनके सभी पुत्र और पौत्र आये। आकर सब विद्याधरों ने नारायण कृष्ण और बलभद्र बलदेव के चरणो मे नमस्कार किया। वसुदेव ने अपने दोनो विजयी पुत्रो का आलिंगन किया, दोनो ने पिता के चरणो मे नमस्कार किया। फिर वसुदेव और पुत्रो पोत्रो ने महाराज समुद्रविजय आदि को नमस्कार किया।

महाभारत युद्ध मे विजय प्राप्त करके श्रीकृष्ण और बलदेव दिग्विजय के लिए निकले। उन्होंने अल्प समय मे ही भरत क्षेत्र के तीन खण्डो अर्थात् अर्ध भरत क्षेत्र के सभी राजाओ पर विजय प्राप्त कर ली। तब वे दक्षिण दिशा से कोटिशिला पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर श्रीकृष्ण ने उस एक योजन ऊँची, एक योजन लम्बी और एक योजन चौडी शिला की पूजा करके उसे अपनी भुजाओ से चार अ गुल ऊपर उठा लिया। प्रथम त्रिपृष्ठ नारायण ने इस शिला को भुजाओ से सिर से ऊपर उठाया था। द्वितीय नारायण ने मस्तक तक, तीसरे स्वयभू ने कण्ठ तक, चौथे पुरुषोत्तम ने वक्षस्थल तक, पाचवें नृसिंह ने हृदय तक, छठवें पुण्डरीक ने कमर तक, सातवें दत्तक ने जाँघो तक, आठवें लक्ष्मण ने घुटनो तक और नौवें नारायण श्रीकृष्ण ने उसे चार अ गुल ऊपर तक उठाया। शिला उठाने के कारण समस्त नरेशो और सेना ने उन्हें नारायण स्वीकार कर लिया।

श्रीकृष्ण द्वारा दिग्विजय

दिग्विजय करके श्रीकृष्ण और बलराम द्वारिका वापिस आये। समस्त नरेशो नें दोनो भाइयो को अर्ध-चक्रीश्वर पद पर आसीन करके अभिषिक्त किया। फिर श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के द्वितीय पुत्र सहदेव को मगध का राज्य प्रदान किया। उग्रसैन के पुत्र द्वार को मथुरा का, महानेमि को शौर्यपुर का, पाण्डवो को हस्तिनापुर का, राजा रुधिर के पौत्र रुक्मनाभ को कोशल देश का राज्य प्रदान किया।

श्रीकृष्ण का वैभव अपार था। उनके पास सुदर्शन चक्र, शार्ङ्ग धनुष, सौनन्दक खड्ग, कौमुदी गदा, अमोघ-मूला शक्ति, पाचजन्य शख, कौस्तुभ मणि ये सात दिव्य रत्न थे। इसी प्रकार बलदेव के पास अपराजित हल, गदा, मूसल, शक्ति और माला ये पाच दिव्य रत्न थे। नारायण की आज्ञा शिरोधार्य करने वाले राजाओ की सख्या सोलह हजार थी। उनकी सोलह हजार रानियाँ थी तथा वलदेव की आठ हजार रानियाँ थी। श्रीकृष्ण की आठ पटरानियाँ थी, जिनके नाम इस प्रकार थे—रुक्मिणी, सत्यभामा, जामवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती और गान्धारी।

पाण्डव आनन्दपूवक हस्तिनापुर मे राज्य कर रहे थे। उनका प्रताप चारो ओर व्याप्त हो रहा था। नारायण श्रीकृष्ण उनके मित्र थे। एक दिन घुमन्तू नारद पाण्डवो के महलो मे पधारे। पाण्डवो ने उनका यथोचित सम्मान किया। फिर वे अन्त पुर मे गये। द्रौपदी उस समय शृ गार मे लीन थी, इसलिए नारद कब आये और चले गये उसे इसका कुछ पता नही चला किन्तु नारद को द्रौपदी का यह व्यवहार असह्य लगा। उन्होने द्रौपदी का मान-मर्दन करने का निश्चय किया और वे आकाश-मार्ग से पूर्व घातकी खण्ड के भरत-क्षेत्र की अमरककापुरी के नरेश पद्मनाभ के महलो मे पहुँचे। पद्मनाभ ने उनकी अभ्यर्थना की और अपनी स्त्रियो को दिखाकर कहा—क्या आपने ऐसी रूपवती स्त्रियाँ ससार मे कही अन्यत्र देखी हैं? तव नारद ने द्रौपदी के रूप लावण्य का ऐसा सरस वर्णन किया कि पद्मनाभ उस स्त्री रत्न को पाने के लिए ललक उठा। नारद द्रौपदी के क्षेत्र, नगर, भवन आदि का पता बताकर चले गये।

पाडवो का निष्कासन

तब पद्मनाभ ने सगमक नामक देव द्वारा सोती हुई द्रौपदी को पर्यंक सहित अपने महलो मे मगा लिया। जब द्रौपदी सो कर उठी तो वह आश्चर्य से चारो ओर देखने लगी। तभी पद्मनाभ आकर बोला—'देवि! तुम धातकी खण्ड मे हो, मैं यहाँ का नरेश पद्मनाभ हूँ। मैंने तुम्हे यहाँ मगवाया है। मैं तुम्हे अपनी पटरानी बनाना चाहता हूँ। अब तुम अपने पति को भूल जाओ और मेरे साथ इच्छानुकूल भोग भोगो।' द्रौपदी कुपित होकर बोली-तुम नही जानते, नारायण कृष्ण और वलभद्र वलराम मेरे भाई हैं, जगविख्यात धनुर्धर अर्जुन मेरे पति है। मेरे ज्येष्ठ और देवर अतुल वल विक्रमधारी है। उनको कोई स्थान अगम्य नही है। यदि तुम्हे मृत्यु प्रिय नही है तो तुम अभी मुझे मेरे स्थान पर पहुँचा दो।' यह सुन कर पद्मनाभ खिलखिला कर हँस पडा।

द्रौपदी इस सकट से विचलित नही हुई। उसने नियम कर लिया कि जब तक मुझे मेरे पति अर्जुन के दर्शन नही होगे, तब तक मेरे अन्न-जल का त्याग है।

इधर जब आकस्मिक रूप से द्रौपदी अदृश्य हो गई तो पाडव किंकर्तव्य विमूढ हो गये। वे सीधे श्रीकृष्ण के पास पहुँचे और उन्हे यह दु सवाद सुनाया। सुनकर उन्हे बडा दु ख हुआ। उन्होने सभी नगरो मे खोज कराई, किन्तु कोई पता नही लगा।

एक दिन श्रीकृष्ण की सभा मे नारद का आगमन हुआ। यादवो से अभ्यर्थना पाकर नारद बोले—'मैंने द्रौपदी को घातकी खण्ड द्वीप की अमरककापुरी मे राजा पद्मनाभ के महलो मे देखा है। वह निरन्तर अश्रुपात करती रहती है। उसे केवल अपने शीलव्रत का ही भरोसा है।' द्रौपदी के समाचार पाकर श्रीकृष्ण, पाण्डव और समस्त यादव अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे नारद की प्रशसा करने लगे।

समाचार पाकर श्रीकृष्ण और पाँचो पाडव द्रौपदी को लाने के लिए रथ मे आरूढ होकर चल दिये। दक्षिण समुद्र के तट पर पहुँच कर उन्होनें लवण समुद्र के अधिष्ठाता देवता की आराधना की और तीन दिन का उपवास करके बैठ गये। देवता नें प्रसन्न होकर उन्हे छह रथो मे आरूढ करके घातकी खण्ड पहुँचा दिया। वहाँ से वे लोग अमरककापुरी पहुँच और बाह्य उद्यान मे ठहर गये। उद्यान मे नियुक्त प्रहरियो नें जाकर महाराजा

पद्मनाभ को समाचार दिया कि श्रीकृष्ण आदि आ गये हैं। राजा ने उनसे युद्ध करने के लिये अपनी सेना भेजी। उसे श्रीकृष्ण आदि ने बुरी तरह परास्त कर दिया। अवशिष्ट सेना भागकर नगर मे पहुँची। राजा ने नगर कोट के द्वार वन्द करा दिये। श्रीकृष्ण ने पैर की एक ठोकर मे द्वार और प्राकार तोड दिये, नगर का विध्वस करना आरम्भ कर दिया। नगर मे त्राहि-त्राहि मच गई। हाथी और घोडे वन्धन तुडाकर भागने लगे। तव भयभीत होकर पद्मनाभ स्त्रियो और नागरिको को लेकर द्रौपदी की शरण मे पहुँचा और दीनतापूर्वक अपने अपराध की क्षमा-याचना करता हुआ प्राण की भिक्षा मागने लगा। तव उसकी दीन दशा देखकर दयार्द्र होकर द्रौपदी ने कहा--तू स्त्री वेप धारण करके चक्रवर्ती श्रीकृष्ण की शरण मे जा। वे ही तुझे क्षमा करेंगे। पद्मनाभ ने ऐसा ही किया और स्त्री वेप धारण करके द्रौपदी को आगे करके स्त्रियो के साथ श्रीकृष्ण की शरण मे जा पहुँचा। श्रीकृष्ण ने शरणागत को अभय-दान दिया और उसे वापिस लौटा दिया। द्रौपदी ने श्रीकृष्ण के चरणो मे नमस्कार किया तथा वह पाण्डवो से विनय के साथ मिली तथा अपना दु:ख रोते-रोते प्रगट किया, जिससे दु ख का भार उतर गया।

तदनन्तर श्रीकृष्ण द्रौपदी को रथ मे वैठाकर पाण्डवो के साथ समुद्र तट पर आये और अपना पाचजन्य शख वजाया। उसके शब्द से दिशाये प्रतिध्वनित होने लगी। उस समय चपा नगरी के वाहर विराजमान जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने के लिये धातकी खण्ड का नारायण कपिल आया था। उसने भी शख का शब्द सुना। अत उसने जिनेन्द्र भगवान से पूछा--'भगवन्! मेरे समान शक्तिसम्पन्न किस व्यक्ति ने यह शख ध्वनि की है। इस क्षेत्र मे तो मेरे समान अन्य कोई नारायण नही है।' तव जिनेन्द्र देव ने श्रीकृष्ण नारायण और पाण्डवो के सम्वन्ध मे सारा वृत्तान्त वताया। नारायण कपिल नारायण कृष्ण को देखने की इच्छा से वहाँ से चलने लगा ता भगवान वोले—'राजन्! कभी तीर्थकर-तीर्थंकर की, चक्रवर्ती-चक्रवर्ती की, नारायण-नारायण की, वलभद्र-वलभद्र की और प्रतिनारायण-प्रति नारायणकी भेंट नही होती। केवल चिन्ह मात्र ही कृष्ण नारायण का तुम देख पाओगे।'

कपिल नारायण जव समुद्र-तट पर पहुँचा, तव तक श्रीकृष्ण समुद्र मे जा चुके थे। केवल उनकी ध्वजा के ही दर्शन हो सके। वहाँ लौट कर नारायण कपिल ने राजा पद्मनाभ को खूब डाटा।

कृष्ण और पाडव समुद्र को पारकर इस तट पर आ गये। वहाँ श्रीकृष्ण तो विश्राम करने लगे और पाण्डव नौका द्वारा गगा को पार कर उसके दक्षिण तट पर ठहर गये। भीम ने विनोदवश नौका वही छुपा दी। श्रीकृष्ण ने घोडो और सारथी सहित रथ को उठाकर गगा को पार किया। तट पर आकर श्रीकृष्ण ने पाडवो से पूछा—'तुम लोगो ने नाव क्यो नही भेजी?' भीम वोला—हम आपकी शक्ति देखना चाहते थे।' यह वात सुन कर श्रीकृष्ण को क्रोध आ गया और उन्होने क्रोधवश कहा—'क्या तुमने अव तक मेरी शक्ति नही देखी थी? तुम लोग हस्तिनापुर से निकल जाओ।' उन्होने हस्तिनापुर जाकर वहां का राज्य सुभद्रा के पुत्र आर्यसूनु को दे दिया।

पाण्डव कृष्ण के आदेश से हस्तिनापुर त्याग कर अपने अनुकूल जनो के साथ दक्षिण दिशा की ओर चले गये और वहाँ दक्षिण मथुरा नाम की नगरी वसा कर रहने लगे।

नेमिनाथ का शौर्य प्रदर्शन—एक दिन भगवान नेमिनाथ यादवो की कुसुमचित्रा नामक सभा मे गये। उनके पहुँचने पर सभी यादवो ने खडे होकर भगवान के प्रति सम्मान प्रगट किया। नारायण श्रीकृष्ण ने आगे जाकर उनकी अभ्यर्थना की और उन्हे अपने साथ सिंहासन पर वैठाया। सवके वैठने पर राजाओ मे चर्चा चली कि सवमे अधिक वलवान इस समय कौन है। किसी ने पाण्डवो का नाम लिया, किसी ने श्रीकृष्ण का, किसी ने वलराम का किन्तु अन्त मे अधिकाश राजाओ और वलदेव ने कहा कि भगवान नेमिनाथ के समान तीनो लोको मे अन्य कोई पुरुष वलवान नही है। ये अपनी हथेली से पृथ्वी को उठा सकते है, समुद्रो को दिशाओ मे फेंक सकते है, सुमेरु पर्वत को कम्पायमान कर सकते हैं। ये तो तीर्थंकर हैं। इनसे उत्कृष्ट दूसरा कौन हो सकता है।

वलदेव के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण न भगवान की ओर देखकर मुसकराते हुए कहा—'भगवन्! यदि आपके शरीर मे ऐसा उत्कृष्ट वल है तो क्यो न वाहु-युद्ध में उसकी परीक्षा कर ली जाय।' भगवान ने किंचित् मुसकरा कर कहा—'हे अग्रज! इसकी क्या आवश्यकता है। यदि आपको मेरा वाहु-वल ही जानना है तो इस

आसन से मेरा पैर ही विचलित कर दीजिये।' श्रीकृष्ण कमर कसकर उठे और वे पूरे बल से भगवान के पैर से जूझ गये किन्तु पैर को तो क्या हटा पाते, पैर की एक उगली तक को न हिला सके। उनके मस्तक पर श्रम-बिन्दु झलमलाने लगे, श्वास प्रवल वेग से चलने लगी। अन्त मे श्रान्त होकर श्रीकृष्ण हाथ जोडकर वोले—भगवन्! आपका वल लोकोत्तर है।

किन्तु इस घटना से श्रीकृष्ण के मन मे एक शका बद्धमूल होकर जम गई कि भगवान का वल अपार है, इनके रहते मेरा राज्य-शासन स्थिर कैसे रह पाएगा।

तभी एक घटना और हो गई। वसन्त ऋतु थी। श्रीकृष्ण अपने परिवार और समस्त यादवो के साथ वन-क्रीडा के लिए प्रभास पर्वत पर गये। भगवान नेमिनाथ भी साथ मे थे। सभी लोग यथायोग्य वाहनो मे बैठकर गिरनार पर्वत पर पहुँचे। वनश्री पूरे यौवन पर थी। नाना जाति के पुष्प विकसित थे। भ्रमरावलियाँ मधु-पान करती हुई गुंजन कर रही थी। कोकिल कूज रही थी। मलय पवन वह रहा था। ऐसे मादक वातावरण मे सभी लोग क्रीडा मे रत हो गये। श्रीकृष्ण की रानियो ने अपने देवर नेमिनाथ को घेर लिया। वे उनके साथ नाना प्रकार की क्रीडाये करने लगी। फिर वे सरोवर मे जल क्रीडा करने लगी। भगवान भी उनके साथ इस आमोद-प्रमोद मे पूरी तरह भाग ले रहे थे। जव सभी परिश्रान्त हो गई तो वे लोग जल से बाहर निकली और वस्त्र वदलने लगी। भगवान ने वस्त्र वदलकर विनोद-मुद्रा मे नारायण की प्रेमपात्र महारानी जाम्ववती से उतारे हुए गीले वस्त्र निचोडने के लिए कहा। यह सुनते ही महारानी जाम्ववती छद्म क्रोध प्रगट करती हुई कहने लगी—कौस्तुभ मणि धारण करने वाले, नागशय्या पर आरुढ होकर शख की ध्वनि से तीनो लोको को कपाने वाले, शार्ङ्ग धनुप की प्रत्यञ्चा चढाने वाले, राजाओ के भी महाराज श्रीकृष्ण मेरे पति है, वे भी मुझे कभी ऐसी आज्ञा नही देते। किन्तु आश्चर्य है कि आप मुझे अपने कपडे निचोडने की आज्ञा दे रहे है।

महारानी की यह वात सुनकर अन्य रानियो ने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा—तीन लोक के स्वामी और इन्द्रो से पूजित भगवान के लिए तुम्हे इस प्रकार अयुक्त वचन बोलना क्या शोभा देता है?

किन्तु भगवान ने मुस्कराते हुए कहा—'महाराज श्रीकृष्ण के शौर्य की जो प्रशसा तुमने की है, वैसा शौर्य क्या कठिन है?' यो कहकर वे वेग से राजमहलो मे पहुँचे और फुंकारते हुए नागो के फणो से मण्डित नागशय्या पर चढकर उन्होने शार्ङ्ग धनुष को झुकाकर उसकी प्रत्यञ्चा चढा दी तथा पाञ्चजन्य शख को जोर से फूका। शख के भयकर शब्द से आकाश और पृथ्वी व्याप्त हो गई। हाथी और घोडे बन्धन तुडाकर चिघाडने और हिनहिनाने लगे। श्रीकृष्ण ने शख-ध्वनि सुनी तो उन्होने तलवार खीचली। नगरवासी आतक से विजडित हो गये। जब श्रीकृष्ण को ज्ञात हुआ कि यह तो हमारे ही शख का शब्द है तो आशकाओ से त्रस्त होकर वे शीघ्र आयुधशाला मे पहुँचे, किन्तु जब उन्होनें कुमार नेमिनाथ को नागशय्या पर अनादर-पूर्वक खडा हुआ क्रोधित मुद्रा मे देखा तो उन्हे सन्तोष का अनुभव हुआ। उन्होने कुमार को प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध कर लिया और अपने साथ ही उन्हे घर लेगये। घर पहुँचने पर उन्हे ज्ञात हुआ कि वन विहार मे मेरी ही रानियो के कारण कुमार को कामोद्दीपन हुआ है तो वे बडे हर्षित हुए।

नेमिनाथ के विवाह का आयोजन—श्रीकृष्ण ने भोजवशी उग्रसैन की पुत्री राजीमती की कुमार नेमिनाथ के लिए याचना की। उन्होने राजाओ को रानियो सहित आने के निमन्त्रण भेज दिए तथा अपने बन्धुजनो के पास भी पाणिग्रहण सस्कार के समाचार भेज दिये।

श्रावण मास की वर्षा ऋतु मे यादवो की बरात सजधज कर द्वारिका से निकली। बरात में अगणित बराती थे। अनेक नरेश राजसी वैभव का प्रदर्शन करते हुए जा रहे थे। वराती नानाविध वाहनो मे बैठे थे। श्री-कृष्ण, बलराम आदि से घिरे हुए कुमार नेमिनाथ वर की वेषभूषा धारण किए और रत्नालकारो से अलकृत हुए रथ में विराजमान थे। त्रिलोकसुन्दर भगवान अलकार धारण करके रूप के साकार रूप लग रहे थे। यादव कुमारियाँ मूर्तिमान कामदेव के मार्ग में पलक पावडे बिछाये उनके ऊपर अक्षत-लाजा की वर्षा कर रही थीं। सौभाग्यवती स्त्रियाँ राजपथों के किनारे पर जल से परिपूर्ण स्वर्ण घट लिए खड़ी थीं। युवती स्त्रियाँ हर्म्यों, प्रासादों

और भवनो के गवाक्षो से वर के ऊपर पुष्प-पराग बखेर रही थी। यादवो की यह बरात जब जूनागढ पहुँची तो बरात का दूसरा सिरा द्वारिका मे था। वर का रथ शनै. शनै आगे बढ रहा था। भोजवशी उनकी अभ्यर्थना के लिए आगे बढे। राजकुमारी राजमती वधू के वेष मे साक्षात् रति लग रही थी। उसकी सहेलियाँ उसे नेमिकुमार के रूप लावण्य को लेकर बार-बार छेड रही थी और राजमती लाज के मारे सिकुड जाती थी किन्तु उसके हृदय की हर धड़कन मे 'नेमि पिया' का ही स्वर गूज रहा था। वह अपने साजन की एक झलक पाने के लिए अधीर हो रही थी। वह अपनी भावनाओ के गगन मे ऊँची उडाने भर रही थी। तभी नानाविध वाद्यो का तुमुल नाद सुनाई पडा। सहेलियाँ आई और उसे घसीटती हुई प्रासाद के बाहरी छज्जे पर ले गई। राजीमती सहेलियो के बीच मे तारो के मध्य चन्द्रमा के समान शोभा पा रही थी।

वर का रथ आगे बढा, तभी उनकी दृष्टि एक मैदान मे बाडे मे घिरे हुए भयविव्हल तृणभक्षी वन्य पशुओ पर पडी। नेमिकुमार ने सारथी से पूछा—'भद्र! ये नाना जाति के पशु यहाँ किसलिए रोके हुए हैं?' सारथी ने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! आपके विवाहोत्सव मे जो मासभक्षी म्लेच्छ राजा आये है, उनके लिए नाना प्रकार का मास तैयार करने के लिए यहाँ पशुओ का निरोध किया गया है।'

सारथी के वचन सुनकर नेमिकुमार कहने लगे—एक की प्रसन्नता के लिये दूसरे की हिंसा करना घोर अधर्म है। सारथि! मैं विवाह के लिए तनिक भी उत्सुक नही हूँ। तुम इन प्राणियो को बन्धनमुक्त कर दो।' भगवान का हृदय दया से ओत-प्रोत था। वे राजकुमारो से कहने लगे—मनुष्यों की निर्दयता तो देखो। वन ही जिनका घर है, तृण और जल ही जिनका आहार जल है और जो अत्यन्त निरपराध है, ऐसे दीन मृगो का भी मनुष्य वध करते है। जो शूर वीर होकर भी पैर मे काटा न चुभ जाय, इस भय से जूता पहनते है, वे इन मृगो, शशको की गरदन पर तीक्ष्ण धार वाले शस्त्र चलाते हैं, यह कैसा आश्चर्य है! यह प्राणी जिव्हा की लोलुपता की तृप्ति के लिए भक्ष्य-अभक्ष्य का भी विवेक खो देता है। किन्तु क्या ससार मे किसी को भी तृप्ति हुई है? मैंने स्वय असख्य वर्षों तक इन्द्र, धरणेन्द्र, और नरेन्द्रो के सुख भोगे हैं, किन्तु मुझे उनसे भी तृप्ति नही हुई। ये सासारिक सुख असार है और मेरी आयु भी असार है। मैं इन असार सुखो का त्याग करके नित्य, अनन्त और अविनाशी सुख के उपार्जन का पुरुषार्थ करूँगा।

भगवान के मन मे इन अनित्य सुखो के प्रति वितृष्णा उत्पन्न हो गई। उन्हे आत्म विमुख होकर सासारिक सुखो मे क्षणभर भी अटकना निष्प्रयोजन लगने लगा। तभी लौकान्तिक देव आये और भगवान के चरणो मे सिर झुका कर विनत मुद्रा मे निवेदन करने लगे—'प्रभो! भरत क्षेत्र मे पाप की प्रवृत्ति बढ गई है, जन-जन के मन मे मिथ्या का तमस्तोम छा रहा है। अब तीर्थ-प्रवर्तन का काल आ पहुँचा है। ससार के दिग्भ्रान्त और दुखी प्राणियो पर दया करके आप तीर्थ-प्रवर्तन कीजिये।' देव यो निवेदन करके अपने आवास को लौट गये।

भगवान ने दयार्द्र होकर मृगो को बन्धनमुक्त कर दिया। मृग मुक्त होकर भागे नही, किन्तु जगद् बन्धु भगवान के चरणो मे सिर झुकाकर खडे हो गये और अपने त्राता की ओर निहारने लगे। भगवान ने हाथ उठाकर उन्हे मानो सुरक्षा का आश्वासन दिया। आश्वस्त होकर वे मूक प्राणी वन मे चले गये।

भगवान का दीक्षा-कल्याणक—भगवान ने वरोचित ककण और मोहर उतार दिया। वे वापिस लौटकर नगरी मे पहुँचे और राज सिहासन पर विराजमान हो गये। तभी इन्द्र और देव वहाँ आये। इन्द्रो ने भगवान को स्नान पीठ पर विराजमान करके देवो द्वारा लाये हुए क्षीरोदक से उनका अभिषेक किया और उन्हे स्वर्गीय माला, विलेपन, वस्त्र और आभूषणो से विभूषित किया। सभी यादव प्रमुख श्रीकृष्ण, बलराम आदि भगवान को घेर कर खड़े हुए थे। भगवान मोह-माया को तोड़कर बन मे जाने को तैयार थे। मोह का कोई बन्धन उन्हे उनके सकल्प से विचलित न कर सका।

भगवान माता, पिता, बन्धु बान्धवो को समझाकर कुबेर द्वारा निर्मित उत्तरकुरु पालकी मे आरूढ हुए। देवो ने पालकी को ध्वजाओ और छत्र से मण्डित किया था। उसमे मणियो के बेल बूटे बने हुए थे। राजाओ ने पालकी को अपने कधे पर उठाया और कुछ दूर ले गए। उसके बाद पालकी को इन्द्रो ने उठाया और आकाश

मार्ग से ले चले । उस समय अद्भुत दृश्य उपस्थित था, आकाश मे देव हर्ष-ध्वनि कर रहे थे और पृथ्वी पर यादव वशी और भोजवशो करुण विलाप कर रहे थे। भगवान को तप के लिए जाने के अवसर पर अप्सरायें हर्षित होकर भगवान के आगे भक्ति-नृत्य कर रही थी और पृथ्वी पर यादवो की कुलवधुएँ और रानियाँ शोक विव्हल हो रही थी। देव लोग पालकी को लेकर गिरनार पर्वत पर पहुँचे ।

भगवान पालकी से उतर कर एक शिलातल पर,विराजमान हुए । उन्होने अलकार और वस्त्र उतार दिए और पचमुष्ठियो से केशलुंचन किया। वे पद्मासन से विराजमान होकर 'ॐ नम सिद्धेभ्य' कहकर ध्यान मे लीन हो गये। भगवान की दीक्षा से प्रभावित होकर तत्काल एक हजार राजाओ ने भी दिगम्बर मुनिदीक्षा लेली। उस समय उन राजाओ ने केशलोच किया, वह दृश्य अनुपम था। वह केशलोच नही था, किन्तु वे वस्तुत कुटिल केशो के उखाडने के बहाने मानो कुटिल शल्यो को ही उखाड रहे थे। सौधर्मेन्द्र ने भगवान के केशो को एक मणिमय पिटारे में बन्द करके उन्हे क्षीरसागर मे क्षेपण कर दिया। दीक्षा लेते ही भगवान को मन पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। उस दिन श्रावण शुक्ला चतुर्थी का दिन था। उस दिन भगवान ने वेला का नियम लेकर दीक्षा ली थी। भगवान का दीक्षा कल्याणक मनाकर देव और मनुष्य अपने अपने स्थान पर चले गये।

भगवान पारणा के लिए द्वारकापुरी मे पहुंचे। वहाँ प्रवरदत्त को भगवान को आहार देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस उत्तम दाता ने भगवान को परमान्न का आहार दिया। देवों ने पचाश्चर्य किये—देवो ने रत्न वर्षा की, सुगन्धित जल की वर्षा हुई, शीतल सुगन्धित हवा बहने लगी, देव हर्ष मे भरकर दुन्दुभि बजाने लगे और जयजयकार करने लगे—धन्य यह उत्तम दाता, धन्य यह उत्तम पात्र और धन्य है यह उत्तम दान।

वधू के रत्नाभरणो से मण्डित राजमती—जिसे परिवार वाले प्यार मे राजुल कहते थे सखियो के साथ बरात की धूमधाम मे कल्पनालोक मे विहार कर रही थी। वह अपने पिया के प्रेम के झूले पर लम्बी-लम्बी पेगे ले रही थी। तभी विस्फोट के समान यह समाचार सुनाई पडा कि नेमिकुमार विवाह से मुख

राजीमती द्वारा दीक्षा मोडकर लौट गए है और उन्होंने दीक्षा लेली है। समाचार क्या था, मानो वज्रपात था।

समाचार सुनते ही राजमती कटे वृक्ष के समान सज्ञाहीन होकर भूमि पर गिर पडी। जब वह होश मे आई तो वह करुण विलाप करने लगी। वह बार-बार अपने भाग्य को दोष देता थो। वह बार-बार कहता —'नेमिकुमार महान है। मैं ही शायद उनके उपयुक्त नही थी। मैं तो वामन थी और मैंने आकाश को छूना चाहा। किन्तु यह कैसे सभव हो सकता था। भाग्य ने नेमिकुमार को मेरे लिए वर बनाया था किन्तु दुर्भाग्य ने मेरा मार्ग अवरुद्ध कर दिया। अब मैं उसी दुर्भाग्य से सघर्ष करूँगी। मेरे नेमिकुमार मुझे सासारिक दशा मे प्राप्त नही होसके, किन्तु वे ही मेरे इहभव और परभव के पति हैं। वे जिस राह गये हैं, वही मेरी राह है। उन्होने मुझे राह दिखादी है। मैं अब उसी राह पर चलूंगी।'

माता-पिता और परिजनो ने उसे बहुत समझाया—तेरी वय अभी तप करने की नही है। किसी उपयुक्त राजकुमार के साथ तेरा विवाह किये देते हैं।' किन्तु राजमती का एक ही उत्तर था—पतिव्रता स्त्री के जीवन मे एक ही पति होता है। नेमिकुमार ही मेरे इस जीवन मे पति हैं, उनका स्थान दूसरा कोई कैसे ले सकता है। वे मुझे छोड कर चले गये हैं। उनसे मुझे कोई शिकायत नही है। उनके कार्य की मीमासा करने का मेरा क्या अधिकार है। मैं उनके चरणो की दासी हूँ। वे ही मेरे सर्वस्व हैं। वे गये है और मुझे भी आने का सकेत कर गये हैं।

राजीमती अपने पति की जोगन बनकर अकेली उसी पथ पर चलदी जिस पथ पर उसके महान पति गये थे। उसने सारे आभरण, शृगार के साधन और साजसज्जा त्याग दी, शरीर पर केवल एक श्वेत शाटिका धारण कर ली। वह परिजनो और पुरजनो से सकुल राजपथ पर होकर अवनतमुखी गिरनार पर्वत पर धीरे-धीरे चढने लगी। उसका रूप लावण्य और वय तप के उसके महान सकल्प से और भी अधिक सतेज हो उठे। उसका प्रयोजन महान था। वह ससार की सारी माया से निर्लिप्त, शरीर से निर्मोह होकर उस कण्टकाकीर्ण मार्ग पर बढती गई, जो आत्म स्वातन्त्र्य के लिए जाता है।

ससार की किस वधू ने अपने निर्मोही पति के लिए इतना महान और सर्वस्व त्याग किया होगा! जिसकी रगीन कल्पनाये और मीठे सपने एक अप्रत्याशित झटके से बिखर गये, किन्तु जिसने उसके प्रतिरोध का न कोई

प्रयत्न किया, न जिसने अपने भावी पति के विरुद्ध कोई अभाव अभियोग ही उपस्थित किया, बल्कि केवल कंकण की लाज को ही सब कुछ मानकर उसी ठुकराने वाले निष्ठुर पति का ही अनुगमन किया, वह नारी नारीत्व का महानतम शृंगार है। राजुल ! तुमने अपनी कामनाओं का होम करके और आत्माहुति देकर जो ज्योति जलाई, वह युग-युगो तक दिग्भ्रान्त नारी जाति का पथ आलोकित करती रहेगी। देवी ! तुमने अपने जीवन को धन्य किया, समग्र नारी जाति को धन्य किया और मानव की महानता को धन्य किया। तुम अपने उस महान तप और त्याग के कारण जगन्माता के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित होकर अखिल मानव जाति की श्रद्धास्पद बन गई हो। तुम्हे सहस्र प्रणाम !

केवलज्ञान कल्याणक

मुनिराज नेमिनाथ अन्तर बाह्य परिग्रह का त्याग करके घोर तप करने लगे। वे प्राय आत्म ध्यान मे लीन रहते थे। उन्हे एकान्त, प्रासुक तथा क्षुद्र जीवो के उपद्रव से रहित क्षेत्र, वज्रवृषभनाराच संहनन रूप द्रव्य, उष्णता आदि बाधा से रहित काल और निर्मल अभिप्राय रूप श्रेष्ठ भाव यह क्षेत्रादि चतुष्टय रूप भगवान नेमिनाथ का सामग्री उपलब्ध थी। अत वे प्रशस्त ध्यान मे लीन रहते थे। ध्यान के समय उनके नेत्र न तो अत्यन्त खुले रहते थे, न बन्द ही रहते थे। नीचे के दांतो के अग्रभाग पर उनके ऊपर के दांत स्थित रहते थे। उनकी इन्द्रियो का समस्त व्यापार निवृत्त हो चुका था। उनके श्वासोच्छ्वास का सञ्चार शनै शनै होता था। वे अपनी मनोवृत्ति को नाभि के ऊपर मस्तक पर, हृदय मे अथवा ललाट मे स्थिर कर आत्मा को एकाग्र करके प्रशस्त ध्यान करते थे। उनकी कर्मशृंखलाये टूटती गई और केवल छप्पन दिन की कठोर साधना के पश्चात् उन्हें आश्विन शुक्ला प्रतिपदा के दिन अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टय प्राप्त हो गया। वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन गये। इन्द्रो के आसन और मुकुट कम्पित होने लगे। चारो जाति के देवो के आवासो मे घण्टो के शब्द, सिंहनाद, दुन्दुभि के शब्द और शंखो के शब्द होने लगे। देवो और इन्द्रो ने अवधिज्ञान से जान लिया कि भगवान को केवलज्ञान प्राप्त होगया है, वे सब गिरनार पर्वत पर भगवान का केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव मनाने आए। कुबेर ने समवसरण की रचना की। देवो और इन्द्रो ने भगवान का ज्ञान कल्याणक महोत्सव मनाया और भगवान को पूजा की, भगवान की दिव्य ध्वनि खिरी। इस प्रकार भगवान ने धर्म चक्र प्रवर्तन किया।

भगवान का धर्म विहार—भगवान नेमिनाथ ने विभिन्न देशो मे धर्म विहार किया। वे सौराष्ट्र, लाट, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, कुरुजागल, पाञ्चाल, कुशाग, मगध, अञ्जन, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, आदि देशो मे विहार करते हुए गए। उनके उपदेश सुनकर सभी वर्गो के लोग जैनधर्म मे स्थित हुए।

तदनन्तर वे विहार करते हुए मलय नामक देश मे आये। वे भद्रिलपुर नगर के सहस्राम्र वन मे ठहरे। उस नगर का राजा पौण्ड्र नगरवासियो के साथ भगवान के दर्शनो के लिए आया। महारानी देवकी के छहो पुत्र, जिनका लालन-पालन सुदृष्टि सेठ और अलका सेठानी ने किया था, अलग-अलग रथ मे आरूढ होकर भगवान के समवसरण मे आये। उनमे से प्रत्येक की बत्तीस-बत्तीस स्त्रियां थी। वे भगवान को नमस्कार करके मनुष्यो के कोष्ठ मे बैठ गये। भगवान का उपदेश सुनकर उन छहो भाइयो को ससार से वैराग्य हो गया और उन्होने भगवान के चरणो मे मुनि-दीक्षा ले ली। उन्होने घोर तप किया। उन्हे अनेक ऋद्धियां प्राप्त हो गई। वे छहो मुनि साथ-साथ ही उपवास, पारणा, ध्यान, धारणा, शयन, आसन और त्रैकालिक योग करते थे।

एक दिन भगवान नेमिनाथ के दर्शन करने के लिए राजमाता देवकी समवसरण मे पहुँची। उन्होने भगवान की प्रदक्षिणा दी, नमस्कार किया और उनकी स्तुति करके स्त्रियो के कक्ष मे बैठ गई। उनके मन मे एक शका कई घण्टो से पल रही थी। उसके निरास के लिये वे हाथ जोडकर बोली—'भगवन् ! आज मेरे आवास मे अत्यन्त तेजस्वी दो मुनि आये। दोनो का रूप-लावण्य, तेज-कान्ति समान थी। मैंने उन्हे आहार दिया। किन्तु आहार के पश्चात् वह मुनि-युगल पुनः दो बार आया और पुनः आहार लिया। प्रभो ! क्या उन मुनियो का एक ही भवन में एक ही दिन तीन बार आहार लेना उचित है ? यह भी सम्भव है, तीन बार आने वाला यह मुनि-युगल रूप-सादृश्य के कारण एक ही प्रतीत होता हो। किन्तु भगवन्! इन मुनियों को देखकर मेरे हृदय में वात्सल्य क्यों उमड़ पड़ा। उन्हें देखते ही मेरा आंचल दूध से भर गया और उन्हें आहार देते समय मेरे मन में यह भाव क्यों जागा कि मैं मुनियों को नहीं; अपने ही पुत्रों को भोजन करा रही हूँ ?

भगवान बोले—देवी ! ये छहो मुनि वास्तव मे तुम्हारे पुत्र है। उन्हे कृष्ण-जन्म से पहले तीन युगल मे तुमनें ही जन्म दिया था। देव ने कस से इनकी रक्षा की। उसने इनका जन्म होते ही भद्रिलपुर के श्रेष्ठी सुदृष्टि और उनकी अलका सेठानी के यहां पहुँचा दिया तथा उनके सद्योजात मृत पुत्र-युगलो को तुम्हारे पास लाकर सुला दिया। उन छहों पुत्रो का लालन-पालन उन सेठ-सेठानी के घर पर हुआ। वे ही छहो भ्राता धर्म श्रवण कर मेरे पास मुनि वन गये। वे कर्मों का क्षय करके इसी जन्म मे मुक्ति प्राप्त करेंगे। पुत्र होने के कारण ही तुम्हारे मन मे इनके प्रति वात्सल्य जागृत हुआ था।

देवकी यह सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। उन्होने तथा श्रीकृष्ण आदि ने उन मुनियो को नमस्कार किया।

भगवान का धर्म-परिकर—भगवान के समवसरण मे वरदत्त आदि ११ गणधर, ४०० पूर्वधारी, ११८०० शिक्षक, १५०० अवधिज्ञानी, १५०० केवलज्ञानी, ९०० विपुलमति मन पर्ययज्ञानी, ८०० वादी और ११०० विक्रिया ऋद्धिधारी मुनि थे। राजीमती आदि ४०००० अर्जिकाये थी। १६९००० श्रावक और ३३६००० श्राविकाये थी।

गजकुमार मुनि पर उपसर्ग श्रीकृष्ण के अनुज का नाम गजकुमार था। वह अत्यन्त तेजस्वी, सुदर्शन और सौम्य था। श्रीकृष्ण उससे अत्यन्त स्नेह करने थे। कुमार का विवाह अनेक राजकुमारियो के साथ कर दिया गया। श्रीकृष्ण ने उसके लिये सोमशर्मा नामक ब्राह्मण को पुत्री सोमा का भी वरण कर लिया। यह विवाह होने से पूर्व भगवान नेमिनाथ विहार करते हुए द्वारकापुरी पधारे। भगवान गिरनार पर्वत पर विराजमान थे। यादव लोग भगवान के दर्शनो के लिये गये। यादवों को गिरनार पर्वत पर जाते देखकर गजकुमार भी समवसरण मे जा पहुचा। वह भगवान को नमस्कार करके मनुष्यो के कोठे मे वैठ गया। भगवान का उपदेश सुनकर उसे भोगो से विराग हो गया। वह माता-पिता, वन्धु-बान्धवो से अनुमति लेकर भगवान के चरणो मे मुनि-दीक्षा लेकर घोर तप करने लगा।

एक दिन मुनि गजकुमार एकान्त मे रात्रि मे प्रतिमा योग से विराजमान थे, तभी सोमशर्मा उधर आ निकला। वह मुनि गजकुमार को देखकर अपनी पुत्री का त्याग करने के कारण क्रोध से विवेकहीन हो गया। उसने जलती हुई अगीठी मुनिराज के सिर पर रखदी और वह क्रूर पिशाच के समान मुनिराज को जलते हुए देखने लगा। ज्यो-ज्यो मुनिराज का शरीर जलने लगा, वह दुष्ट उतना ही प्रसन्न होने लगा। इस रोमहर्षक प्रतिशोध से निकाचित कर्मों द्वारा उसकी आत्मा तमसावृत्त हो गई। उधर मुनिराज ने साम्यभाव से इस दारुण यत्रणा को सहकर शुक्ल ध्यान द्वारा कर्मो का विनाश कर दिया और वे अन्तकृत केवली होकर सिद्ध परमात्मा वन गये।

गजकुमार मुनि को सिद्ध पद की प्राप्ति होने पर देवो ने आकर उनके शरीर की पूजा की। उनके मरण से दुखी होकर वसुदेव को छोडकर समुद्रविजय आदि भाई तथा अनेक यादव ससार की असारता पर विचार करके दीक्षित हो गये। देवकी और रोहिणी को छोडकर शेष रानियो और श्रीकृष्ण की पुत्रियो ने भी दीक्षा ले ली।

भगवान की भविष्यवाणी—भगवान वहाँ से विहार करके उत्तर दिशा, मध्यदेश और पूर्व दिशा के देशो मे धर्मोद्योत करते रहे। विहार करते हुए एक बार वे पुन द्वारका पधारे और रैवतक पर्वत पर विराजमान हो गये। उनके पधारने की सूचना पाकर वसुदेव, बलदेव और श्रीकृष्ण परिजनो और पुरजनो के साथ भगवान के दर्शनो के लिये आये। भगवान को नमस्कार करके सव यथास्थान वैठ गये और भगवान का कल्याणकारी उपदेश श्रवण करने लगे। धर्मकथा के पश्चात् वलदेव ने हाथ जोडकर भगवान से पूछा—भगवन् ! इस द्वारकापुरी की रचना कुवेर ने की है। इसका अन्त कितने समय मे होगा ? प्रभो ! कृष्ण की मृत्यु किस निमित्त से होगी ? देवाधिदेव ! मेरा चित्त कृष्ण के स्नेह-पाश से वधा हुआ है, क्या ऐसी स्थिति मे मैं कभी सयम ग्रहण कर सकूँगा ? प्रभो ! मेरी जिज्ञासा का समाधान करने की कृपा करे।

त्रिकालदर्शी भगवान कहने लगे—हे बलराम ! तुमने भविष्य जानने की इच्छा प्रगट की है, वह सुनो। द्वारकापुरी आज से बारहवें वर्ष मे मद्यप यादवो की उद्दण्डता के कारण द्वैपायन मुनि के द्वारा क्रोध करने पर भस्म होगी। अन्तिम समय मे श्रीकृष्ण कौशाम्वी के वन मे शयन करेंगे। उस समय जरत्कुमार के निमित्त से

श्रीकृष्ण की मृत्यु होगी। उसी समय श्रीकृष्ण की मृत्यु का निमित्त पाकर तुम्हें वैराग्य उत्पन्न होगा और तुम तप करके ब्रह्म स्वर्ग मे उत्पन्न होगे। आभ्यन्तर कारण के रहते हुए बाह्य निमित्त मिलने पर जगत मे अभ्युदय और क्षय होता है। इसलिये विवेकी जन जगत का स्वभाव जानकर इस अभ्युदय और क्षय मे समान भाव रखते है, वे कभी हर्ष और विषाद नही करते।

बलराम के मामा द्वैपायनकुमार भगवान के वचन सुनकर ससार से विरक्त होकर मुनि बन गये तथा अप्रिय प्रसग को टालने के लिये वे पूर्व देश की ओर विहार कर गये एव कठोर तप करने लगे। जरत्कुमार भगवान के वचन सुनकर बड़ा दुखी हुआ, 'मेरे अग्रज की मृत्यु का मै ही कारण बनूंगा' इस मनस्ताप के कारण वह बन्धु-बान्धवो को त्याग कर अज्ञात स्थान की ओर चल दिया, जहाँ श्रीकृष्ण दिखाई भी न दे। जरत्कुमार के जाने से श्रीकृष्ण को बड़ा दुःख हुआ। वह तो उनका प्राणोपम बन्धु था। यादव लोग भी सन्तप्त मन से नगर को लौट गये।

बलदेव और श्रीकृष्ण ने नगर मे आदेश प्रसारित कर दिया—'आज से नगर मे मद्य-निषेध आदेश लागू किया जाता है। न नगर मे कोई मद्य पीएगा, न मद्य बनाएगा, न सग्रह करेगा। जो मद्य नगर मे विद्यमान है, उसे नष्ट कर दिया जायगा तथा मद्य-निर्माण के साधन भी नष्ट कर दिये जायगे।' मद्य-प्रतिबन्धक आदेश के लागू होते ही मद्यपी लोगो ने मदिरा बनाने के साधन और मद्य को पर्वत के कुण्डो मे फेक दिया। पाषाण-कुण्डो मे वह मदिरा भरी रही।

मदिरा पर प्रतिबन्ध लगाने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने यह घोषणा की कि 'यदि मेरे माता, पिता, पुत्रियाँ अथवा अन्तपुर की स्त्रियाँ भगवान के निकट दीक्षा लेना चाहे, तो उन्हे मेरी ओर से कोई बाधा नही होगी, वे तप करने के लिये पूर्ण स्वतन्त्र है।' यह घोषणा होते ही प्रद्युम्नकुमार, भानुकुमार आदि पुत्रो ने दीक्षा ले ली। रुक्मिणी, सत्यभामा आदि रानियो ने भी आज्ञा लेकर सयम ग्रहण कर लिया। जब बलदेव का भ्राता सिद्धार्थ दीक्षा लेने के लिये तत्पर हुआ, तो बलदेव ने उससे याचना की—'यदि सयम ग्रहण करते समय मुझे मोह उत्पन्न हो तो तुम मुझे सबोधन करके मार्ग मे स्थित करना।' सिद्धार्थ ने प्रार्थना स्वीकार करके तप ग्रहण कर लिया।

द्वारका-दाह

भगवान वहाँ से अन्यत्र विहार कर गये। भवितव्य टलता नही। द्वैपायन मुनि भ्रान्तिवश बारहवे वर्ष को समाप्त हुआ जानकर बारहवें वर्ष मे द्वारकापुरी मे आ पहुँचे। वे पर्वत के निकट आतापन योग धारण करके प्रतिमायोग से विराजमान थे। उस समय शम्ब आदि यादव कुमार वन क्रीडा के लिए पर्वत पर गये। वहाँ से वे जब लौटे तो पिपासा से क्लान्त होकर उन्होने कादम्ब वन के कुण्डो मे भरे हुए जल को पी लिया, जो वस्तुतः जल न होकर मदिरा थी। मदिरा पुरानी थी, अत. उसमें मादकता अधिक बढ गई। उस मदिरा को पीते ही यादव कुमार मद विव्हल होगए। वे असयत होकर अनर्गल प्रलाप करने लगे। जब वे लौट रहे थे तो मार्ग मे सूर्य के सन्मुख खडे होकर तप करने वाले द्वैपायन मुनि को उन्होंने देखा। वे उन पर व्यग्य करने लगे, अश्लील परिहास करने लगे, कुछ यादव कुमारो ने उन्हे पत्थर मारना प्रारम्भ कर दिया। इससे मुनि आहत होकर गिर पडे। उन्हे यादव कुमारो की उद्दण्डता को देखकर भयानक क्रोध आया। उनकी भृकुटी तन गई, ओठ फडकने लगे, नेत्र रक्तवर्ण हो गये।

यादव कुमार झूमते इठलाते हुए द्वारका नगरी पहुँचे। किसी ने द्वैपायन मुनि के साथ किए गए दुर्व्यवहार का समाचार श्रीकृष्ण को सुनाया। समाचार सुनते ही श्रीकृष्ण और बलराम ने समझ लिया कि भगवान ने द्वैपायन मुनि द्वारा द्वारका के विनाश की जो घडी बताई थी, वह आ पहुँची है। दोनो भाई अनिष्ट की आशका से व्याकुल होकर शीघ्रतापूर्वक उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ द्वैपायन मुनि क्रोधमूर्ति बने हुए थे। दोनो ने मुनि को आदरपूर्वक प्रणाम किया और यादव कुमारो द्वारा किए गये अभद्र व्यवहार के लिए उनसे बार-बार क्षमा-याचना की और शान्त होने की प्रार्थना की। किन्तु अविवेकी मुनि के ऊपर कुछ भी प्रभाव नही पड़ा। उन्होंने द्वारकापुरी को भस्म करने का निश्चय कर लिया था। उन्होने बलराम और श्रीकृष्ण के लिए दो अगुलिया दिखाई जिसका स्पष्ट आशय था कि तुम दोनो ही बच सकोगे, अन्य नही।

दोनो भाई मुनि को दुष्ट निर्णय से विरत न कर सके और वे निराश होकर लौट आये। शम्वकुमार आदि अनेक यादव कुमार विरक्त होकर मुनि वन गये। द्वैपायन मुनि उसी क्रोध मे मरकर अग्नि कुमार नामक भवनवासी देव बने। जब उस देव को अवधिज्ञान द्वारा द्वैपायन मुनि की पर्याय मे यादवकुमारो द्वारा किये गए उपसर्ग और भयकर अपराध का ज्ञान हुआ तो उसने यादवो से भयकर प्रतिशोध लेने का निश्चय किया। वह क्रूर परिणामी भयकर क्रोध मे भर कर द्वारकापुरी पहुँचा और उसे जलाना प्रारम्भ कर दिया। उसने स्त्री-पुरुष तो क्या, पशु-पक्षियो तक को वच निकलने का अवसर नही दिया। जिन्होने वच निकलने का प्रयत्न भी किया, उन्हे पकड़-पकड कर अग्नि में फेंकने लगा। श्रीकृष्ण और वलराम ने आग बुझाने का असफल प्रयत्न किया। उन्होने माता-पिता और वन्धु जनो को भी वचाने का वहुत प्रयत्न किया किन्तु इसमे भी वे सफल नही हो सके। अन्त मे हताश होकर, अपने प्रियजनो और अपनी इन्द्रपुरी जैसी नगरी का दारुण विनाश देखते हुए वे दोनो उदास चित्त से वाहर निकल गये।

इस प्रकार वह नगरी, जिसकी रचना स्वय कुवेर ने की थी, देव जिसकी रक्षा करते थे, भस्म होगई।

शोकाभिभूत दोनो भाई—वलराम और श्रीकृष्ण वहाँ से चल दिए, निरुद्देश्य, अन्तहीन लक्ष्य की ओर। क्षुधा और तृषा से क्लान्त वे हस्तवप्र नामक नगर मे पहुँचे। श्रीकृष्ण तो उद्यान मे ठहर गए और वलराम अन्न जल जुटाने के लिए नगर मे गये। उस नगर का नरेश अच्छदन्त यादवो का शत्रु था। वलराम ने किसी व्यक्ति से अपना स्वर्ण कडा और कुण्डल देकर खाने-पीने की सामग्री खरीदी। जब वे सामग्री लेकर लौट रहे थे, नगर रक्षको ने उन्हे पहचान लिया। उन्होने यह समाचार राजा से निवेदन किया। राजा सेना लेकर वहाँ आया। वलराम ने सकेत द्वारा श्रीकृष्ण को वुला लिया। वलराम ने हाथी वाधने का एक खम्भा उखाड़ लिया और श्रीकृष्ण ने एक लौह अर्गला ले ली। उन्ही से उन दोनो ने सेना का प्रतिरोध किया। उनकी भयकर मार से सेना भाग गई। तव उन दोनो ने जाकर भोजन किया।

श्रीकृष्ण का करुण निधन

भ्रमण करते हुए दोनो भाई कौशाम्वी के भयानक वन मे पहुँचे। उस समय सूर्य सिर के ऊपर तप रहा था, भयकर गर्मी थी। मार्ग की अविरत यात्रा से क्लान्त और तृषार्त श्रीकृष्ण एक स्थान पर रुक गये। वे अपने ज्येष्ठ भ्राता से वोले—'आर्य! मै प्यास से वहुत व्याकुल हूँ। मेरा तालू तृषा से कण्टकित हो रहा है। अव मैं एक डग भी चलने मे असमर्थ हूँ। कही से जल लाकर मुझे दीजिए।' वलराम अपने प्राणोपम अनुज की इस असहाय दशा से व्याकुल होगए। वे सोचने लगे—भरत क्षेत्र के तीन खण्डो का अधिपति और वल-विक्रम मे अनुपम यह मेरा भाई आज इतना अवश क्यो हो रहा है। जो जीवन मे कभी थका नही, वह आज अकस्मात् ही इतना परिश्रान्त क्यो हो उठा है? कोटिशिला को अपने वाहुवल से उठाने वाला नारायण आज सामान्य व्यक्ति के समान निर्वलता अनुभव कर रहा है। क्या कारण है इसका?

वे वोले—'भाई! मैं अभी शीतल जल लाकर तुम्हे पिलाता हूँ। तुम इस वृक्ष की शीतल छाया मे तव तक विश्राम करो।' यो कहकर वे जल की तलाश मे चल दिये। श्रीकृष्ण वृक्ष की छाया मे वस्त्र ओढकर लेट गए। थकावट के कारण उन्हे शीघ्र ही नीद आ गई। भवितव्य दुर्निवार है। जरत्कुमार भ्रमण करता हुआ उसी वन मे आ निकला। दूर से उसने वायु से श्रीकृष्ण के हिलते हुए वस्त्र को हिरण का कान समझा। उसने मृग का शिकार करने की इच्छा से कान तक धनुष खीचकर शर सन्धान किया। सनसनाता वाण श्रीकृष्ण के पैर मे जाकर विंध गया। श्रीकृष्ण ने उठकर चारो ओर देखा, किन्तु उन्हे वहाँ कोई दिखाई नही पडा। तव उन्होने जोर से कहा—'किस अकारण वैरी ने मेरे पादतल को वेधा है? वह आकर अपना कुल और नाम मुझे वतावे। जरत्कुमार ने यह सुनकर अपने स्थान से ही उत्तर दिया—'मैं हरिवश मे उत्पन्न वसुदेव नरेश का पुत्र जरत्कुमार हूँ। भगवान नेमिनाथ ने भविष्य कथन किया था कि जरत्कुमार के द्वारा कृष्ण का वध होगा। भगवान के इस कथन से डरकर मैं वारह वर्ष से इस वन मे रह रहा हूँ। मुझे अपना अनुज कृष्ण प्राणो से भी प्यारा है। इसलिए मैं इतने समय से इस एकान्त मे जन जन से दूर, वहुत दूर रहा हूँ। मैंने इतने समय से किसी आर्य का नाम भी नही सुना। फिर आप कौन है?

जरत्कुमार की वात सुनकर श्रीकृष्ण वोले—'भाई! तुम यहाँ आओ, मैं कृष्ण हूँ, तुम शीघ्र आओ।' जरत्कुमार को ज्ञात तो गया कि यह तो मेरा कृष्ण है। वह शोक करता हुआ शीघ्रता से वहाँ आया। वह पश्चाताप

और ग्लानि की आग मे जला जा रहा था। उसने धनुष-बाण दूर फेंक दिया और श्रीकृष्ण के चरणो मे गिरकर अश्रु बहाने लगा। श्रीकृष्ण ने उसे उठाकर गले से लगाया और सान्त्वना देते हुए बोले—आर्य ! शोक न करें, भवितव्य अलङ्घ्य है। आपने राज वैभव छोडकर वन मे निवास स्वीकार किया, किन्तु दैव के आगे सब व्यर्थ होता है।

श्रीकृष्ण द्वारा समझाने पर भी जरत्कुमार विलाप करता रहा। श्रीकृष्ण बोले—'आर्य ! बडे भाई राम मेरे लिए जल लाने गए है। उनके आने से पूर्व ही आप यहाँ से चले जाँय। सभव है, वे आपके ऊपर क्षुब्ध हो। आप पाण्डवो के पास जाकर उन्हे सब समाचार बतादे। वे हमारे प्रियजन है। वे आपकी रक्षा अवश्य करेंगे।' इतना कहकर उन्होने जरत्कुमार को परिचय के लिए कौस्तुभ मणि देदी और उसे विदा कर दिया।

तदनन्तर श्रीकृष्ण यन्त्रणा के कारण व्याकुल हो गए, किन्तु उन्होने अत्यन्त शान्त भाव से उसे सहन किया। उन्होने पच परमेष्ठियो को नमस्कार करके भगवान नेमिनाथ का ध्यान किया और पृथ्वी पर सिर झुकाकर लेट गए। उन्होने मोह का परित्याग करके शुभ भावनाओ के साथ शरीर का परित्याग किया। वे भविष्य मे भरत क्षेत्र मे तीर्थंकर बनेंगे।

ससार कितना असार है ! जो एक गोप के घर मे मक्खन और दूध पीकर बडे हुए, जो अपने शौर्य और नीति विचक्षणता द्वारा सम्राट् जरासन्ध जैसे प्रतापी नरेश पर विजय पाकर अर्ध चक्रेश्वर के पद पर आरूढ हुए, जिनकी आखो के सकेत ने एक हजार वर्ष के इतिहास का सृजन किया, वे ही महापुरुष श्रीकृष्ण एकान्त वन मे असहाय दशा मे निधन को प्राप्त हुए। वे जब उत्पन्न हुए तो कोई मगल गीत गाने वाला नही था और जब उन्होने मरण का वरण किया तो वहाँ कोई रोने वाला नही था। लगता है, दैव अपने निष्ठुर निर्मम हाथो से सबकी भाग्य लिपि लिखता है। उसका अतिक्रमण करने का साहस किसी मे नही है।

स्नेहाकुल बलराम अपने तृषित प्राणोपम भाई के लिए जल की तलाश मे बहुत दूर निकल गए, किन्तु कहीं जल नही मिल रहा था। मार्ग मे अपशकुन हो रहे थे, किन्तु उनका ध्यान एकमात्र जल की ओर था। जल मिल नही रहा था, विलम्ब हो रहा था, उधर उनके मन मे चिन्ता का ज्वार बढता जा रहा था—मेरा प्यारा भाई प्यासा है, न जाने प्यास के मारे उसकी कैसी दशा होगी। तब उन्होने वेग से दौड़ना प्रारम्भ कर दिया, उनकी दृष्टि जल की तलाश मे चारो ओर थी। पर्याप्त विलम्ब और दूरी के बाद उन्हे जलाशय दिखाई पडा—जल से परिपूर्ण, कमल पुष्पो से सकुल। वे जलाशय पर पहुँचे।

मोहविह्वल बलराम की प्रव्रज्या

उन्होने जल में अवगाहन करके शीतल जल पिया और कमल-दल का पात्र बनाकर जल भरकर ले गए। उन्होने देखा। श्रीकृष्ण वस्त्र ओढकर सो रहे हैं। उन्होने विचार किया—सभवत थक जाने पर मेरा भाई सुख निद्रा मे सो रहा है। इसे स्वय ही जगने दिया जाय। जब बहुत देर हो गई और श्रीकृष्ण नही जागे तो उन्होने श्रीकृष्ण को जगाना उचित समझा। उन्होने कहा—वीर ! इतना अधिक क्यो सो रहे हो। निद्रा छोडो और उठकर यथेच्छ जल पिओ।

इतना होने पर भी श्रीकृष्ण की निद्रा भग नही हुई। तभी बलराम ने देखा कि एक बडी मक्खी व्रण के रुधिर की गन्ध से कृष्ण के ओढे हुए वस्त्र के भीतर घुस गई है किन्तु निकलने का मार्ग न पाने से व्याकुल है। उन्होने श्रीकृष्ण का मुख उघाड दिया। उन्होने देखा कि श्रीकृष्ण निष्प्राण पडे हुए हैं। उन्होने समझा कि मेरा प्यारा भाई प्यास से मर गया है। उनके मुख से आर्त गिरा निकली और वे अचेत होकर गिर पडे। सचेत होने पर वे श्रीकृष्ण के शरीर पर हाथ फेरने लगे। तभी उनकी दृष्टि पैर के व्रण पर पडी, जिसके रुधिर से वस्त्र रक्त वर्ण हो गया था। उन्हे निश्चय हो गया कि सोते समय किसी ने इनके पैर मे बाण से प्रहार किया है। वे भयकर गर्जना करते हुए कहने लगे—किस अकारण शत्रु ने मेरे सोते हुए भाई पर प्रहार किया है, वह मेरे सामने आवे। किन्तु उनका गर्जन-तर्जन निष्फल रहा, कोई भी अकारण शत्रु उनके समक्ष उपस्थित नही हुआ और न उस शत्रु का कोई चिह्न ही मिला।

निरुपाय वे पुन श्रीकृष्ण को गोद मे लेकर करुण विलाप करने लगे। वे मोहान्ध होकर बार-बार श्रीकृष्ण को जल पिलाने लगे। कभी वे जल से उनका मुख धोते, कभी उन्हे चूमते, कभी उनका सिर सूघते। फिर वे अर्गल प्रलाप करने लगते। फिर वे श्रीकृष्ण के शव को लेकर वन मे निरुद्देश्य भ्रमण करते रहे। इस प्रकार न जाने कितनी ऋतुए उनके सिर के ऊपर से गुजर गईं।

उधर जरत्कुमार श्रीकृष्ण के आदेशानुसार पाण्डवो की सभा मे पहुँचा और अपना परिचय दिया। तव युधिष्ठिर ने उससे स्वामी की कुशल-वार्ता पूछी। जरत्कुमार ने शोकोच्छ्वसित अवरुद्ध कण्ठ से द्वारका-दाह तथा अपने प्रमाद से श्रीकृष्ण के निधन के करुण समाचार सुनाये और विश्वास दिलाने के लिये उसने श्रीकृष्ण की दी हुई कौस्तुभमणि दिखाई। ये हृदय विदारक समाचार सुनते ही पाण्डव और उनकी रानियाँ, जरत्कुमार और उपस्थित सभी जन रुदन करने लगे। जब रुदन का वेग कम हुआ, तो पाण्डव, माता कुन्ती, द्रौपदी आदि रानियाँ जरत्कुमार को आगे कर सेना के साथ दु ख से पीडित बलदेव को देखने के लिये चल दिये। कुछ दिनो मे वे उसी वन मे पहुँचे। वहाँ उन्हे बलदेव दिखाई पडे। वे उस समय श्रीकृष्ण के मृत शरीर को उबटन लगाकर उसका शृङ्गार कर रहे थे। यह देखकर पाण्डव शोक से अधीर होकर उनसे लिपट गये और रोने लगे। तव माता कुन्ती ने और पाण्डवो ने बलदेव से श्रीकृष्ण का दाह-सस्कार करने की प्रार्थना की। किन्तु बलदेव यह सुनते ही आग बबूला हो गये। वे प्रलाप करते हुए श्रीकृष्ण के निष्प्राण शरीर को गोद मे लेकर निरुद्देश्य चल दिये। किन्तु पाण्डवो ने उनका साथ नही छोडा, वे भी उनके पीछे-पीछे चलते रहे।

बलदेव का भाई सिद्धार्थ, जो सारथी था, मरकर स्वर्ग मे देव हुआ था तथा जिससे दीक्षा लेने के समय बलदेव ने यह वचन ले लिया था कि यदि मैं मोहग्रस्त हो जाऊँ तो तुम मुझे उपदेश देकर मार्गच्युत होने से बचाओगे, वह देव बलदेव की इस मोहान्ध अवस्था को देखकर वहाँ आया। वह रूप बदलकर एक रथ मे बैठकर बलदेव के सामने आया। रथ पर्वत के विषम मार्ग पर तो टूटा नही, किन्तु समतल भूमि मे चलते ही टूट गया। वह रथ को ठीक कर रहा था, किन्तु वह ठीक ही नही होता था। यह देखकर बलदेव बोले—'भद्र ! तेरा रथ पर्वत के ऊबड खावड़ मार्ग पर टूटा नही, किन्तु समतल मार्ग मे टूट गया, यह बडा आश्चर्य है। अब यह ठीक नही हो सकता, इसे ठीक करना व्यर्थ है। देव ने बलदेव को आश्चर्य मुद्रा मे देखा और बोला—महाभारत युद्ध मे जिन महारथी कृष्ण का बाल बाका नही हुआ, वे जरत्कुमार के एक साधारण बाण से भूमि पर गिर पडे। अब इस जन्म मे उनका फिर से उठना क्या सभव है ?

बलदेव उसकी बात की उपेक्षा करके आगे बढ गये। आगे जाने पर उन्होने देखा—एक व्यक्ति शिलातल पर कमलिनी उगाने का प्रयत्न कर रहा है। यह देखकर बलदेव बोले—'क्यो भाई ! क्या शिलातल पर भी कमलिनी उग सकती है ?' देव जैसे इस प्रश्न के लिये तैयार ही बैठा था—'आप ठीक कहते है, पाषाण के ऊपर तो कमलिनी नही उग सकती है किन्तु निर्जीव शरीर मे कृष्ण पुन जीवित हो उठेगे ?'

बलदेव आगे बढे तो क्या देखते हैं कि एक मूर्ख व्यक्ति सूखे वृक्ष को सीच रहा है। बलदेव से नही रहा गया, वे पूछ ही बैठे—क्यो भाई ! इस सूखे वृक्ष को सीचने से क्या लाभ है, यह क्या पुन हरा हो जायगा ? देव ने उत्तर दिया—'मेरा वृक्ष सीचने से तो हरा नही होगा, किन्तु आपके निर्जीव कृष्ण स्नान-भोजनादि कराने से अवश्य जीवित हो उठेंगे।' बलदेव 'उह' करके आगे चल दिये।

उन्होने देखा—'एक मनुष्य मृत बैल को घास-पानी दे रहा है। उन्होने सोचा—दुनिया मे मूर्खो की कमी नही है। वे कहने लगे-अरे भोले मानस ! इस मृतक को घास-पानी देने से क्या लाभ है ? यह सुनते ही वह मनुष्य तन कर खडा हो गया और बोला—दूसरो को उपदेश देने वाले ससार मे बहुत हैं, किन्तु स्वय उस उपदेश पर अमल करने वाले कम ही मिलते हैं। मेरा मृतक बैल तो दाना-पानी नही खा सकता, किन्तु आपके मृतक कृष्ण अवश्य खाना-पानी खा सकते हैं। क्या यही आपका विवेक है ?' यह सुनते ही बलदेव के अन्तर मे एक झटका-सा लगा और प्रकाश की एक ज्योति कोध गई। वे बोले—'भद्र ! आप ठीक कह रहे हैं। मैं अब तक मोह मे अन्धा हो रहा था। कृष्ण का शरीर तो सचमुच ही प्राणरहित हो गया है।' देव बोला—जो कुछ भी हुआ, भगवान नेमीश्वर पहले ही सब कुछ बता चुके हैं। किन्तु सब कुछ जानते हुए भी आप जैसे विवेकी महापुरुष ने छह माह व्यर्थ ही खो दिये। संयोग वियोगपरिणामी है। जन्म मे मरण की विभीषिका छिपी हुई है, सुख के फूल दु ख के काटो मे बिंधे हुए है। केवल मोक्ष-सुख ही अविनाशी है। उसी को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।' इस प्रकार कहकर देव ने अपने वास्तविक रूप मे प्रगट होकर अपना परिचय दिया। बलदेव ने जरत्कुमार और पाण्डवो की सहायता से तुंङ्गीगिरि

पर कृष्ण का दाह-सस्कार किया, जरत्कुमार को राज्य दिया और नेमीश्वर भगवान की साक्षी से वही उन्होने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली।

मुनि बलदेव अत्यन्त रूपवान थे। वे जब नगर मे चर्या के लिये जाते थे, तो उन्हे देखकर कामिनियां काम-विह्वल हो जाती थी। यह देखकर उन्होने नियम लिया कि यदि मुझे वन मे ही आहार मिलेगा, तो लूंगे, अन्यथा नही। वे कठोर तप द्वारा शरीर का कृश करने लगे, किन्तु उसमे आत्मा की निर्मलता बढती गई। वे वन मे ही विहार करते थे। यह बात राजाओं के भी कान मे पडी। वे अपने पुराने वैर-विरोध को स्मरण कर शस्त्रसज्जित होकर उसी वन मे आगये। सिद्धार्थ देव ने यह देखकर वन मे सिंह ही सिंह पैदा कर दिये। जब उन राजाओ ने मुनि बलदेव के चरणो मे अनेक सिंह देखे तो उनकी सामर्थ्य देखकर शान्त हो गये। तभी से जगत मे बलदेव मुनिराज नरसिंह नाम से विख्यात हो गये।

उन्होंने सौ वर्ष तक घोर तप किया। अन्त मे समाधि धारण करके वे ब्रह्मलोक मे इन्द्र बने। अवधिज्ञान से उसने पूर्व जन्म के बन्धु-बान्धवो को जान लिया। वह अपने पूर्वजन्म के प्राणोपम भाई कृष्ण के जीव के पास गया। उसने कृष्ण को अपने साथ ले जाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सफल नहीं हो सका। तब कृष्ण के जीव ने उसे समझाया—देव! सब जीव अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार शुभ-अशुभ गति और सुख-दुःख पाते हैं। कोई किसी को सुख देने और दुःख हरने मे समर्थ नही है। हम दोनों अपनी वर्तमान आयु पूर्ण करके मनुष्य पर्याय प्राप्त करेंगे और वहाँ तप करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।

ब्रह्मेन्द्र वहां से वापिस आ गया और कृष्ण के जीव के अनुरोध के अनुसार उसने इस पृथ्वी पर कृष्ण के अनेक मन्दिर बना दिये, कृष्ण की मूर्तियां, शख, चक्र और गदा युक्त बनाई और कृष्ण को भगवान का अवतार बताकर लोगो को भ्रमित कर दिया। उसने बलदेव को शेषनाग का अवतार बताकर एक विमान मे कृष्ण और बलदेव का रूप बनाकर लोगों को दर्शन दिये। इस प्रकार ससार मे कृष्ण को भगवान का अवतार मानने की मान्यता और कृष्ण-पूजा प्रचलित हुई। उनके नानाविध मोहन रूपो की कल्पना की गई और उन्हे सोलह कला का अवतारी पूर्ण पुरुष मान लिया गया।

पाण्डवो ने जरत्कुमार का राज्याभिषेक किया, उसका विवाह अनेक सुलक्षणा कन्याओ के साथ कर दिया। इस काम से निश्चिन्त होकर वे पल्लव देश मे गये, जहाँ भगवान नेमिनाथ विराजमान थे। उन्होने भगवान को नमस्कार किया और प्रदक्षिणा देकर यथोचित स्थान पर बैठकर भगवान का अमृत उपदेश सुना। सुनकर उन्होने भगवान के चरणो मे मुनिदीक्षा लेली। कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा आदि रानियां राजीमती आर्यिका के समीप दीक्षित हो गई।

पाण्डवो की निर्वाण-प्राप्ति

एक बार पांचो पाण्डव मुनि शत्रुंजय पर्वत पर प्रतिमायोग से विराजमान थे। तभी दुर्योधन का भानजा घूमता-फिरता उधर ही आ निकला। उसने पाण्डवो को देखा। उसके मन मे यह सोचकर अत्यन्त क्षोभ हुआ कि मेरे मातुल वश का उच्छेद करने वाले ये ही दुष्ट पाण्डव हैं। मुझे अपने मातुल वश के इन शत्रुओ से प्रतिशोध लेने का आज यह स्वर्ण सुयोग प्राप्त हुआ है। यह विचारकर वह गाव मे जाकर लोहे के आभूषण ले आया और उन्हे प्रज्वलित अग्नि मे तपाकर पाचो पाण्डवो को पहना दिये। उन तप्त लौहाभरणो से मुनियो के शरीर तिल-तिलकर जलने लगे। किन्तु धीर वीर और आत्मा के शुद्ध स्वभाव को जानने वाले वे मुनिराज आत्मस्वभाव मे लीन हो गये। शरीर जलता रहा और उनके वीतराग परिणामो से कर्म जलते रहे। उनका ध्यान आत्मा मे था, शरीर की ओर उनका उपयोग नही था, अतः शरीर के दाह का अनुभव भी उन्हे नही हुआ। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन मुनिराज तो शुक्लध्यान द्वारा कर्मों का क्षय कर सिद्ध परमात्मा बन गये और नकुल, सहदेव मुनिराज सर्वार्थसिद्धि मे अहमिन्द्र हुए।

भगवान नेमिनाथ उपदेश करते हुए उत्तरापथ से सौराष्ट्र देश मे गिरनार पर्वत पर पहुँचे। वहाँ आकर भगवान ने समवसरण मे विराजमान होकर उपदेश दिया। फिर समवसरण विसर्जित हो गया। भगवान एक माह तक योग निरोध कर ध्यानलीन हो गये। उन्होनें अघातिया कर्मों का नाश करके आषाढ कृष्णा अष्टमी के दिन

भगवान नेमिनाथ का निर्वाण कल्याणक

प्रदोष काल मे अपने जन्म नक्षत्र के रहते ५३६ मुनियो के सहित सिद्धपद प्राप्त किया। उनके ८००० शिष्यो ने मुक्ति प्राप्त की। भगवान नेमिनाथ के कुल ४ अनुबद्ध केवली हुए। चारो निकाय के इन्द्रो और देवो ने आकर भगवान का निर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया। इन्द्र ने गिरनार पर्वत पर वज्र से उकेरकर पवित्र सिद्धशिला का निर्माण किया और उस पर जिनेन्द्र भगवान के लक्षण अकित किये।

यादवो मे समुद्रविजय आदि नौ भाई, देवकी के युगल छह पुत्र, शव, प्रद्युम्नकुमार आदि मुनि भी गिरनार पर्वत से मोक्ष को प्राप्त हुए।

जरत्कुमार पृथ्वी का शासन करने लगा। कलिंग नरेश की पुत्री जरत्कुमार की पटरानी थी। उसके वसुध्वज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वसुध्वज राज्य-शासन करने योग्य हो गया, तब जरत्कुमार पुत्र पर राज्य-भार सौप कर मुनि-दीक्षा लेकर तप करने लगा। वसुध्वज के सुवसु नामक पुत्र हुआ। सुवसु के भीमवर्मा पुत्र हुआ जो कलिंग का शासक था। इस प्रकार इस वश मे अनेक राजा हुए। फिर कपिष्ट, उसके अजातशत्रु, उसके शत्रुसेन, शत्रुसेन के जितारि और जितारि के जितशत्रु हुआ। जितशत्रु के साथ भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ की छोटी वहन का विवाह हुआ। जब भगवान महावीर का जन्मोत्सव हो रहा था, तब जितशत्रु कुण्डलपुर आया था। उस समय महाराज सिद्धार्थ ने अपने इस पराक्रमी मित्र का बडा सम्मान किया था। सिद्धाथ का वहन का नाम यशोदया था। उसके यशोदा नामक पुत्री हुई। जितशत्रु अपनी पुत्री का विवाह महावीर के साथ करना चाहता था, किन्तु महावीर ने विवाह करने से इनकार कर दिया और तप करने चले गये। जितशत्रु और यशोदा दोनो ने भी दीक्षा लेली। बाद मे मुनिराज जितशत्रु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और वे मोक्ष गये।

जरत्कुमार की वश-परम्परा

भगवान नेमिनाथ : एक ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व

कुछ वर्ष पूर्व तक विद्वानो को श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता मे सन्देह था, किन्तु अब उन्हे ऐतिहासिक महापुरुष स्वीकार कर लिया गया है। ऐसी दशा मे श्रीकृष्ण के समकालीन और उनके ताऊ समुद्रविजय के पुत्र नेमिनाथ की ऐतिहासिकता मे सन्देह करने का कोई कारण नही है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ० राय चौधरी ने 'वैष्णव धर्म का इतिहास' ग्रन्थ मे नेमिनाथ को श्रीकृष्ण का चचेरा भाई लिखा है। उन्होने श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं किन्तु नेमिनाथ के सम्वन्ध मे विशेष ज्ञातव्य नही दिया। सभवत इसका कारण यही रहा है कि उनकी दृष्टि और उनका वर्ण्य विषय श्रीकृष्ण ही थे। उन्होने नेमिनाथ का चरित्र-चित्रण करने मे जैन ग्रन्थो का उपयोग करने मे कोई रुचि नही दिखाई।

पी० सी० दीवान[1] ने इसके दो कारण बताये है। प्रथम तो यह कि हमे यह स्वीकार करना होगा कि हमारे वर्तमान ज्ञान के लिए यह सभव नही है कि जैन ग्रन्थकारो द्वारा एक तीर्थंकर से दूसरे तीर्थंकर के बीच सुदीर्घकाल का अन्तराल कहने मे उनका क्या अभिप्राय है, इसका विश्लेषण कर सके। किन्तु केवल इसी कारण से जैन ग्रन्थो मे वर्णित अरिष्टनेमि के जीवन वृत्तान्त को, जो अति प्राचीन प्राकृत ग्रन्थो के आधार पर लिखा गया है, दृष्टि से ओझल कर देना युक्तियुक्त नही है। दूसरे कारण का स्पष्टीकरण स्पष्ट है। भागवत सम्प्रदाय के ग्रन्थकारो ने अपने परम्परागत ज्ञान का उतना ही उपयोग किया है जितना श्रीकृष्ण को परमात्मा सिद्ध करने के लिए आवश्यक था। जैन ग्रन्थो मे ऐसे अनेक ऐतिहासिक तथ्य वर्णित हैं, जैसा कि ऊपर दिखाया है, जो भागवत साहित्य के वर्णन मे नही मिलते।"

वैदिक साहित्य मे यादव वश का विस्तृत वर्णन मिलता है। उसमें अरिष्टनेमि का उल्लेख भी अनेक स्थलो पर उपलब्ध होता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि हिन्दू पुराणो में भी यादव वश का वर्णन एक-सा नही है, उसमें पर्याप्त असमानता है। हिन्दू पुराण 'हरिवश' मे यादव वश-परम्परा इस प्रकार दी है—

1. Annals of the Bhandarkar Research Institute, Poona, Vol 23, P. 122

महाराज यदु के सहस्रद, पयोद, क्रोष्टा, नील और अजिक नामक देवकुमारों के तुल्य पाच पुत्र हुए। क्रोष्टा की माद्री नाम की दूसरी रानी से युधाजित और देवमीढुष नामक दो पुत्र हुए। युधाजित के वृष्णि और अन्धक नामक दो पुत्र हुए। वृष्णि के दो पुत्र हुए—स्वफल्क और चित्रक। स्वफल्क के अक्रूर हुआ। चित्रक के बारह पुत्र हुए जिनके नाम इस प्रकार थे—

चित्रकस्याभवन् पुत्रा पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥१५॥
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्माधर्मभृत्तथा।
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥१६॥

—हरिवंश पु०, पर्व १, अध्याय ३४

चित्रक के पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु और बहुबाहु नामक बारह पुत्र और श्रविष्ठा एव श्रवणा नाम की दो पुत्रियां हुई।

यहाँ चित्रक के एक पुत्र का नाम अरिष्टनेमि दिया है।

हरिवंश पुराण मे श्रीकृष्ण की वश-परम्परा इस प्रकार दी है—

क्रोष्टा के दूसरे पुत्र देवमीढुष के शूर, शूर के दस पुत्र और पाच पुत्रियां हुई। पुत्रों के नाम इस प्रकार थे—वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, अनावृष्टि, कनवक, वत्सवान्, गृजिम, श्याम, शमीक और गण्डूष। पुत्रियो के नाम ये थे—पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी

—हरिवंश पर्व १, अ० ३४, श्लोक १७-२३

हरिवंश पुराण पर्व २ अध्याय ३७ और ३८ मे एक दूसरी वश-परम्परा दी है जो इस प्रकार है—

इक्ष्वाकु वश मे हर्यश्व हुआ। उसकी रानी मधुमती से यदु नामक पुत्र हुआ। यदु के पाच पुत्र हुए—मुचकुन्द, माधव, सारस, हरित और पार्थिव। माधव से सत्वत, सत्वत से भीम, भीम से अन्धक, अन्धक से रैवत, रैवत से विश्वगर्भ, विश्वगर्भ की तीन स्त्रियो से चार पुत्र हुए—वसु, बभ्रु, सुषेण और सभाक्ष। वसु से वसुदेव और वसुदेव से श्रीकृष्ण हुए।

हरिवंश पुराण के समान महाभारत मे भी यदुवश की दो परम्परायें दी गई हैं—

प्रथम परम्परा के अनुसार बुध से पुरुरव, पुरुरव से आयु, आयु से नहुष, नहुष से ययाति, ययाति से यदु, यदु से क्रोष्टा, क्रोष्टा से वृजिनिवान्, वृजिनिवान् से उपगु, उपगु से चित्ररथ, चित्ररथ का छोटा पुत्र शूर, शूर से वसुदेव और वसुदेव से चतुर्भुजाधारी श्रीकृष्ण हुए।

—महाभारत, अनुशासन पर्व, अ० १४७ श्लोक २७—३२

महाभारत की द्वितीय परम्परा के अनुसार ययाति की रानी देवयानी से यदु हुआ। उसके वश मे देवमीढ हुआ। देवमीढ से शूर, शूर से शौरि वसुदेव हुए।

—महाभारत, द्रोणपर्व, अ० १४४, श्लोक ६—७

इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दू पुराणो मे यदुवश की परम्परा के सम्बन्ध मे अनेक मत प्राप्त होते है। काल के लम्बे अन्तराल ने यदु वश परम्परा को विस्मृति के कुहासे मे ढक दिया। जिन ऋषियो ने जैसा सुना, वैसा लिख दिया।

दूसरी ओर जैन परम्परा मे यदु-वश की एक ही परम्परा उपलब्ध होती है। दिगम्बर और श्वेताम्बर आचार्यो की अपनी-अपनी निरवच्छिन्न परम्परा रही है। इसी कारण दोनो ही सम्प्रदायो मे यदु-वश-परम्परा मे एकरूपता और समानता मिलती है। जैन परम्परा के अनुसार यदुवश परम्परा इस भाति है—

हरिवंश मे यदु नामक प्रतापी राजा हुआ। इसी से यदुवश चला। यदु से नरपति, नरपति के दो पुत्र हुए—शूर और सुवीर। सुवीर मथुरा मे शासन करने लगा। शूर ने कुशद्य देश मे शौर्यपुर नगर बसाया और वहीं शासन करने लगा। शूर के अन्धकवृष्णि और सुवीर के भोजकवृष्णि पुत्र हुआ। अन्धकवृष्णि के १० पुत्र हुए—

१ समुद्रविजय, २ अक्षोभ्य, ३ स्तिमितसागर, ४ हिमवान, ५ विजय, ६ अचल, ७ धारण, ८ पूरण, ९ अभिचन्द्र और १० वसुदेव। दो पुत्रियां हुई—कुन्ती और माद्री। समुद्रविजय के नेमिनाथ अथवा अरिष्टनेमि हुए, जो वाईसवे तीर्थंकर थे। वसुदेव के वलराम और श्रीकृष्ण हुए जो नौवे वलभद्र और नारायण थे। इस प्रकार नेमिनाथ और श्रीकृष्ण चचेरे भाई थे।

जैन परम्परा के समान हिन्दू पुराण 'हरिवश' के अनुसार भी श्रीकृष्ण और अरिष्टनेमि चचेरे भाई थे। इन दोनो के परदादा युधाजित और देवमीढुष दोनो सहोदर थे।

हिन्दू पुराणो मे हरिवश पुराण और महाभारत के अतिरिक्त प्रभास पुराण मे रैवत (गिरनार) पर्वत पर नेमि जिन का उल्लेख मिलता है और उन्हे मुक्तिमार्ग का कारण वताया है। वह उल्लेख इस प्रकार है—

"रैवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम्॥

स्कन्द पुराण के प्रभास खण्ड मे शिव और नेमिनाथ को एक माना है। सन्दर्भ इस प्रकार है—

"भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तप. कृतम्।
तेनैव तपसाकृष्ट शिवः प्रत्यक्षतां गत॥
पद्मासन· समासीन· श्याममूर्तिर्दिगम्बरः।
नेमिनाथ शिवोऽथैव नाम चक्रेऽस्य वामन॥
कलिकाले महाघोरे सर्वपापप्रणाशक।
दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रद·॥

अर्थात् जन्म के अन्तिम भाग मे वामन ने तप किया। उस तप के कारण शिव ने वामन को दर्शन दिया। वे शिव पद्मासन से· स्थित थे। श्याम वर्ण थे और दिगम्बर थे। वामन ने उन शिव का नाम नेमिनाथ रक्खा। ये नेमिनाथ इस घोर कलिकाल मे सब पापो के नाश करने वाले है। उनके दर्शन और स्पर्शमात्र से करोडो यज्ञो का फल होता है।

यहाँ शिव को पद्मासनासीन, श्याम वर्ण और दिगम्बर बताया है और उनको नेमिनाथ नाम दिया है। जैन परम्परा मे नेमिनाथ कृष्ण वर्ण, पद्मासनासीन और दिगबर माने गये है। उनकी मूर्तियो मे ये तीन बिशेषतायें होती है। जवकि शिव वस्तुत कृष्ण वर्ण के नही थे। हिन्दू पुराणो की एक विशेष शैली है। वे वैदिकेतर महा-पुरुषो को शिव या विष्णु के अवतार के रूप मे चित्रित करते हैं। उन्होने ऋषभदेव को विष्णु के अवतार के रूप मे चित्रित किया है। इसी प्रकार नेमिनाथ को शिव के रूप मे लिखा है।

हिन्दू पुराणो मे शौरिपुर के साथ यादवो का कोई सबन्ध स्वीकार नही किया। किन्तु महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १४९ मे विष्णुसहस्र नाम मे दो स्थानो पर 'शूर शौरिर्जनेश्वर' पद आया है। यथा—

'अशोकस्तारणस्तार शूरः शौरिर्जनेश्वरः॥५०॥
कालनेमिनिहा वीरः शूरः शौरिर्जनेश्वर·॥८२॥

इसमे उल्लेखनीय बात यह है कि इसमे श्रीकृष्ण को शौरि लिखा है। आगरा से ४० मील दूर शौरीपुर नामक स्थान है। जैन साहित्य मे नेमिनाथ का जन्म इसी शौरीपुर मे माना गया है। यादवो की अन्धकवृष्णि शाखा की राजधानी यही नगरी थी। यही पर नेमिनाथ और श्रीकृष्ण के पिता रहते थे। हिन्दू 'हरिवश पुराण' मे भी श्रीकृष्ण को एक स्थान पर शौरि लिखा है। यथा—

'वसुदेवाच्च देवक्य। जज्ञे शौरिर्महायशाः॥७॥

—हरिवश पुराण पर्व १, अध्याय ३५

महाभारत मे तो वसुदेव के विशेषण के रूप मे शौरि पद प्रयुक्त हुआ है। यथा—

शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः॥७॥

—महाभारत, द्रोणपर्व, अध्याय १४४

इन उल्लेखो से इस जैन मान्यता की पुष्टि होती है कि वसुदेव, श्रीकृष्ण और नेमिनाथ शौरीपुर के रहने वाले थे, जबकि हिन्दू मान्यता मे शौरीपुर को कोई स्वीकृति नही मिलती। जैन मान्यता के अनुसार जरासन्ध के आक्रमणो से परेशान होकर और युद्ध की तैयारी के लिये समय प्राप्त करने के उद्देश्य मे यादवो ने शौरीपुर से पलायन किया था और द्वारका नगरी का निर्माण करके वहाँ रहने लगे थे।

जब हम हिन्दू पुराणो से पूर्ववर्ती वैदिक साहित्य पर दृष्टिपात करते है तो हमे उसमे भी अरिष्टनेमि के उल्लेख अनेक स्थलो पर प्राप्त होते हैं। वैदिक साहित्य मे ऋग्वेद को प्राचीनतम रचना स्वीकार किया जाता है। उसमे अनेक मन्त्रो का देवता अरिष्टनेमि है और उसकी बार-बार स्तुति की गई है।[1]

अथर्ववेद के माण्डूक्य, प्रश्न और मुण्डक उपनिषदो मे भी अरिष्टनेमि के उल्लेख मिलते है।

हिन्दू साहित्य के समान बौद्ध साहित्य मे भी अरिष्टनेमि का स्मरण अनेक स्थानो पर किया गया है। 'लंकावतार' के तृतीय परिवर्तन मे लिखा है—जैसे एक ही वस्तु के अनेक नाम होते हैं, ऐसे ही बुद्ध के भी असख्य नाम हैं। लोग इन्हे तथागत, स्वयभू, नायक, विनायक, परिणायक, बुद्ध, ऋषि, वृषभ, ब्राह्मण, ईश्वर विष्णु, प्रधान, कपिल, भूतान्त, भास्कर, अरिष्टनेमि आदि नामो से पुकारते हैं।

'ऋषि भाषित सुत्त' मे अरिष्टनेमि और कृष्ण निरूपित पैंतालीस अध्ययन हैं। उनमे बीस अध्ययनो के प्रत्येक बुद्ध अरिष्टनेमि के तीर्थकाल मे हुए थे।

इतिहासकारो मे कर्नल टाड लिखते है—'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल मे चार बुद्ध या मेधावी महापुरुष हुए हैं। उनमे पहले आदिनाथ और दूसरे नेमिनाथ थे। नेमिनाथ ही स्केण्डोनेविया निवासियो के प्रथम 'ओडिन' और चीनियो के प्रथम 'फो' देवता थे।'

श्रीकृष्ण के गुरु

छान्दोग्य उपनिषद् मे देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण का उल्लेख मिलता है। उसमे उनके गुरु का नाम घोर आङ्गिरस बताया है। आङ्गिरस ऋषि ने श्रीकृष्ण को नैतिक तत्वो एव अहिंसा का उपदेश दिया। जैनो की मान्यतानुसार भगवान नेमिनाथ ने श्रीकृष्ण को अहिंसा का उपदेश दिया था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् धर्मानन्द कौशाम्बी ने 'भारतीय सस्कृति और अहिंसा' पुस्तक के पृष्ठ ३८ में यह सभावना व्यक्त की है कि घोर आङ्गिरस नेमिनाथ के अतिरिक्त अन्य कोई नही हो सकते। यद्यपि इस सभावना की पुष्टि अन्य प्रमाणो द्वारा अभी तक नही हो पाई है। किन्तु जैन पुराणो में श्रीकृष्ण को अहिंसा का उपदेश देने वाले नेमिनाथ और छान्दोग्य उपनिषद् में श्रीकृष्ण को अहिंसा का उपदेश देने वाले घोर आङ्गिरस मे समानता के बीज ढूंढे जा सकते हैं। अन्वेषण के फलस्वरूप नेमिनाथ और आङ्गिरस में ऐक्य स्थापित हो जाय तो कोई आश्चर्य न होगा।

श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार मानने की परिकल्पना

हिन्दू धर्म मे श्रीकृष्ण का प्रभाव सर्वोपरि है। भागवत आदि पुराणो मे विष्णु के जिन चौबीस अथवा दशावतारो की कल्पना की गई है, उनमे श्रीकृष्ण को पूर्णावतार और शेष अवतारो को अशावतार स्वीकार किया गया है। वेदो मे अवतारवाद की यह कल्पना दृष्टिगोचर नही होती। उपनिषद् काल मे भी अवतारवाद का जन्म नही हुआ। ब्राह्मण काल मे अवतारवाद के बीज प्राप्त होते हैं। शतपथ ब्राह्मण मे सर्वप्रथम यह उल्लेख मिलता है कि प्रजापति ने मत्स्य, कूर्म और वराह का अवतार लिया था। किन्तु इसमें भी विष्णु के अवतार लेने का कोई सकेत नही है। पौराणिक काल मे सभवतः इसी भावना को पल्लवित और विकसित करके विष्णु के अवतार की कल्पना की गई। इस प्रकार अवतारवाद की मान्यता वैदिक धर्म के लिये सर्वथा नवीन और अपूर्व थी। किन्तु वैदिक ऋषियो को वेदो में वर्णित भौतिक और काल्पनिक देवताओ को तिलाञ्जलि देकर विष्णु के मानव देहधारी अवतार की कल्पना क्यो करनी पडी, यह जानना अत्यन्त रुचिकर होगा और उससे वैदिक धर्म के क्रमिक विकास के इतिहास पर प्रकाश पडता है।

१ ऋग्वेद १।१४।८९।६, १।२४।१८०।१०, ३।४।५३।१७, १०।१२।१७८।१ मथुरा सस्करण १९६०

जब वैदिक आर्य पश्चिमोत्तर प्रदेश से भारत में प्रविष्ट हुए, उन्हे यहा जिन लोगो से पाला पडा, वे शिश्न-देव, व्रात्य, और वातरशना मुनियो की उपासना करते थे। उनकी सभ्यता अत्यन्त समुन्नत और विकसित थी। इतिहासकारों ने उसे द्रविड सभ्यता का नाम दिया है। उस सभ्यता के दर्शन हमें सिन्धुघाटी के 'मोहन-जोदडो और हडप्पा मे मिलते है। उस सभ्यता को नागर सभ्यता भी कहा जाता है। नागर सभ्यता से नगर नियोजन की उस विकसित परम्परा का आशय लिया जाता है जो इन नगरो में उत्खनन के परिणामस्वरूप हमे देखने को मिलती है। इन वैदिक आर्यों ने भारत मे आकर दो कार्य किये—इनके योद्धा लोगो ने यहाँ के मूल निवासियो पर क्रमश विजय पाई और इनके विद्वान् ब्राह्मण ऋषि मन्त्रो की रचना करके प्रकृति के तत्त्वो की देवता के रूप मे पूजा करते थे। जब धीरे-धीरे वैदिक आर्यों का राज्य कुछ प्रदेशो मे स्थिर हो गया और स्थानीय मूल निवासियो के साथ वे घुल मिल गये तो दोनो सस्कृतियो का एक दूसरे पर प्रभाव पडना प्रारम्भ हुआ और इस प्रकार सास्कृतिक आदान-प्रदान का क्रम चालू हुआ।

यहाँ के मूल निवासियो की सस्कृति, जिसे श्रमण सस्कृति के नाम से जाना जाता है, क्षत्रियो की सस्कृति थी तथा बाहर से आने वाले आर्यों की सस्कृति, जिसे वैदिक सस्कृति पुकारा जाता है, ब्राह्मणो की सस्कृति थी। दोनो के सास्कृतिक आदान-प्रदान के इस काल को हम सक्रान्ति काल मान सकते हैं। इस काल मे युद्ध का रूप बदल गया, युद्ध का उद्देश्य बदल गया। जब आर्य आये थे, उस समय उनका एकमात्र उद्देश्य अपने लिये राज्य प्राप्त करना था, भूमि प्राप्त करनी थी, जहाँ टिक सके। जब राज्य प्राप्त हो गया और वे टिक गये, तब युद्ध का एक नया रूप उभरा। वह रूप था सास्कृतिक। अब युद्ध न केवल राजनैतिक होते थे, अपितु उन्होने एक सास्कृतिक रूप ले लिया। दोनो ही सस्कृतियाँ अपने प्रचार प्रसार की ओर अधिक ध्यान देने लगी, दोनो ही सर्वसाधारण को अपनी श्रेष्ठता से प्रभावित करने के लिए सचेष्ट हो उठी, दोनो ही अपने आपको दूसरी से श्रेष्ठतर सिद्ध करने मे जुट पडी। प्रथम चरण मे इस युद्ध का मोड जातीय श्रेष्ठता सिद्ध करने की ओर हो गया। ब्राह्मणो ने अपने आपको अन्य वर्णो से श्रेष्ठतम घोषित किया और ब्रह्मर्षि जैसे सर्वोच्च पद के लिए ब्राह्मण होना अनिवार्य करार दिया। दूसरी ओर श्रमण सस्कृति के उन्नायको ने मानवो मे श्रेष्ठतम तीर्थंकर पद के लिए केवल क्षत्रिय कुल मे जन्म लेना आवश्यक बताया। इस जातीय सघर्ष के इतिहास की झलक हमे वैदिक साहित्य मे यत्र-तत्र बिखरी हुई देखने को मिलती है। इसका एक सशक्त उदाहरण विश्वामित्र और वशिष्ठ के युद्ध के रूप मे मिलता है। वैदिक आख्यान के अनुसार गाधि के पुत्र विश्वामित्र नामक एक क्षत्रिय राजा ने राज्य का परित्याग करके ब्रह्मर्षित्व प्राप्त करने के लिए घोर तप करना प्रारभ कर दिया। आर्यो के उपास्य इन्द्र ने, जो वस्तुत देव नामक मनुष्य जाति का राजा होता था, विश्वामित्र को तप से भ्रष्ट करने के लिये अपनी जाति की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी अप्सरा मेनका को भेजा। उसने अपने हाव-भाव और नृत्य विलास से उस युवक क्षत्रिय ऋषि को विचलित करके अपने प्रति अनुरक्त कर लिया। फलत शकुन्तला नामक कन्या का जन्म हुआ। किन्तु कन्या को जन्म देकर मेनका वहाँ से तिरोहित हो गई। तब विश्वामित्र को रहस्य समझते देर नही लगी। वे कन्या को वन में ही छोडकर पुन अतिशय घोर तप करने लगे। इससे ऋषि गणो मे भयानक हलचल मच गई। तब भी ऋषियो ने उन्हे ब्रह्मर्षि स्वीकार नही किया, बल्कि विश्वामित्र के ब्रह्मर्षि बनने के दावे को झुठलाने और उन्हे दण्ड देने के लिए एक विशाल सैन्य बल के साथ महर्षि वशिष्ठ आगे आये। वैदिक आख्यान के अनुसार दोनो मे साठ हजार वर्ष तक घोर युद्ध हुआ। सारे ऋषि महर्षि और देवता एक ओर थे, जबकि लगता है, क्षत्रिय वर्ग ने विश्वामित्र का पक्ष लिया। अन्त मे विजय विश्वामित्र के पक्ष की हुई। ऋषियो ने विश्वामित्र के आगे झुककर उन्ही की शर्तों पर समझौता किया। समझौते के अनुसार विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि पद प्रदान किया गया, उन्हे सप्तर्षियो मे स्थान दिया गया और उनके द्वारा रचित गायत्री मत्र को समस्त वैदिक मत्रो से शक्तिशाली और वेदो का सार मान लिया गया। विश्वामित्र के आग्रह का एक सीमित उद्देश्य था और वह था स्वय को ब्रह्मर्षि पद पर प्रतिष्ठित करना। उनका उद्देश्य न तो व्यापक था और न समस्त क्षत्रिय जाति को ब्रह्मर्षि पद के लिए अधिकार दिलाने का उनका आग्रह ही था। अपने उद्देश्य मे वे सफल हो गये और उन्होने विजय प्राप्त करके ब्राह्मण जाति की सर्वश्रेष्ठता को थोथा साबित कर दिया। इसी जातीय सघर्ष की शृखला की एक कड़ी परशुराम द्वारा इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करने का प्रयत्न थी।

इस सांस्कृतिक युद्ध का दूसरा चरण उस समय प्रारम्भ हुआ, जब जातीय युद्ध से लोग ऊब गये। उस समय तक आर्य लोग विशाल भूखण्ड पर अधिकार कर चुके थे और वे यहाँ के मूल निवासियों के साथ काफी घुलमिल गये थे और उनकी संस्कृति की अनेक विशेषताओं से वे प्रभावित हो चुके थे। उन्होंने अनुभव किया कि नीरस यज्ञ-यागों और शुष्क क्रियाकाण्डों के सहारे संस्कृति की गाड़ी को गति नहीं मिल सकती। ये जनमानस को अधिक प्रभावित भी नहीं करते। दूसरी ओर क्षत्रिय वर्ग गम्भीर आध्यात्मिक तत्व चिन्तन में निरत था। उससे अध्यात्म रसिकों की जिज्ञासा को समाधान मिलता था। क्षत्रिय वर्ग की इस अध्यात्मविद्या से प्रभावित होकर ही वैदिक ऋषियों ने उस काल में उपनिषदों की रचना की। उपनिषदों में अनेक स्थलों पर इस प्रकार के कथानक और परिसंवाद उपलब्ध होते है, जिनसे ज्ञात होता है कि अनेक ऋषि क्षत्रियों के निकट अध्यात्मविद्या सीखने जाते थे। वस्तुत उस काल तक आत्म विद्या के स्वामी क्षत्रिय ही थे, ब्राह्मण ऋषियों को आत्म विषयक ज्ञान नहीं था।

छान्दोग्य उपनिषद् (५-३) मे एक संवाद आया है, जिसका आशय इस प्रकार है—एक बार आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु पाञ्चाल देश के लोगों की सभा में आया। उससे जीवल के पुत्र प्रवाहण ने पूछा—'कुमार! क्या पिता ने तुझे शिक्षा दी है?' उसने कहा—'हाँ भगवन्!' तब प्रवाहण ने उससे आत्मा और उसके पुनर्जन्म के सम्बन्ध मे कुछ प्रश्न पूछे किन्तु वह एक का भी उत्तर नहीं दे सका। तब निराश होकर श्वेतकेतु अपने पिता के पास गया और सारी घटना बताकर कहा कि आपने मुझसे यह कैसे कह दिया कि मैंने तुझे शिक्षा दी है। मैं उस क्षत्रिय के एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। तब वह गौतम गोत्रीय ऋषि बोला—मैं भी इन प्रश्नो का उत्तर नहीं जानता। उसके पश्चात् वह ऋषि प्रवाहण के पास गया और उससे आत्म-विद्या सिखाने का अनुरोध किया। राजा ने ऋषि से कहा—'पूर्व काल में तुमसे पहले यह विद्या ब्राह्मणों के पास नहीं गई। इसी से सम्पूर्ण लोको मे इस विद्या के द्वारा क्षत्रियो का ही अनुशासन होता रहा[1] है।' अन्त मे राजा ने उसे वह विद्या सिखाई। वह विद्या थी पुनर्जन्म का सिद्धान्त। इससे प्रमाणित होता है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त ब्राह्मणो ने क्षत्रियो से लिया[2] है।

छान्दोग्य उपनिषद् (५-११) तथा शतपथ ब्राह्मण (१०-६-१) मे एक कथा आई है कि उपमन्यु का पुत्र प्राचीन शाल, पुलुष का पुत्र सत्ययज्ञ, भाल्लवि का पौत्र इन्द्रद्युम्न, शकराक्ष का पुत्र जन और अश्वतराश्व का पुत्र बुडिल ये महागृहस्थ और परम श्रोत्रिय एकत्र होकर आत्मा के सम्बन्ध मे जिज्ञासा लेकर अरुण के पुत्र उद्दालक के पास गये, किन्तु वह आत्मा के सम्बन्ध मे स्वय ही नही जानता था। अत वह इन्हे लेकर केकयकुमार अश्वपति के पास गया। उसने राजा से आत्मा के संबन्ध मे जिज्ञासा की। तब राजा ने उन्हे आत्म-विद्या का उपदेश दिया।

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य को राजा[3] जनक ने, इन्द्र को प्रजापति[4] ने, नारद को सनत्कुमार[5] ने, नचिकेता को यमराज[6] ने आत्म-विद्या सिखाई, इस प्रकार के उपाख्यान वैदिक साहित्य मे मिलते है, जिससे ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषि यह अनुभव करते थे कि वैदिक क्रियाकण्ड आत्मज्ञान के सामने तुच्छ है। वैदिक क्रिया काण्ड से स्वर्ग भले ही मिल जाय, किन्तु अमृतत्व और अभयत्व केवल आत्म ज्ञान से ही मिल सकता है।

इस सम्बन्ध मे डॉ० दास गुप्ता का अभिमत है कि "आमतौर से क्षत्रियो मे दार्शनिक अन्वेषण की उत्सुकता विद्यमान थी और उपनिषदो के सिद्धान्तो के निर्माण मे अवश्य ही उनका मुख्य प्रभाव रहा है।"[7]

वेदो मे क्षत्रियो की आत्म-विद्या के दर्शन नही होते। सर्वप्रथम उपनिषदो ने क्षत्रियो से आत्म-विद्या

---

१ यथेय न प्राक् त्वत्त पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति तस्माद् सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच ॥७॥ छान्दोग्य उपनिषद् ५-३

२ हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, डॉ० विण्टरनीट्स, जिल्द १ पृ० २३१

३ विण्टरनीट्सकृत हि० आ० इ० लि०, जि० १ पृ० २२७-८

४. छान्दोग्य उपनिषद् अ० ८

५ " अ० ७

६ कठोपनिषद्

७. History of Indian Philosophy, by Dr. Das Gupta, Vol. I, p 13

लेकर उसे आत्मसात् कर लिया और उसे ऐसा रग प्रदान किया, जिससे यह प्रतीत होने लगा कि आत्म-विद्या उपनिषदो की मौलिक देन है। इसके पश्चात् वैदिक धर्म ने क्षत्रियो द्वारा स्वीकृत एव व्यवहृत सन्यास मार्ग को अपनाया। लोकमान्य बाल गगाधर तिलक 'गीता रहस्य' (पृ० ३४२) मे लिखते हैं—'जैन और बौद्ध धर्म के प्रवर्तको ने कापिल साख्य के मत को स्वीकार करके इस मत का विशेष प्रचार किया कि ससार को त्याग कर सन्यास लिये बिना मोक्ष नही मिलता। यद्यपि श्री शकराचार्य ने जैन और बौद्धो का खण्डन किया है, तथापि जैन और बौद्धो ने जिस सन्यास मार्ग का विशेष प्रचार किया था, उसे ही श्रौत स्मार्त सन्यास कहकर आचार्य ने कायम रक्खा।' वेदो मे सन्यास मार्ग का कोई वर्णन नही मिलता। वेद तो क्रियाकाण्ड प्रधान प्रवृतिपरक ग्रन्थ है, निवृत्ति मार्ग तो केवल क्षत्रियो की श्रमण परम्परा मे ही प्रचलित था। उपनिषद् काल मे उन्ही से सन्यास मार्ग को अपनाया गया।

धीरे-धीरे वैदिक धर्मानुयायी जनता उपनिषदो के शुष्क आध्यात्मिक वितण्डावाद से भी ऊबने लगी। उसकी आध्यात्मिक चेतना और भूख को उपनिषद् भी खुराक नही जुटा सके। वह जनता ब्राह्मणो की एकाधिकारवादी प्रवृत्ति से भी असन्तुष्ट थी। वह देख रही थी कि जैन और बौद्ध धर्म मे सभी वर्गो और वर्णो के लिये उन्नति के द्वार खुले हुए है। जैन तीर्थंकरो और तथागत बुद्ध का उपदेश जनता की भाषा मे होता है, सभी वर्ण के लोग उसको सुनने, सुनकर उसका आचरण करने और आचरण करके अपनी सर्वोच्च आत्मिक उन्नति करने के अधिकारी हैं। सभी तीर्थंकर और बुद्ध मानव से भगवान बने हैं। उक्त धर्मो की इन विशेषताओ के कारण वैदिक जनता मे वैदिक धर्म के प्रति घोर असन्तोष व्याप्त हो रहा था, बुद्धिजीवी वर्ग विद्रोह तक करने के लिये तैयार था और अनेक लोग वैदिक धर्म को त्याग कर जैन और बौद्ध धर्मों मे दीक्षित हो रहे थे। अन्तिम जैन तीर्थंकर भगवान महावीर के ग्यारह गणधरो मे सभी ब्राह्मण थे। तथागत बुद्ध के पचवर्गीय भिक्षुओ मे सभी ब्राह्मण थे। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि तत्कालीन वैदिक जनता मे अपने धर्म के प्रति कितना घोर असन्तोष था। अत उस समय इन धर्मो के बढते हुए प्रभाव को रोकने के लिये ऐसे धर्म की आवश्यकता थी, जो उक्त धर्मो के विरुद्ध जनता को प्रभावित कर सकता। उसी आवश्यकता के फलस्वरूप भागवत धर्म की उत्पत्ति हुई, जिसे बाद मे वैष्णव धर्म कहा जाने लगा। यद्यपि इस धर्म के प्रवर्तक ब्राह्मण थे, किन्तु जन-असन्तोष को देखकर उन्हे क्षत्रिय कृष्ण को विष्णु का अवतार घोषित करना पडा और इस प्रकार मानव शरीरधारी ईश्वर की सृष्टि की गई।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा लिखते हैं—

"बौद्ध और जैनधर्म के प्रचार से वैदिक धर्म को बहुत हानि पहुँची। इतना ही नही, किन्तु उसमे परिवर्तन करना पडा और वह नये साचे मे ढलकर पौराणिक धर्म बन गया। उसमे बौद्ध और जैनो से मिलती धर्म सम्बन्धी बहुत-सी नई बातो ने प्रवेश किया[1]।"

यद्यपि हिन्दू इतिहासकारो ने इस बात को दबे शब्दो मे स्वीकार किया है, किन्तु तथ्य यह है कि जैन तीर्थंकर और तथागत बुद्ध मनुष्य थे। वे अपने आध्यात्मिक प्रयत्नो से भगवान बने थे और उनकी मान्यता एव पूजा देवताओ से अधिक होती थी, यहाँ तक कि देवता भी उनकी पूजा करने मे गौरव का अनुभव करते थे। मनुष्य भी अपने प्रयत्नो से भगवान बन सकता है, यह सिद्धान्त लोक-मानस को अधिक रुचिकर एव प्रेरणाप्रद लगा। इसी सिद्धान्त से प्रभावित होकर ब्राह्मण धर्मनायको ने एक ऐसे ईश्वर की कल्पना की, जो मनुष्य के रूप मे अवतार लेकर अलौकिक कार्य करने की क्षमता रखता है, जो दुष्ट-दलन और शिष्ट-पालन करता है। श्रमण परम्परा के सिद्धान्त को ब्राह्मणो ने अपनी शैली मे ढालकर हिन्दू-धर्म की जर्जर नाव को डूबने से बचाया। कृष्ण को अवतार मानने की यह प्रक्रिया निश्चय ही श्रमण परम्परा के व्यापक प्रभाव का परिणाम थी, यद्यपि इस प्रक्रिया मे दोनो सस्कृतियो का मौलिक भेद स्पष्टतया उभर कर आने से छिपा रह नही सका। श्रमण परम्परा मे मनुष्य भगवान बन सकता है, यह उत्तारवाद अथवा उन्नतिवाद का परिणाम है। दूसरी ओर भगवान मनुष्य बन सकता है, यह अवतारवाद अथवा अवनतिवाद का परिपाक कहा जा सकता है। दूसरी बात जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, वह

१ राजस्थान का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १०-११

यह है कि श्रमण परम्परा की मौलिक विशेषता श्रम की प्रतिष्ठा है, जबकि वैदिक परम्परा श्रम को महत्व न देकर अधिनायकवाद को प्रश्रय देती है। श्रमण परम्परा मे लोकतन्त्री व्यवस्था का उच्च स्थान है, वहाँ हर व्यक्ति को समान अधिकार, उन्नति के समान अवसर और कर्तव्य की प्रतिष्ठा है, जवकि वैदिक परम्परा के अवतारवाद की कल्पना मे कोई अपने पुरुषार्थ से सर्वोच्च आध्यात्मिक पद प्राप्त करने का अधिकारी नही है, वहाँ ससार से मुक्त होने या निर्वाण प्राप्त करने तथा भगवान बनने की कल्पना तक नही की जा सकती, बल्कि अवतारी भगवान की प्रसन्नता पाने पर विष्णु-लोक मे पहुँचने तक की उडान की गई है। ब्राह्मणो ने दूसरो की अच्छाइयो, दूसरो के महापुरुषो और सिद्धान्तो को आत्मसात् करके उन्हे अपने रग मे रगने का जो निष्फल प्रयास किया, उसी के फल-स्वरूप शिव, पार्वती, विष्णु, कृष्ण, ऋषभ, बुद्ध आदि को अपने अवतारो मे गिन तो लिया, उससे ऋषभ, बुद्ध आदि अवतार उनके ग्रन्थो की शोभा वस्तु तो बन गये, किन्तु उनके मन्दिरो मे वे प्रवेश न पा सके। शिव और विष्णु के अवतारो की भी ऐसी खिचडी पकी कि उनके दाने अलग थलग ही रहे, मिल नही पाये। शिव पुराण, लिंग पुराण आदि में विष्णु से शिव को उच्चतर पद दिया गया और महाभारत, भागवत, विष्णुपुराण, हरिवश पुराण आदि मे विष्णु—विशेषत उनके अवतार कृष्ण को सवसे उच्च पद पर आसीन किया गया। फिर भी इससे इनकार नही किया जा सकता कि ब्राह्मणो की सबको पचाकर हजम करने की प्राचीन प्रक्रिया के कारण वैदिक धर्म भारत के व्यापक क्षेत्र मे अपना प्रभाव स्थापित करने मे समर्थ हो सका। अव शिव प्रार्ग्यकालीन देवता नही प्रतीत होते, वे तो, लगता है जैसे वेदो की उपज हो। इसी प्रकार विष्णु और उनके अवतार कृष्ण पश्चात्कालीन कल्पना की उपज नही लगते, बल्कि गीता मे कृष्ण ने अपने आपको यज्ञरूप और वेदरूप कहकर वेदो से समझौता कर लिया है, ऐसे ज्ञात होते हैं।

अधिकाश इतिहासकार इससे सहमत हैं कि ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी मे वासुदेव कृष्ण को विष्णु का अवतार मान लिया गया था। उन्हे सर्वोच्च स्थान देने की दृष्टि से ही अन्य अवतारो को विष्णु के अवतार के रूप मे मान्यता दी गई। इसीलिये इन अवतारो मे भी भेद रखा गया। कृष्ण को विष्णु का षोडश कलावतार अथवा पूर्णावतार माना गया, जबकि अन्य अवतारो को केवल अशावतार ही माना गया।

जैन मान्यतानुसार श्रीकृष्ण की लोकव्यापी प्रतिष्ठा स्थापित करने मे उनके भाई बलराम का हाथ था। उन्होने देव बनने के बाद पूर्व जन्म के भ्रातृस्नेहवश श्रीकृष्ण के रूप, गुण, बुद्धि, पराक्रम, वैभव आदि के चमत्कारो का ऐसा सुनियोजित प्रचार किया, जिससे लोक मानस में श्रीकृष्ण आराध्य के रूप मे छा गये और वे घर-घर में प्रतिमानव के रूप मे पूजे जाने लगे। यह कल्पना भी पौराणिक काल की उपज रही हो तो इसमें हमें कोई आपत्ति नही होगी।

भगवान नेमिनाथ से सम्बद्ध नगर

नेमिनाथ की जन्म-नगरी-शौरीपुर—आगरा से, दक्षिण-पूर्व की ओर वाह तहसील मे ७० कि० मी० दूर वटेश्वर गाव है। यहाँ से ५ कि० मी० दूर यमुना के खारो मे शौरीपुर क्षेत्र अवस्थित है। वाह से वटेश्वर ८ कि०मी० और शिकोहाबाद से २५ कि० मी० है।

शौरीपुर ही वह पावन भूमि है, जहाँ भगवान नेमिनाथ वहाँ के अधिपति समुद्रविजय की महारानी शिवा-देवी के गर्भ मे अवतरित हुए थे। उनके गर्भावतरण से छ. माह पूर्व से इन्द्र की आज्ञा से कुवेर ने रत्नवर्षा की थी, जो उनके जन्म-काल तक प्रतिदिन चार बार होती रही। उनके जन्म के सम्वन्ध मे तिथि आदि ज्ञातव्य वातो पर प्रकाश डालते हुए आचार्य यतिवृषभ 'तिलोय पण्णत्ती' ग्रन्थ में लिखते हैं—

सउरीपुरम्मि जादो सिवदेवीए समुद्दविजएण।
वइसाह तेरसीए सिदाए चित्तासु णेमिजिणो ॥४।५४७

अर्थात् नेमि जिनेन्द्र शौरीपुर मे माता शिवादेवी और पिता समुद्रविजय से वैशाख शुक्ला १३ को चित्रा नक्षत्र मे उत्पन्न हुए।

देवो और इन्द्रो ने भक्ति और उल्लासपूर्वक भगवान के इन दो कल्याणको का महोत्सव शौरीपुर मे अत्यन्त समारोह के साथ मनाया। इन दो कल्याणको के कारण यह भूमि कल्याणक भूमि, क्षेत्र मगल और तीर्थ क्षेत्र कहलाने लगी।

पौराणिक उल्लेखो से ज्ञात होता है कि इस तीर्थक्षेत्र पर कुछ मुनियो को केवलज्ञान तथा निर्वाण प्राप्त हुआ था।

गन्धमादन पर्वत पर सुप्रतिष्ठ मुनि तप कर रहे थे। उनके ऊपर सुदर्शन नामक एक यक्ष ने घोर उपसर्ग किया। मुनिराज ने उसे समतापूर्वक सहन कर लिया और आत्म-ध्यान में लीन रहे। फलत उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इन्ही केवली भगवान के चरणो मे शौरीपुर नरेश अन्धकवृष्णि और मथुरा नरेश भोजकवृष्णि ने मुनि दीक्षा लेली।

मुनि धन्य यमुना-तट पर ध्यानमग्न थे। शौरीपुर नरेश शिकार न मिलने के कारण अत्यन्त क्षुब्ध था। उसकी दृष्टि मुनिराज पर पडी। उस मूर्ख ने विचार किया कि शिकार न मिलने का कारण यह मुनि है। उसने क्रोध और मूर्खतावश तीक्ष्ण वाणो से मुनिराज को वीध दिया। मुनिराज शुक्लध्यान द्वारा कर्मो को नष्ट कर सिद्ध भगवान वन गये।

मुनि अलसत्कुमार विहार करते हुए शौरीपुर पधारे और यमुना-तट पर योग निरोध करके ध्यानारूढ हो गये। कर्म शृखलाये टूटने लगी। उन्हे केवलज्ञान हो गया और निर्वाण प्राप्त किया।

यम नामक अन्त कृत केवली यही से मुक्त हुए।

इस प्रकार न जाने कितने मुनियो को यहाँ केवलज्ञान हुआ और कितने मुनि यहाँ से मुक्त हुए। मुनियो को यहाँ से निर्वाण प्राप्त हुआ, अत यह स्थान साधारण तीर्थ न होकर निर्वाण क्षेत्र या सिद्धक्षेत्र है।

सिद्धक्षेत्र होने के अतिरिक्त यहाँ अनेक ऐतिहासिक और पौराणिक घटनायें भी हुई थी। भगवान ऋषभ-देव, भगवान नेमिनाथ, भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर का इस भूमि पर विहार हुआ था। उनका समव-सरण यहाँ लगा था और उनके लोककल्याणकारी उपदेश हुए थे। यही पर प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् आचार्य प्रभा-चन्द्र के गुरु आचार्य लोकचन्द्र हुए थे। यह भी अनुश्रुति है कि आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपने सुप्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ 'प्रमेय कमल मार्तण्ड' की रचना यही पर की थी।

उस समय यादववशियो के तीन राज्य थे—(१) कुशद्य-जनपद, जिसकी राजधानी शौरीपुर या शौर्यपुर थी और जिसे शूर ने वसाया था। (२) शूरसेन जनपद, जिसकी राजधानी मथुरा थी। (३) वीर्यपुर। यह कहाँ अव-स्थित था और इसका कौन राजा था, यह ज्ञात नही हो पाया। सभवत. चन्दवाड़ का पूर्वनाम वीर्यपुर रहा हो अथवा यह इसके कही आसनास रहा हो। मथुरा के नरेश भोजकवृष्णि और शौरीपुर के नरेश अन्धकवृष्णि दोनो चचेरे भाई थे। भोजकवृष्णि के तीन पुत्र थे—उग्रसैन, महासेन और देवसेन। पिता के पश्चात् मथुरा का राज्य उग्रसैन को मिला। उग्रसेन का पुत्र कस था, जिसने अपने पिता को कारागार मे डाल दिया था और वाद में श्रीकृष्ण ने कस का वध करके उग्रसैन को कारागार से मुक्त किया। अन्धकवृष्णि की महारानी सुभद्रा से दस पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। दस पुत्रो में समुद्रविजय सवसे ज्येष्ठ थे और वसुदेव सवसे छोटे थे। पुत्रियो के नाम कुन्ती और मद्री थे, जिनका विवाह हस्तिनापुर के राजकुमार पाण्डु के साथ हुआ और जिनसे पाच पाण्डव उत्पन्न हुए। समुद्रविजय की महारानी शिवादेवी से नेमिनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ। वसुदेव की महारानी रोहिणी से वलराम हुए और दूसरी महारानी देवकी से श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। दोनो भाई क्रमश वलभद्र और नारायण थे। नारायण श्रीकृष्ण ने ही उस समय के सवसे प्रतापी सम्राट् राजगृह नरेश जरासन्ध का वध किया था।

जब यादव शौरीपुर, मथुरा और वीर्यपुर का त्याग करके पश्चिम की ओर चले गये और द्वारका बसाकर वही रहने लगे, तव वहाँ का शासन-सूत्र श्रीकृष्ण ने सभाला। यादवो के जाने के पश्चात् शौरीपुर की महत्ता समाप्तप्राय हो गई। जैन पुराणो में यादवो के निष्क्रमण के पश्चात् शौरीपुर का उल्लेख बहुत कम आया है। एक

वार तो उस समय, जब श्रीकृष्ण ने भरत क्षेत्र के तीन खण्डो पर विजय प्राप्त करके विभिन्न व्यक्तियो को विभिन्न स्थानो का राज्य प्रदान किया। उस समय उग्रसेन के पुत्र द्वार को मथुरा का राज्य दिया तथा महानेमि को शौर्यपुर का राज्य प्रदान किया। किन्तु महानेमि की वश-परम्परा के सम्बन्ध मे जैन पुराण मौन है। सभवत इसका कारण यह रहा हो कि शौरीपुर मे इसके पश्चात् कोई उल्लेखनीय घटना घटित न हुई हो और शौरीपुर का महत्त्व राजनैतिक या धार्मिक दृष्टि से नगण्य रह गया हो। दूसरी वार उस समय, जब विहार करते हुए भगवान पार्श्वनाथ शौरीपुर पधारे। उस समय यहाँ प्रभजन नामक राजा राज्य करता था। भगवान का उपदेश सुनकर वह उनका भक्त बन गया।

वर्तमान मे यहाँ आदि मन्दिर, वरुआ मठ, शखध्वज मन्दिर ये तीन मन्दिर है तथा पच मठी है। एक अहाते मे यम मुनि, और धन्य मुनि की छतरियाँ बनी हुई है, जिनमे चरण विराजमान है। दो छतरियाँ खाली पड़ी हुई है। एक टोक भी बनी हुई है। उसमे कोई प्रतिमा नही है। चरण अवश्य विराजमान है, जिनकी स्थापना भट्टारक जिनेन्द्र भूषण के उपदेश से सवत् १८२८ मे हुई थी। वरुआमठ यहाँ का सबसे प्राचीन मन्दिर है, किन्तु इसकी कुछ प्राचीन प्रतिमाये चोरी चली गई। इन मन्दिरो मे सबसे प्राचीन मूर्ति उसके लेख के अनुसार सवत् १३०८ मे प्रतिष्ठित हुई थी।

यहाँ समाज की ओर से तथा सरकार की ओर से उत्खनन हो चुके है। फलत यहाँ शिलालेख, खण्डित-अखडित जैन मूर्तियो और प्राचीन जैन मन्दिरो के अवशेष प्राप्त हुए थे। एक शिलालेख के अनुसार सवत् १२२४ मे मन्दिर के जीर्णोद्धार का उल्लेख मिलता है। उत्खनन से प्राप्त एक मूर्ति पर सवत् १०८२ (अथवा ६२) का लेख है। यहाँ उत्खनन के परिणामस्वरूप सबसे महत्त्वपूर्ण जो चीज मिली है, वह है अपोलोडोटस और पार्थियन राजाओ के सिक्के। अपोलोडोटस वाख्त्री वश का यूनानी नरेश था। उसका तथा पार्थियन राजाओ का काल ईसा पूर्व दूसरी तीसरी शताब्दी है। इन सिक्को से ज्ञात होता है कि आज से २२००—२३०० वर्ष पहले शौरीपुर बहुत समृद्ध और प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था तथा उपर्युक्त सिक्के व्यापारिक उद्देश्य से ही यहाँ लाये गये होगे।

एक किम्वदन्ती के अनुसार प्राचीन काल मे किसी रानी ने यहाँ के सम्पूर्ण जैन मन्दिरो का विध्वस करा दिया था। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल मे यहाँ अनेक मन्दिर रहे होगे और यह जैनो का प्रमुख केन्द्र रहा होगा।

यह तीर्थ मूलत दिगम्बर जैनो का है। सभी प्राचीन मन्दिर, मूर्तियाँ और चरण दिगम्बर जैनाम्नाय के है। प्राचीन काल से आसपास के जैन यही पर मुण्डन, कर्णवेधन आदि सस्कार कराने आते है। यादववशी जैनो मे प्रथा है कि किसी आत्मीयजन की मृत्यु होने पर कार्तिक सुदी १४ को यहाँ दीपक चढाते है। यह क्षेत्र मूलसघाम्नायी भट्टारको का प्रमुख केन्द्र रहा है। भट्टारक जगतभूषण और विश्वभूषण की परम्परा मे भट्टारक जिनेन्द्र भूषण १८वी शताब्दी मे हुए है। वे एक सिद्ध पुरुष थे। उनके चमत्कारो की अनेक कहानियाँ यहाँ अबतक प्रचलित है।

इसके निकटवर्ती वटेश्वर मे इन्ही भट्टारक द्वारा बनवाया हुआ तीन मजिल का एक मन्दिर है। इसकी दो मजिले जमुना के जल मे जमीन के नीचे है। इसका निर्माण सवत् १८३८ मे हुआ था। यहाँ मन्दिर मे भगवान अजितनाथ की कृष्ण वर्ण की मूलनायक प्रतिमा विराजमान है जो महोवा से लाई गई थी और जिसकी प्रतिष्ठा सवत् १२२४ मे वैशाख सुदी ७ को परिमाल राज्य मे आल्हा-ऊदल के पिता जल्हण ने कराई थी। प्रतिमा अत्यन्त सातिशय है। इस मन्दिर मे भगवान शान्तिनाथ की एक मूर्ति है जो संवत् ११५० वैशाख वदी २ को प्रतिष्ठित हुई, ऐसा मूर्ति-लेख से ज्ञात होता है। अन्य कई प्रतिमाये भी ११—१२वी शताब्दी की लगती है।

यहाँ दो जैन धर्मशालाये है। यहाँ कार्तिक शुक्ला ५ से १५ तक जैनो का मेला होता है। कार्तिक मास मे यहाँ पशुओ का प्रसिद्ध मेला भरता है। मगसिर वदी १ को जैन रथयात्रा सारे बाजार मे होकर निकलती है। इसमे हजारो जैन-अजैन सम्मिलित होते हैं।

भगवान नेमिनाथ की निर्वाण-भूमि गिरनार—भगवान नेमिनाथ सौराष्ट्र देश मे स्थित गिरनार पर्वत से मुक्त हुए थे। साहित्य मे गिरनार के अनेक नाम मिलते है, जैसे उज्जन्त, ऊर्जयन्त, गिरिनार, गिरनार, गिरनेर,

रैवतक, रेवत । हिन्दू पुराणो मे रैवतक पर्वत नाम मिलता है । आचार्य जिनसेनकृत 'हरिवश पुराण' मे भगवान के अन्तिम समय का वर्णन करते हुए लिखा है—

'जब निर्वाण का समय समीप आ गया तो अनेक देव और मनुष्यो से सेवित भगवान गिरनार पर्वत पर पुन लौट आये । समवसरण की जैसी रचना पहले हुई थी, वैसी ही रचना पुन हो गई । समवसरण के बीच विराजमान होकर जिनेन्द्र भगवान ने स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति का साधनभूत, रत्नत्रय से पवित्र और साधु सम्मत उपदेश दिया । जिस प्रकार सर्व हितकारी जिनेन्द्र भगवान ने केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद पहली बैठक मे विस्तार के साथ धर्म का उपदेश दिया था, उसी प्रकार अन्तिम बैठक मे भी उन्होने विस्तार के साथ धर्म का उपदेश दिया । तदनन्तर योग निरोध करके भगवान नेमिनाथ अघातिया कर्मों का अन्त करके कई सौ मुनियो के साथ निर्वाण धाम को प्राप्त हो गये । समुद्रविजय आदि नौ भाई, देवकी के युगलिया छह पुत्र, शबु और प्रद्युम्नकुमार आदि मुनि भी गिरनार पर्वत से मुक्त हुए । इसलिए उस समय से गिरनार आदि निर्वाण स्थान ससार मे विख्यात हुए और तीर्थयात्रा के लिये अनेक भव्य जीव आने लगे[1] ।

आचार्य यतिवृषभ ने 'तिलोय पण्णत्ती'[2] मे भगवान नेमिनाथ के साथ मुक्त होने वाले मुनियो की सख्या ५३६ बताई है । उत्तर पुराण[3] मे भगवान नेमिनाथ के अतिरिक्त मुक्त होने वाले मुनियो मे जाम्बवती के पुत्र शबु, कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का नामोल्लेख करते हुए उनकी मुक्ति विभिन्न कूटो से बतलाई है । वर्तमान मे भी दूसरे पर्वत से अनिरुद्धकुमार, तीसरे से शबुकुमार, चौथे से प्रद्युम्नकुमार और पाचवें से नेमिनाथ की मुक्ति मानी जाती है । इन टोको पर इन मुनिराजो और भगवान के चरण-चिन्ह बने हुए हैं । प्राकृत 'निर्वाण काण्ड'[4] मे ऊर्जयन्त पर्वत से मुक्त होने वाले मुनियो के नाम और सख्या का उल्लेख करते हुए बताया है कि ऊर्जयन्त पर्वत से भगवान नेमिनाथ, प्रद्युम्न, शबुकुमार और अनिरुद्ध के अतिरिक्त ७२ करोड ७०० मुनि मुक्त हुए । गजकुमार भी यही से मुक्त हुए थे । इतने मुनियो का निर्वाण-धाम होने के कारण ही गिरनार की ख्याति और मान्यता सम्मेद शिखर के समान ही है ।

सस्कृत 'निर्वाण भक्ति'[5] मे भी नेमिनाथ की मुक्ति-स्थलो के रूप मे ऊर्जयन्त का उल्लेख किया गया है, किन्तु उदयकीर्तिकृत अपभ्रश निर्वाण भक्ति[6] मे प्राकृत निर्वाण भक्ति के समान ही वर्णन मिलता है ।

अपभ्रश भाषा के 'णायकुमार चरिउ' मे नागकुमार की ऊर्जयन्त-यात्रा का वर्णन करते हुए ऊर्जयन्त गिरि का विस्तृत वर्णन किया गया है । उसमे लिखा है कि पहले नागकुमार ने उस स्थान की वन्दना की जहाँ नेमिनाथ ने दीक्षा ली थी (यह स्थान सहस्राम्र वन है) । उपरान्त उन्होने 'ज्ञानशिला' की वन्दना की (यह वही स्थान था, जहाँ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था) । इसके बाद उन्होने अनिरुद्धकुमार, शबुकुमार, प्रद्युम्नकुमार आदि मुनियो और नेमिनाथ के निर्वाण स्थानो की पूजा की । अन्त मे उन्होने यक्षीनिलय अर्थात् अम्बिका देवी के मन्दिर को देखा, जहाँ उन्होने दीन-अनाथो को दान दिया । फिर वे वापिस गिरिनयर (जूनागढ) आ गये ।

इससे ज्ञात होता है कि नेमिनाथ भगवान के दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण स्थान अलग-अलग थे, जैसा कि वर्तमान मे भी हैं । राजीमती ने विरक्त होकर गिरनार पर ही तप किया था ।

---

१ हरिवश पुराण सर्ग ६५ श्लोक ४ से १७

२ तिलोयपण्णत्ती ४ । १२०६

३ उत्तर पुराण सर्ग ७२ श्लोक १८९—१९१

४ णेमिसामी पज्जण्णो सवुकुमारो तहेव अणिरुद्धो ।
वाहत्तार कोडीओ उज्जते सत्तसया सिद्धा ॥५॥

५ निर्वाणभक्ति श्लोक २३

६ उज्जत महागिरि सिद्धिपत्तु । सिरिणेमिणाहु जादव पवित्तु ॥
अण्णु वि पुणु सामि पज्जुणु णवेवि । अणुरुद्धइ सहियर णमवि तेवि ॥३॥
अण्णु वि पुणु सत्त सयाइ तित्थु । वाहत्तर कोडिय सिद्ध जेत्थु ।

जिस स्थान पर भगवान को निर्वाण प्राप्त हुआ था, वहाँ इन्द्र ने वज्र से सिद्धशिला का निर्माण करके उसमें भगवान के चिह्न अंकित कर दिये थे। इन्द्र ने यहाँ वज्र से मन्दिर बनाया और आयुध एवं वस्त्राभूषणों से रहित दिगम्बर नेमिनाथ की मूर्ति की भी स्थापना की थी[1]। यह मूर्ति आचार्य मदनकीर्ति के समय में (वि० सं० १२८५ के लगभग) विद्यमान थी। कहते हैं[2], यह रत्नमूर्ति थी। काश्मीर का रत्न नामक एक श्रीमन्त जैन गिरनार की वन्दना के लिए आया। उसने इस मूर्ति का जलाभिषेक किया, जिससे मूर्ति गल गई तब उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने उपवास किया। रात्रि में अम्बिका देवी प्रगट हुई। उनकी आज्ञानुसार रत्न ने १८ रत्नों की, १८ स्वर्ण की, १८ चाँदी की और १८ पाषाण की प्रतिमायें प्रतिष्ठित कीं। इनमें से प्रतिमाओं को वह अपने साथ लेता गया।[3]

इससे प्रतीत होता है कि इन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित नेमिनाथ मूर्ति थी अवश्य, किन्तु वह बाद में खण्डित होगई।

गिरनार की अधिष्ठात्री देवी का असाधारण महत्त्व बताया जाता है। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में ऐसी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं कि दिगम्बर और श्वेताम्बर साथ साथ गिरनार की वन्दना को गये। पर्वत पर पहले कौन जाय, इस बात को लेकर दोनों में विवाद हो गया। एक महीने तक वाद चला। अन्त में दोनों पक्षों ने अम्बिका को मध्यस्थ चुना। अम्बिका की देववाणी हुई, जिसके अनुसार दोनों की मान्यता है कि उस पक्ष को देवी ने सत्य पथ घोषित किया। इन किंवदन्तियों में कितना सार है, यह नहीं कहा जा सकता।

चतुर्थ श्रुतकेवली गोवर्धन स्वामी[4] गिरनार की वन्दना के लिए आये थे। आचार्य भद्रबाहु ने भी इस निर्वाण तीर्थ की वन्दना की थी।

'श्रुतस्कन्ध'[5] और 'श्रुतावतार'[6] के अनुसार आचाराङ्ग के धारी धरसेनाचार्य गिरनार की चन्द्र गुफा में रहते थे। अपनी आयु का अन्त निकट जानकर उन्होंने दक्षिणा पथ की महिमानगरी में एकत्रित मुनि-संघ को दो व्युत्पन्न मुनि श्रुताध्ययन के लिये भेजने को लिखा। मुनि संघ ने पुष्पदन्त और भूतबलि नामक दो विद्वान् मुनियों को धरसेनाचार्य के पास भेजा। धरसेनाचार्य ने उन मुनियों को दो मन्त्र सिद्ध करने के लिये दिये। एक मन्त्र में हीनाक्षर था और दूसरे मन्त्र में अधिक अक्षर था। उन्होंने दोनों मुनियों को गिरनार की सिद्धशिला पर—जहाँ भगवान नेमिनाथ का निर्वाण कल्याणक हुआ था—मन्त्र साधन की आज्ञा दी। दोनों योग्य शिष्यों ने तीन दिन तक मन्त्र साधन किया। उन्हें देवी सिद्ध हुई, किन्तु एक देवी काणाक्षी थी और दूसरी दन्तुरा थी। दोनों ने विचार करके मन्त्रों को शुद्ध किया और पुनः साधन किया। इस बार देवियाँ सौम्य आकार में आकर उपस्थित हुईं। दोनों मुनियों ने गुरु के निकट जाकर यह निवेदन किया। गुरु ने उन्हें सुयोग्य जानकर श्रुतज्ञान का बोध दिया। अध्ययन करके वे वहाँ से गुरु की आज्ञा से चले गये और उन्होंने षट्खण्डागम की रचना की तथा लिपिबद्ध करके सम्पूर्ण संघ के समक्ष ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को उस शास्त्र की ससमारोह पूजा की।

ऐसे भी उल्लेख[7] मिलते हैं कि आचार्य कुन्दकुन्द गिरनार की वन्दना के लिये आए थे। नन्दि संघ की गुर्वावली में उल्लेख है कि पद्मनन्दी मुनि ने गिरनार पर्वत पर स्थित सरस्वती देवी से यह घोषणा कराई थी कि 'सत्य पन्थ निर्ग्रन्थ दिगम्बर' इसी घटना के कारण सारस्वती[8] गच्छ की उत्पत्ति हुई। वीरसेनाचार्य गिरनार की

---

१ आचार्य समन्तभद्र कृत स्वयम्भू स्तोत्र श्लोक १२७—२८। आचार्य दामनन्दी कृत पुराण सार संग्रह ५। १३६

२. मदनकीर्ति विरचित शासन चतुस्त्रिंशिका श्लोक २०

३ श्वेताम्बराचार्य राजशेखरसूरिकृत 'प्रबंध कोष' का रत्न श्रावक प्रबंध। रचना वि० सं० १४०५

४ बृहत्कथा कोष पृ० ३१०

५ श्रुतस्कन्ध, पृ० १९५

६. श्रुतावतार कथा, श्लोक १०३—९

७. 'ज्ञान प्रबोध' एवं पाण्डव पुराण

८ पद्मनन्दी गुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणी।
पाषाणघटिता येन वादिता श्री सरस्वती ॥३६॥
ऊर्जयन्त गिरौ तेन गच्छ सारस्वतो भवेत्।
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्री पद्मनन्दिने ॥३७॥